* ओ३म् *

संस्कार-प्रकाश

अर्थात्—

महर्षि दयानंद सरस्वती

प्रणीत

संस्कारविधि

वेदानुकूल गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्य्यन्त सोलह संस्कार युक्त

भाषाटीका सहित

सम्पादक—

रामगोपाल विद्यालङ्कार

(गुरुकुल कांगड़ी)

प्रकाशक व मुद्रक—

गोविन्दराम हासानन्द

वैदिक प्रेस

८।१ रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता ।

प्रथम वार २०००	श्रीमद्दयानन्दाब्द १०२ विक्रमाब्द १९८४	मूल्य सजिल्द १॥)

प्रकाशक व मुद्रक—

गोविंदराम हासानंद

वैदिक प्रेस

८।१ रामकुमार रक्षित लेन, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

प्रकाशककी भूमिका ।



स्वामी दयानन्द-कृत संस्कार-विधि के इस रूप में प्रकाशित करनेका मुख्य प्रयोजन यह है कि इस पुस्तक से संस्कार की क्रिया और ज्ञान-प्राप्ति, दोनों कार्य सिद्ध हो सकें। इसी लिये संस्कार करनेके समय जिन मन्त्रोंका पाठ आवश्यक है उनको मोटे टाइपमें पृष्ठके बाइं ओरके आधे भागमें और उनके सरल संक्षिप्त अर्थको बारीक टाइपमें पृष्ठ के दायीं ओरके आधे भाग में छापा गया है। जिन मंत्रोंका अर्थ स्वयं स्वामीजी ने मूल पुस्तक में लिख दिया था उनका अर्थ ज्योंका त्यों छाप दिया है।

मंत्रोंका जो अर्थ किया गया है उसमें सरलता और संक्षेपका विशेष ध्यान रखा गया है, जिससे पाठकोंको मंत्रका आशय ज्ञात हो सके। जो विशेष स्वाध्यायके लिये मंत्रकी विस्तृत व्याख्या पढ़ने के अभिलाषी हों उनकी इच्छा तो केवल वेदभाष्य से ही पूर्ण हो सकती है।

वैदिक यन्त्रालय अजमेरसे जो संस्कार-विधि प्रकाशित हुई है उसके कई संस्करण हो चुकने पर भी उसे शुद्ध करनेको ओर उक्त यंत्रालयके संचालकोंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। उदाहरणार्थ, इस पुस्तक के पन्द्रहवें एडीशन में पृष्ठ ५६ पर सीमंतोन्नयन संस्कार प्रकरण में "ओं राकामहं सुहवां" इत्यादि और "ओं यास्ते राके सुमतयः" इत्यादि दो मंत्रों के पाठको मिलाकर छाप दिया है। शुद्ध मन्त्र निम्न प्रकार होने चाहिये :—

"ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्या छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥"

"ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा॥"

वैदिक यंत्रालय के पुस्तक में इन मंत्रों को निम्न प्रकार छाप दिया है:—

"ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु। (उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा) ॥५॥ ओं किम्पत्मना सीव्यत्वपः सूच्या च्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥६॥

" ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमनाउपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ (सुमनाश्यसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः ॥ " (इसमें पहिली पंक्तिके अन्तिम भाग तथा दूसरी पंक्ति के प्रारम्भ भाग को मिलाकर जो पाठ है वह मुद्रित है)

" ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमनाश्यसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः ॥ "

इस अशुद्ध पाठमें जितने भाग के नीचे रेखा दी है उतना पाठ एक अन्यत्र ही स्थान का है। परन्तु वैदिक यंत्रालयके संशोधक पण्डितों ने उसके दो टुकड़े करके उन्हें इन मंत्रोंमें घुसेड़ दिया है और जिस भाग को यहां कोष्ठक के बीचमें दिखलाया गया है वह भाग दूसरे मंत्रके उत्तरार्धका एक अंश है। उसे उठाकर उन्होंने पहिले मंत्र के बीच में जड़ दिया है।

यह एक बड़ी मोटी भूल यहां दिखलायी गयी है। ऐसी और भी जो भूलें वैदिक यंत्रालयके पुस्तक में रह गयी हैं उन में से कइयों को यहां ठीक करके छापा गया है।

जिन संस्कारों का अभिप्राय या प्रयोजन कुछ अस्पष्ट समझा है उनका भाव संक्षेप में पुस्तक के आदिमें दे दिया है।

मंत्र और अर्थ एक दूसरेके सामने छापने के कारण कागज का अधिक व्यय हुआ है तो भी ग्रन्थको सुलभ बनाने का उद्देश्य होने के कारण मूल्य यथाशक्ति कम रखा है।

आशा है यह प्रयत्न वैदिकधर्म-प्रेमियोंके लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

"प्रकाशक"।

संस्कारों का परिचय।

सामान्यप्रकरण।

यज्ञशाला के परिमाण और आकार आदि के विषय में श्री स्वामीजीने "संस्कारविधि" में जो कुछ लिखा है वह प्राचीन गृह्यसूत्रों (विशेषतः पारस्कर गृह्यसूत्र) के आधार पर लिखा है। विचारवान् पाठकों को उनके लेख के शब्दोंकी अपेक्षा आशय पर विशेष ध्यान देना चाहिये। आशय केवल इतना है कि यज्ञशाला सुन्दर, सुडौल स्वच्छ और भली प्रकार बनी होनी चाहिये, जिसमें ऋत्विजों के बैठने उठने और यज्ञ-सामग्री रखने आदि के लिये स्थान पर्याप्त हो, जो धूप वर्षा आन्धी आदि प्राकृतिक विघ्नों से यज्ञ तथा यज्ञ-कर्त्ताओंकी रक्षा कर सके और जिस से यज्ञ-कर्ताओं और द्रष्टा श्रोताओं आदिके मन में प्रसन्नता हो। भिन्न भिन्न गृह्यसूत्रों और कर्मकाण्ड के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इस विषय पर जो लिखा है वह सर्वथा एक नहीं है; उन उन ग्रन्थकर्ता आचार्योंने अपने शिष्योंको मार्ग दिखलाने के लिये उपलक्षण मात्रसे, अपने अपने देश-कालानुसार एतद्विषयक कुछ बातें लिख दी हैं, जिन सब का सम्मिलित अभिप्राय वही निकलता है जो हमने ऊपर लिख दिया है। अन्यथा, यदि ग्रन्थकर्ता के अभिप्राय को न समझ कर, लकीर के फ़कीरों की नीति के अनुसार, शब्दों को पकड़ कर बैठे रहेंगे, तो राजसूय आदि महायज्ञों की, जिन में हजारों नर नारी सम्मिलित हुआ करते थे, कल्पना ही असम्भव सी हो जायगी। कत्यायनने लिखा भी है, "औचित्यादर्थात् परिमाणम्" अर्थात् औचित्यानौचित्य और प्रयोजन के विचार से यज्ञशाला का परिमाण ठहराना चाहिये।

जो बात यज्ञशाला के आकार, प्रकार, और परिमाण के सम्बन्ध में है, वही यज्ञ-कुण्ड और समिधा आदि के विषय में भी है। यज्ञकुण्डके विषयमें मुख्य विचार इतना ही करना चाहिये कि हमें जितना बड़ा यज्ञ करना है अथवा जितने पदार्थों को उसमें आहुतियां देनी हैं, वे सब उसमें भली प्रकार समा जायं, बीच में अग्नि के बुझने, कुण्ड के भर जाने अथवा धुएं आदि का किसी प्रकार का कष्ट यज्ञके बीच में न हो। यज्ञ कुण्डका जो आकार श्री स्वामी जीने यहां लिखा है और जो आज.कल प्रायः सर्वत्र हिन्दुस्थान में प्रचलित हो गया है वह इस कारण अधिक उपयुक्त है कि उसमें सामग्री आदि धीरे धीरे

जलते हुए वायु-मण्डलको अधिक सुगन्धित करती हैं तथा मामूली इन्धन कम जलता है। यों कर्म-काण्डके ग्रन्थोंमें कूर्माकृति कूपाकृति आदि अनेक प्रकार के यज्ञ कुण्डों का वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार यज्ञ समिधाओं के विषय में है। भिन्न भिन्न ग्रन्थों में जो लकड़ियां यज्ञके योग्य बतलायी गयी हैं वे सब जगह एक सी नहीं हैं। इनके विषयमें भी शुद्धता, सरलता, सुलभता और बिना कष्ट के ज्वलन-शीलता आदि गुणों को देखना ही आवश्यक है—वृक्षों के नाम तो उपलक्षण-मात्र हैं। वायु-पुराण में लिखा भी है "अन्योश्वैवंविधान् सर्वान् यज्ञियांश्च विवर्जयेत्" अर्थात् यदि यज्ञ के योग्य बतलाये गये वृक्ष भी ऐसे हों कि जिन पर कोड़े या पक्षी रहते हों या बेलें लिपटी हो अथवा दीमक लगा हो तो उनको छोड़ दे। इससे स्पष्ट है कि कुछ विशेष गुणों के अनुसार समिधा का चुनाव किया जाता है, न कि वृक्षोंके नामानुसार ॥

गर्भाधान-संस्कार

इस संस्कार के नाम से ही इसका अभिप्राय स्पष्ट होता है। इसका प्रयोजन यह है कि स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध की पवित्रता और संयम को महत्ता का सब को बोध हो। इस संस्कार द्वारा विवाहित स्त्री पुरुष यह प्रकट करते हैं कि हम दोनों का सम्बन्ध विषय-वासना की तृप्ति के लिये नहीं, प्रत्युत एक उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिये है। इस से यह भी प्रकट होता है कि गृहस्थियों को पुत्रोत्पत्ति के लिये सम्बन्ध करने के अतिरिक्त अपना जीवन ब्रह्मचर्य-पूर्वक बिताना चाहिये। गर्भाधान संस्कार की परिपाटी नष्ट हो जाने के कारण आज कल स्त्री पुरुष के सम्बन्ध की पवित्रता और संयम का मनुष्य-समाज में से अभाव सा हो गया है। गृहस्थी स्त्री और पुरुष तक आपस के सम्बन्ध को छिपाने और गुप्त रखने योग्य बात समझते हैं। और ऐसा समझते हुए भी मर्यादा को उल्लङ्घन करके स्वास्थ्य और आयुर्वेद-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध विषय-भोग में प्रवृत्त होते हैं। यदि गर्भाधान संस्कार को रीति प्रचलित हो जाय तो ये बुराइयां स्वयं ही दूर हो जायं। क्योंकि जिस प्रकार स्त्री और पुरुष विवाह संस्कार द्वारा परस्पर सम्मिलित जीवन बितानेके लिये समाज को अनुमति प्राप्त करते हैं और उन के संबंधको दोषयुक्त नहीं गिना जाता इसी प्रकार उनको गर्भाधान संस्कार द्वारा समाजसे पुत्रोत्पादनकी अनुमति प्राप्त करनी चाहिये और जिस प्रकार विवाह संस्कारका अभिप्राय यह है कि विवाहिता स्त्रीको परपुरुष और विवाहित पुरुषको परस्त्रीसे सम्बन्ध नहीं करना चाहिये इसी प्रकार गर्भाधान का अभिप्राय यह है कि पुत्रोत्पत्ति के प्रयोजन के बिना दम्पति को भी

विषयभोग न करना चाहिये—तभी उन के जीवन की पवित्रता और स्वास्थ्य की उत्तमता स्थिर रह सकती है। स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के विषय में लज्जा, घृणा और गोपनीयता के भावों के प्रचलित होने का मुख्य कारण यही है कि लोगों में विषय-वासना बढ़ जाने के कारण वे पुत्रोत्पादन के सिवाय भी विषय-भोग करने लगे और इसी लिये उन को इसके समाज से छिपाने की आवश्यकता जान पड़ने लगी। यदि गर्भाधान संस्कार की रीति प्रचलित हो जाय तो जहां मनुष्य-समाज में से व्यभिचार एक दम उठ जायगा वहां नियोग आदि आपत्कालिक धर्मों में भी किसी प्रकार की अपवित्रता अथवा लज्जा की बात प्रतीत नहीं होगी। महर्षि वेदव्यास सरीखे महापुरुषोने स्वयं नियोग किया था और उस समयके समाज ने इसे इसी कारण बुरा नहीं माना कि तब तक पुत्रोत्पादन के लिये गर्भाधान करने को घृणा या लज्जा या छिपानेकी बात नहीं समझा जाता था। घृणा, लज्जा आदि भाव वहीं उपस्थित होते हैं जहां कोई अनुचित काम होने लगता है। गर्भाधान संस्कार इतना महत्व-पूर्ण है कि इस के प्रचार द्वारा स्त्री पुरुष के सम्बन्ध की सब बुराइयां बहुत शीघ्र दूर हो सकती हैं।

इस संस्कार में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं अथवा जो क्रिया की जाती हैं उन सब का सारांश तथा प्रयोजन यही है कि भावी माता पिता तथा बालक का शरीर स्वस्थ हो, वे दीर्घायु तेजस्वी और बलवान बनें तथा उनका पारस्परिक प्रेम सदा बढ़ता रहे॥

पुंसवन

पुंसवन शब्द का अर्थ है बलवान वीर्यवान सन्तान की उत्पत्ति। गर्भाधान के दो तीन मास पश्चात् इस के करने का प्रयोजन यह है कि जब माता पिता को गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब वे गर्भ की रक्षा आदिका विशेष ध्यान रखें; क्योंकि आयुर्वेद-शास्त्र के लेखानुसार इसी समय के पश्चात् गर्भ में बालक के अङ्गों का निर्माण आरम्भ होता है। इस संस्कार में पति पत्नी के गर्भाशय पर जो हाथ रखता है वह इसी बात का उपलक्षण है कि पति स्वयं गर्भ-गत बालक का स्मरण करता और पत्नी को कराता है कि उस बालक के प्रति अब हम दोनों का कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व विशेष रूप से बढ़ गया है। गिलोय और वट-वृक्ष के कोमल कूपल नाक में सुंघाने के जो लाभ हैं उनका आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत में वर्णन किया गया है। जब माता पिता गर्भ-गत बालक का इस प्रकार ध्यान रखेंगे तभी बलवान वीर्यवान सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

सीमन्तोन्नयन

यह संस्कार तब किया जाता है जब गर्भ में बालक का शरीर प्रायः सब बन चुकता है और माता को गर्भ में बालक के हिलने जुलने का भी बोध होने लगता है। इस लिये इस समय पुनः बालक के उत्तम गुणवान होने की प्रार्थना की जाती है और पति विशेषरूप से अपनी धर्मपत्नी के स्वास्थ्य प्रसन्नता आदि का ध्यान रखना आरम्भ करता है, क्योंकि यदि इस समय सावधानता न रखी जाय तो गर्भ-गत बालक और माता दोनोंको ही बड़ी हानि पहुंच सकती है। आज कल प्रायः सर्वत्र सभ्य समाज में अच्छी दाइयां तैयार करने का यत्न हो रहा है वह इसी कारण कि साधारणतया माता पिता गर्भ के इन अन्तिम दिनों में उचित रूपसे सावधान नहीं रहते। उन को किसी ने इस समय सावधान रहने की शिक्षा दी ही नहीं। परन्तु सीमन्तोन्नयन संस्कार द्वारा उन को उन के कर्त्तव्य की चेतावनी करायी जाती है।

जातकर्म

इस विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता ही नहीं। इसका तो अभिप्राय नाम से ही स्पष्ट है कि बालक के जाये अर्थात् उत्पन्न होने पर जो क्रिया की जाय वह जातकर्म संस्कार है। इस संस्कार की क्रियायें भी प्रायः वही हैं जो सब वैद्य बतलाया करते हैं।, अर्थात् बालक का स्नान, नाभिछेदन, दूध पिलाना आदि। प्राचीन संस्कृति के अभिमानियों को विशेष इतना ही ध्यान देना चाहिये कि बच्चा जनने वाली माता के घर को स्वच्छ रखने आदि के विषय में जो बातें आज कल के डाक्टर बड़ी खोज के बाद बतला रहे हैं वे सब मूल रूपेण इस संस्कार में बतला दी गयी हैं। प्रसूतिका गृह में विशेष रूप से यज्ञ करने और जलपात्र रखने आदि का प्रयोजन यही है कि वहां का वायु आदि शुद्ध रहे तथा प्रसूत माता और बालक को सब प्रकार सुख मिले।

नामकरण

इस संस्कार के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। बालक का कुछ नाम रखना चाहिये, इस पर तो किसी को कुछ आपत्ति हो ही नहीं सकती। हां, नाम किस प्रकार का रखा जाय यह इस संस्कार के प्रकरण में भली प्रकार बतलाया दिया है।

निष्क्रमण

इस संस्कार की क्रियाओं द्वारा बालक को पहिले पहिल प्रसूतिका-गृह से बाहर लाया जाता है। संस्कार में जो जो क्रियायें लिखी हैं वे सब बालक के प्रति माता पिता का प्रेम बढ़ाने वाली और बालकके स्वास्थ्यादि की उन्नति करने वाली हैं।

अन्नप्राशनविधि

जिस दिन बालक बड़ा होकर अन्न खाने में समर्थ हो जाय वह दिन स्वभावतः माता पिता की प्रसन्नता का दिन होना चाहिये। इस संस्कार द्वारा भी बालक के अन्न खाने की खुशीमें माता पिता से बालक की बल बुद्धि वृद्धि के लिये प्रार्थना करायी गयी है।

चूडाकर्म

चूडा नाम चोटी अथवा शिखा का है। इस संस्कार द्वारा बालक का मुण्डन करके सिर में शिखा रखी जाती है इस लिये इस का नाम चूडाकर्म है। केशोंका मुंडाना शुद्धता और सिर के हलकेपन, दोनों के लिये आवश्यक है। सिर हलका रहने से सोचने विचारने में भी सहायता मिलती है। इन कारणोंसे बालकका मुण्डन संस्कार कराना आवश्यक है।

कर्णवेध

कर्ण-वेध अर्थात् कान बींधनेका उल्लेख पारस्कर-गृह्यसूत्र के सिवा कर्मकाण्ड के प्राचीन किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता और पारस्कर के भी कात्यायन-मुनि-कृत परिशिष्ट-सूत्रों में ही इस का उल्लेख है। सुश्रुत के अनुसार कान एक विशेष नसके स्थान पर बींधना चाहिये। इस से सुश्रुत में आंत और अण्डकोष की वृद्धि न होने के दो लाभ बतलाये गये हैं। वैज्ञानिकों को इस विषय में और भी अनुसंधान करना चाहिये।

उपनयन

उपनयन शब्दका अर्थ है समीप लाना या लेजाना। इस संस्कारके द्वारा आचार्य बालक को विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य व्रत के लिये अपनी शरण में अर्थात् अपने समीप लेता है। इस लिये इस का नाम उपनयन है और क्योंकि इस व्रत-ग्रहण के चिह्नस्वरूप बालक को इस समय यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है इस लिये इस को यज्ञोपवीत अथवा मौंजी बन्धन संस्कार भी कहते हैं।

उपनयन संस्कार की जितनी क्रियायें हैं वे सब आचार्य और ब्रह्मचारी के सम्बंध को दृढ़ करने वाली हैं। आचार्य इस संस्कार में ब्रह्मचारी के हृदय पर हाथ रख कर

शपथ करता है कि मैं सदा तेरी रक्षा करूंगा और तेरे हृदय को अपने हृदय के अनुकूल रखूंगा। इसी प्रकार ब्रह्मचारी भी नये व्रत-ग्रहण के साथ साथ कई प्रतिज्ञाओं से आचार्य के साथ बन्धता है। आज कल की प्रचलित शिक्षाप्रणाली से प्राचीन शिक्षाप्रणाली की यह विशेषता है कि उस में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध शासक और शासित का नहीं, प्रत्युत पिता और पुत्र के समान प्रेम तथा उत्तरदायित्व का होता था। उपनयन संस्कारकी सब क्रियायें इस प्रकार के सम्बन्ध को प्रकट करने के लिये उपलक्षण मात्र हैं।

वेदारम्भ

उपनयन अर्थात् आचार्य और ब्रह्मचारी का परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो चुकने के अनन्तर अध्ययन का आरम्भ होता है। इस समय ब्रह्मचारी को आचार्य दण्ड मेखला आदि ब्रह्मचारी के चिह्न देता है और गायत्री मन्त्र का उपदेश करता है। गायत्री मन्त्र के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य-पालन के लिये आवश्यक अन्य भी जो नियमादि हैं उनका उपदेश भी बालक को इसी समय किया जाता है। ब्रह्मचर्य-काल में किस प्रकार वर्तना चाहिये और अध्ययन अध्यापन पाठ विधि आदि किस प्रकार की हों इन सब बातों का विस्तार से वर्णन स्वामीजी ने स्वयं मूल ग्रन्थ में कर दिया है, इस लिये यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

समावर्तन

समावर्तन शब्द का अर्थ है वापिस आना अर्थात् ब्रह्मचारी जब विद्याध्ययन समाप्त कर के आचार्य कुल से अपने पितृ कुल को वापिस आता है तब यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कार द्वारा वह ब्रह्मचर्य के जटा जूट आदि कठिन जीवन बिताने के चिह्नों को छोड़ कर साधारण मनुष्य-समाज के जूता छाता दुपट्टा आदि वेश और चिह्नों का धारण करता है।

विवाह

विवाह संस्कार स्वयं ग्रन्थकर्ता स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने बहुत विस्तार पूर्वक लिखा है और संस्कारके बीचमें भी स्थान स्थान पर मंत्रों आदिकी व्याख्या कर दी है। संस्कार के अन्त में अलगही एक गृहाश्रमका प्रकरण देकर गृहस्थियों के कर्तव्यों और आचार व्यवहारोंका उपदेश दिया है। इस सबका कारण यह है कि आजकल मनुष्य-समाज में गृहस्थ आश्रमकी जितनी दुर्दशा होगयी है उतनी अन्य किसी संस्कार अथवा आश्रमकी नहीं हुई। सामाजिक बुराइयोंकी अधिक संख्या गृहस्थ अथवा विवाह से ही सम्बन्ध रखने

वाली है । गृहस्थ आश्रम शेष तीन आश्रमोंका आधार है । यदि गृहस्थ आश्रमका सुधार हो जाय तो अन्य आश्रम भी शीघ्र सुधर जायं । इसलिये विवाह संस्कार को इतनी विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता हुई । संस्कार विधि में ही इसकी पूरी व्याख्या होने के कारण परिशिष्ट रूपसे कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं ।

वानप्रस्थ

वानप्रस्थका शब्दार्थ है वनको जाने के सम्बन्ध की क्रिया । गृहस्थाश्रम भोग चुकनेके अनन्तर जब मनुष्यकी सन्तानें स्वयं सब संसारका व्यवहार चलानेमें समर्थ हो जायं तब उसका कर्त्तव्य है कि वह समाज और जनताकी सेवाके लिये अपनेको न्योछावर कर दे । परन्तु इतना बड़ा त्याग बिना उपयुक्त तैयारी के नहीं हो सकता । यद्यपि मनुष्य जीवनके आदि में ही ब्रह्मचर्याश्रम के द्वारा तपस्वी जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास कराया जाता है परंतु गृहस्थाश्रम के भोगों के कारण उनका अभ्यास छूट जाना सम्भव है । इसलिये वानप्रस्थाश्रमकी व्यवस्था की गयी है कि गृहस्थाश्रम के अनंतर मनुष्य जङ्गलके एकान्त में तपोमय जीवन बिताता हुआ सर्वस्व-त्याग-पूर्वक समाज-सेवा की तैयारी कर ले । दूसरी बात यह भी है कि ब्रह्मचर्य काल में संसार का अनुभव न होने के कारण नवयुवक ब्रह्मचारी के विचार और अनुभव इतने परिपक्व नहीं हो सकते कि वह विघ्न बाधाओं से घबराये बिना सार्वजनिक सेवा का कार्य करता चला जाय । जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम बिता चुका है वह वानप्रस्थाश्रममें अपने अनुभवों द्वारा भी आत्मविचारके लिये सहायता ले सकता है । इस प्रकार वानप्रस्थ गृहस्थाश्रमके अनन्तर एक बड़े उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्यको सिरपर लेने के लिये आरम्भिक तैयारी का काल है । इस संस्कार के मन्त्रों में भी यही भाव प्रकट किया गया है कि वानप्रस्थी पुरुष सब भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे अपने व्रतकी पूर्त्तिके लिये सहायता प्राप्त करे ।

संन्यास

इस संस्कार की व्याख्या मूल ग्रन्थ में भी कुछ विस्तार के साथ की गयी है । इस संस्कार द्वारा मनुष्य भली बुरी सब वासनाओं और कर्त्तव्य-बन्धनों को छोड़ कर निष्काम रूपसे सार्वजनिक सेवा और भलाई करनेका व्रत ग्रहण करता है । इस व्रतकी पूर्त्ति द्वारा ही वह अपने सब धार्मिक कर्तव्यों के ऋण से छुटकारा पा जाता है । परन्तु यह कार्य कितना कठिन है इसकी कल्पना सहज ही हो सकती है । जिस देशमें और समाजमें दो चार भी सच्चे सन्यासी वर्तमान हों वह देश और समाज कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं पा सकता ।

॥ इति ॥

संस्कारप्रकाशकी विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय

ग्रन्थकारकी भूमिका ।

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मैंने बहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्णपक्ष ३० शनिवार के दिन संस्कारविधि का प्रथमारम्भ किया था, उसमें संस्कृतपाठ एकत्र और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करनेवाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर २ होने से कठिनता पड़ती थी। और जो १००० (एक हज़ार) पुस्तक छपे थे उनमें से अब एक भी नहीं रहा। इसलिये श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ़ वदि १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया। अब की वार जिन २ संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण वचन और प्रयोजन है वह २ संस्कार के पूर्व लिखा जायगा, तत्पश्चात् जो २ संस्कार में कर्त्तव्य विधि है उस २ को क्रम से लिखकर पुनः उक्त संस्कार का शेष विषय जो कि दूसरे संस्कार तक करना चाहिये वह लिखा है। और जो विषय प्रथम अधिक लिखा था उसमें से अत्यन्त उपयोगी न जानकर छोड़ भी दिया है। और अब की वार जो २ अत्यन्त उपयोगी विषय है वह २ अधिक भी लिखा है। इसमें यह न समझा जावे कि प्रथम विषय युक्त न था और युक्त छूट गया था उसका संशोधन किया है, किन्तु उन विषयोंका यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था। उसमें सब लोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी। इसलिये अब सुगम कर दिया है क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग समझ सकते थे साधारण नहीं। इसमें सामान्य विषय जो कि सब संस्कारोंके आदि और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिये वह प्रथम सामान्यप्रकरण में लिख दिया है और जो मन्त्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की संस्कारों में अपेक्षित है उसके पृष्ठ पंक्ति की प्रतीक उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी हैं कि जिसको देखके सामान्यविधि की क्रिया वहां सुगमता से कर सकें और सामान्यप्रकरण-का विधि भी सामान्यप्रकरण में लिख दिया है अर्थात् वहां का विधि करके संस्कार का-

कर्त्तव्यकर्म करे। और जो सामान्यप्रकरण का विधि लिखा है वह एक स्थान से अनेक स्थलों में अनेक वार करना होगा। जैसे अग्न्याधान प्रत्येक संस्कार में कर्त्तव्य है वैसे वह सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखने से सब संस्कारों में वारम्वार न लिखना पड़ेगा। इसमें प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना पुनः स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ तदनन्तर सामान्यप्रकरण पश्चात् गर्भाधानादि अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे हैं और यहां सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है क्योंकि इसमें कर्मकाण्ड का विधान है इसलिये विशेष कर क्रियाविधान लिखा है। और जहां २ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया है। और मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेदभाष्य में लिखे ही हैं, जो देखना चाहें वहां से देख लेवें। यहां तो केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिये संस्कारों को करना सब मनुष्यों को अति उचित है।

॥ इति भूमिका ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती



॥ ओ३म् ॥

संस्कार-प्रकाश।

अर्थात

संस्कारविधि

का

भाषानुवाद

ओं सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ तैत्तिरीय आरण्यके। अष्टमप्रपाठके। प्रथमानुवाके॥

गुरु और शिष्य सम्मिलित हो प्रार्थना करते हैं कि हमारा जीवन एक साथ व्यतीत हो, हम साथ मिलकर भोजन करें, हमारे बल वीर्य्य की वृद्धि साथ साथ हो, हमारा पढ़ा लिखा तेजस्वी हो अर्थात् हमारी विद्या सफल हो और हम परस्पर कभी द्वेष न करें।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः। भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः॥ १॥

सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, सृष्टिकर्ता, न्यायकारी, शुद्ध, संसार में पहिलेसे वर्तमान और अखिल जगत का नियन्ता परमात्मा हम सबकी सदा सहायता करे॥ १॥

गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि। वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परमेश्वरम्॥ २॥

उस सर्वज्ञ परमेश्वर को नमस्कार करके गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि-पर्य्यन्त सोलह संस्कारों की विधिको यहां लिखेंगे॥ २॥

वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात् । आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥ ३ ॥

वेदादि शास्त्रों के सिद्धान्तों का आदरपूर्वक विचार करके और आर्यों की प्राचीन रीति को लक्ष्य में रख कर शरीर और आत्माकी शुद्धि के लिये (संस्कारों का विधि लिखने का विचार किया है) ॥ ३ ॥

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते । असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥ ४॥

संसार में जिसे संस्कारों द्वारा संस्कृत कर लिया हो उसे शुद्ध और जिसका संस्कार न हुआ हो उसे अशुद्ध समझा जाता है ॥ ४ ॥

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः । शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥

इस लिये बुद्धिमानों को चाहिये कि सदा सुख की वृद्धि करनेवाले संस्कारोंकी शिक्षा और प्रचारको बढाते रहें ॥५॥

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः । वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥ ६॥

वेद-विद्यासे कोरे स्वार्थी और मूर्ख लोगों ने अनेक ग्रन्थ बनाकर बहुत सी अशुद्ध रीतियाँ प्रचलित कर दी हैं ॥ ६ ॥

प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः । जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥ ७ ॥

अतः प्रमाणोंसे उनकी बातोंकी उपेक्षा करके, लोगोंको सरलतासे समझानेके लिये, यह वेदानुकूल संस्कार-विधि बनायी जाती है ॥ ७ ॥

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ्मानवप्रियकारकैः । प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ॥ ८ ॥

समाजका हित करने और चाहनेवाले अनेक सज्जनोंने मुझे यह पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा की है ॥ ८ ॥

दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः, सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया । इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽस्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः ॥ ९ ॥

धार्मिक पुरुषोंको जान रखना चाहिये कि यह ग्रन्थ उन ब्रह्मज्ञानी स्वामी दयानन्द सरस्वतीका बनाया हुआ है जिनके विषयमें प्रसिद्ध है कि उनके सामने स्वयं सरस्वती प्रसन्नतापूर्वक सदा वर्तमान रहती है ॥ ९ ॥

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले । अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥१०॥

मैंने शनिवार कार्तिक कृष्णा अमावास्या सम्वत् १९३२ को इस ग्रन्थका आरम्भ किया था ॥ १० ॥

विन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले। त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥११॥

और रविवार आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी संवत् १६४० को फिर इसका संशोधन किया ॥ ११ ॥



अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना:

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों के पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब लोग उसमें ध्यान लगा कर सुनें और विचारें।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजु० अ० ३० । मं० ३ ॥

हे सकल सृष्टिके रचयिता परमेश्वर, आप हमारी सब बुराइयोंको दूर करके, सब भलाइयां हमें प्राप्त कराइये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० अ० १३ । मं० ४ ॥

जिस परमात्माने अपने गर्भमें सुवर्ण आदि रत्नोंको धारण किया हुआ है, जो इस सृष्टिकी उत्पत्तिके पहिलेसे वर्त्तमान है और समस्त उत्पन्न जगतका सर्व-विदित स्वामी है, उसी के सहारेमें पृथ्वी और आकाश स्थित हैं। हम उसी सुख-स्वरूप सृष्टिकर्ता परमात्माकी आत्मार्पण द्वारा स्तुति और उपासना करते हैं ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ य० अ० २५ । मं० १३ ॥

जो आत्मिक और शारीरिक बलका देने वाला है, जिसके शासन को सब विद्वान लोग प्रशंसा करते हैं, जिसका आश्रय अमृत है और जिसका वियोग मृत्यु है, हम उसी सुख-स्वरूप सृष्टिकर्ता परमात्मा की आत्मार्पण द्वारा स्तुति और उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ यजु० अ० २३। मं० ३ ॥

जो सब प्राणी और अप्राणी जगत का अपनी महिमा से एकमात्र राजा है और सब मनुष्य पशु पक्षी आदियों पर जो शासन करता है, हम उसी सुख-स्वरूप सृष्टि-कर्ता परमात्मा की आत्मार्पण द्वारा स्तुति और उपासना करते हैं ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व: स्तभितं येन नाक:। यो अन्तरिक्षे रजसो विमान: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ य० अ० ३२। मं० ६ ॥

जिसके द्वारा आकाश चमक रहा है और पृथ्वी अपने स्थानपर दृढ़ है, जिसने सुख और मोक्ष को धारण किया हुआ है और जो आकाश में सब लोक-लोकांतरों का निर्माण करता है, हम उसी सुख-स्वरूप सृष्टिकर्ता परमात्मा की आत्मार्पण द्वारा स्तुति और उपासना करते हैं ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १० ॥

हे प्रजाओंके स्वामिन् परमात्मन्, आपके सिवाय इन सब उत्पन्न जड़ चेतनादि पदार्थोंके ऊपर किसीका राज्य नहीं है। हम आपकी जिस इच्छासे प्रार्थना करें हमारी वह (इच्छा) पूर्ण हो। हम सब धनैश्वर्यके स्वामी हो जावें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥ यजु० अ० ३२। मं० १० ॥

वह परमात्मा हमारा जन्मदाता, पालक पोषक और बन्धु है। वह सब लोक-लोकांतरों को जानता है। मुक्त विद्वान् लोग अपने मुक्तिकालमें अमर सुखका आस्वादन करते हुए उसी के आश्रयमें विचरते हैं ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० अ० ४०। मं० १६ ॥

हे सर्व-प्रकाशक परमात्मन्, हमें आप ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये उत्तम मार्गसे ले जाइये। आप सब उत्तम कर्मोंके ज्ञाता हो। आप हमारे निन्दनीय पापोंको नष्ट कर दीजिये। हम बार बार आपको नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम्।



अथ स्वस्तिवाचनम् ।



अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ ऋ० मं० १ । सू० १ । मन्त्र १॥

मैं, यज्ञके सम्पादक और स्वामी सब ऋतुओंमें पूजनीय, सब अभीष्ट पदार्थोंके दाता और रत्नोंके धारण करनेवाले (परमात्मा अथवा भौतिक) अग्निकी स्तुति करता हूं ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥ ऋ० मं० १। सू० १। मन्त्र ९ ॥

हे अग्ने, जैसे पिता पुत्रको सब उत्तम पदार्थ देता है वैसे ही आप हमको दीजिये । सुख और शान्तिके लिये आप हम सबका मेल कराइये ॥२॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥३॥ऋ०मं०५।सू०५१।मं०११॥

* अश्विन् देव हमारी स्वस्ति (सुख, शान्ति और कल्याण) करें। ऐश्वर्यका स्वामी ईश्वर और अखण्डित विद्युत हम ऐश्वर्य-रहितोंकी स्वस्ति करें। सूर्य और मेघ हमारी स्वस्ति करें। चेतन जीवोंसे युक्त द्युलोक और पृथिवी लोक हमारी स्वस्ति करें ॥३॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १२ ॥

हम स्वस्तिके लिये वायु और चन्द्रमाकी उपासना करते हैं। संसारका जो स्वामी है वह हमारी स्वस्ति करे। अनेक सहायकोंकी सेना से युक्त बृहस्पतिकी हम स्वस्तिके लिये उपासना करते हैं। आदित्य हमारे लिये स्वस्तिकारक हों ॥ ४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥ ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १३ ॥

आज सब देव हमारे लिये स्वस्तिकारी हों। वैश्वानर वसु और अग्नि स्वस्तिकारी हों। मेधावी विद्वान् लोग स्वस्तिके लिये हमारी रक्षा करें। पापोंसे हमारी रक्षा करता हुआ रुद्र हमको हितकारी हो ॥५॥

* अश्विन् आदि शब्द प्रसंगानुसार परमात्मा के भिन्न भिन्न गुणोंका तथा भौतिक पदार्थोंका वर्णन करनेवाले हैं। आगे भी इस प्रकारके शब्दोंके विषय में ऐसाही समझना चाहिये। स्थानाभाव से उनकी विस्तृत व्याख्या नहीं की गयी।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ५१। सू० १४॥

मित्र और वरुण हमारे लिये स्वस्तिकारी हों। धनके मार्गमें हमारो स्वस्ति हो। इन्द्र और अग्नि हमको स्वस्तिकारो हों। हे अदिते, हमारी आप स्वस्ति कीजिये॥ ६॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ५१॥मं०१५॥

सूर्य और चन्द्रमाके समान हम स्वस्तिकारी मार्गका अवलम्बन करें और बार बार हमारा दानी, अहिंसक तथा ज्ञानी पुरुषोंसे मेल होता रहे॥ ७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥ ऋ०मं०७। सू०३५॥ मं०१५॥

जो पूजनीय विद्वानोंमें भी पूजनीय, मननशील पुरुषोंके साथ संगति करनेवाले, अमर और सत्यके ज्ञाता श्रेष्ठ महापुरुष हैं, वे आज हमें, सर्वत्र बहुत बहुत प्रशंसित उपदेशका दान करें और उनसे प्रार्थना है कि वे सदा स्वस्तिकारी उपायोंसे हमारी रक्षा करते रहें॥ ८॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥ ऋ० मं० १०। सू० ६३। मं० ३॥

जिनकी सहायतासे मातृ-रूप पृथिवी, और अखण्ड विजली तथा बादलोंसे युक्त आकाश, मधुर अमृतके समान पानीको बरसाते हैं, उन बहु-बल-शाली वृष्टिकारी, संसारका कल्याण करनेवाले आदित्योंको (सूर्य-किरणोंको) स्वस्तिके लिये हमें प्राप्त कराइये॥ ९॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥१०॥ ऋ० मं०१०। सू० ६३। मं० ४॥

जो पाप-रहित, अदम्य-बुद्धि-युक्त, ज्ञानरूपी रथपर चढ़कर सर्वत्र विचरने वाले, आलस्यरहित, मनुष्योंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाले पूजनीय विद्वान, मुक्त होकर द्युलोकके उच्च स्थानमें निवास कर रहे हैं, वे हमारे लिये स्वस्तिकारी हों॥ १०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये॥ ११॥ ऋ० मं० १०। सू० ६३। मं० ५॥

जो निरन्तर उन्नति-शील पुरुष सब विघ्न बाधाओंको जीत कर यज्ञादि सत्कार्योंमें योग देते रहते हैं वे ख्याति और प्रतिष्ठाको प्राप्त करते हुए मुक्त हो कर द्युलोकमें निवास करते हैं। उन आदित्यके समान महातेजस्वी और वृद्ध मुक्त पुरुषोंका हम नमस्कार और स्तुति द्वारा स्वस्तिके लिये आह्वान करते हैं॥ ११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरंकरद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥ ऋ०मं०१० । सू०६३ । मं० ६ ॥

हे द्विजन्मा विद्वान् पुरुषो, जो यज्ञ तुम्हारी स्वस्तिके लिये तुम्हारे पापों का नाश करता है, उसको तुम सबमें कौन अलंकृत करता है? और जिस स्तुतिको तुम करते हो उसे कौन बनाता है? (अर्थात् ये दोनों कर्म सबसे योग्य पुरुष द्वारा कराने चाहिये) ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥ ऋ०मं०१० । सू०६३ । मं०७॥

नित्य हवन करने वाले मनन-शील पुरुष जिनका मनोयोग-पूर्वक सबसे प्रथम आदर सत्कार करते हैं, वे आदित्य ब्रह्मचारी हमें अभय और सुखका दान करें और हमारी स्वस्तिके लिये हमारे धर्म-मार्गको सुगम बनावें ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥ ऋ०मं० १० । सू०६३ । मं०८ ॥

जो देव स्थावर और जङ्गम सकल संसारको भली प्रकार जानकर उसपर अधिकार किये हुए हैं वे आज स्वस्तिके लिये कृत और अकृत दोनों प्रकारके पापोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥ ऋ० मं० १० । सू०६३ । मं०९ ॥

हम अपनी विचार-सभाओंमें, पापसे मुक्त करने वाले निरभिमानी सुकर्मी और आस्तिक विद्वान् पुरुषों को बुलाते हैं और अन्न-प्राप्ति तथा स्वस्तिके लिये अग्नि, सूर्य, प्रशंसनीय वर्षा-जल, आकाश, पृथिवी और वायु, इन भौतिक शक्तियोंकी स्तुति करते हैं ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥१६॥ ऋ० मं०१० । सू० ६३ । मं०१०॥

हम स्वस्तिके लिये ऐसी नौका पर सवार हों जो सुरक्षित, विस्तृत, वायु व प्रकाशसे युक्त, निरुपद्रव, स्वच्छ स्थान वाली, सुनिर्मित, अच्छे चप्पू और पतवारों वाली, जानकार मल्लाहों से युक्त और निष्पाप हो और जो टूटी फूटी अथवा चूती हुई न हो ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥ ऋ०मं०१० । सू०६३ । मं०११ ।

हे सब पूजनीय विद्वानो, आप रक्षा के लिये हमें उपदेश कीजिये और दुख देने वाली दुर्गतिसे हमें बचाइये। अपनी रक्षा और स्वस्तिके लिये हम सच्ची वेदवाणी द्वारा आपकी स्तुति करते हैं। ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आ रे देवा द्वेषो

हे देवो, आप हमारे रोगोंको दूर कीजिये, सब यज्ञ न करने वालोंको दूर कीजिये, लोभियों ला-

अस्मद्युयोत नो रुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥ ऋ०मं०१०। सू०६३। मं०१२॥

रक्षियों दुष्ट कर्म करने वालों और पापियों को दूर कीजिये और हमारे शत्रुओंको आप हमसे दूर कीजिये तथा हमको स्वस्तिके लिये बहुत सुख दीजिये ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥ ऋ०मं०१०। सू०६३। मं० १३ ॥

हे आदित्य ब्रह्मचारी विद्वानो, आप जिस मनुष्य की सब दुष्ट प्रवृत्तियों को दूर करके स्वस्ति के लिये सुनीति-युक्त मार्ग से ले जाते हो, वह किसीसे पीड़ित न होता हुआ संसार में उन्नति करता है और धर्म-पूर्वक बाल बच्चों आदि सहित फलता फूलता है ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥ ऋ० मं०१०। सू०६३। मं०१४।

हे मरुत् देवो, हम स्वस्ति के लिये ऐसे रथ पर सवार हों, जिसकी तुम अन्न और धनके लिये युद्ध में रक्षा करते हो, जो प्रातःकाल में चलता है, जिस पर यन्त्र विद्याके ज्ञाता विद्वान बैठते हैं और जो तीव्र गतिसे चलता है ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥ ऋ० मं०१०। सू०६३। मं१५ ॥

हे मरुत् देवो, आप सजल तथा निर्जल मार्गों में हमारी स्वस्ति कीजिये। शस्त्रधारी सेनाओंमें और जलमय नदी समुद्र आदि प्रदेशोंमें हमारी स्वस्ति कीजिये। पुत्रोत्पन्न करने वाली योनियोंमें हमारी स्वस्ति कीजिये और धन-प्राप्तिके लिये हमारी स्वस्ति कीजिये ॥ २१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १०। सू० ६३ ॥ मं १६ ॥

जो पृथ्वी धन धान्यसे पूर्ण है और यज्ञादि सुकर्म करने वालोंको सुगमता से प्राप्त हो जाती है वह हमारे मार्गोंको श्रेष्ठ बनानेके द्वारा स्वस्तिकारी हो। उस पृथ्वी पर हम उत्तम उत्तम घर बना कर रहें और इस देव-रक्षित पृथ्वीके जङ्गलोंमें विचरते हुए भी हम सुरक्षित रहें ॥ २२ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो

सृष्टिका रचयिता और वायुवत सर्वत्र व्यापक परमात्म-देव, तुम सबको व्यष्टि और समष्टि रूप से, अन्न और बलकी प्राप्ति तथा श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म करने के लिये उचित ऐश्वर्यका भोग अर्पण करे। तुम उस ऐश्वर्यसे तृप्त होओ तथा नीरोग स्वच्छ, दूध आदिके लिये रक्षा करने योग्य और

ध्रु वा अस्मिन् गोपतौ स्यात वह्वीर्यज-मानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १ । मन्त्र १ ॥

बच्चे देकर अपना वन्श बढ़ाने वाले पशुओंकी वृद्धि करो । तुम्हारे में जो लोग चोर और पापी हैं उनका अधिकार इस पशु-सम्पत्ति पर मत होने दो। परमात्मा से प्रार्थना करो कि इन गवादि पशुओंकी सख्या स्थिरता-पूर्वक बढती रहे और वह इनकी रक्षा करे ॥ २३ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथासदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥२४॥ य० अ० २५ । मं १४॥

हमारे यज्ञ आदि सत्कर्म सदा सर्वत्र निर्विघ्न और उत्तम रीतिसे सम्पन्न होते रहें और हमपर ऐसी कृपा हो कि देव सदा अप्रमादी हो कर हमारी रक्षा तथा वृद्धि करते रहें ॥ २४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥ य० अ० २५ । मं १५ ॥

सरल स्वभाव वाले विद्वानोंकी शुभंकरी बुद्धि और विद्यादि दान हमको प्राप्त हों, हम विद्वानोंकी मित्रता प्राप्त करें और अधिक काल तक जीनेके लिये (आयुर्वेदके) विद्वान पुरुष हमें आयुका दान दें ॥ २५ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥ य० अ० २५ । मं० १८ ॥

स्थावर और जंगम सृष्टिके स्वामी, बुद्धि के प्रदाता उस ईश्वरका हम रक्षा के लिये आह्वान करते हैं ताकि वह सबका पोषक रक्षक और विघ्न-निवारक परमात्मा हमारी स्वस्ति और हमारे धनोंकी वृद्धि करे ॥ २६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥ य० अ० २५। मं० १९ ॥

विशाल कीर्तिमान् इन्द्र हमारे लिये स्वस्तिकारी हो। सर्वज्ञ पूषा हमारे लिये स्वस्तिकारी हो। दु:खहर्ता तार्क्ष्य हमारे लिये स्वस्तिकारी हो। बृहस्पति हमारे लिये स्वस्तिका धारण करे ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥ यजुः अ० २५ । मन्त्र २१ ॥

हे पूजनीय देवो, हम कानों से अच्छा सुनें आंखोंसे अच्छा देखें और ईश्वर का ध्यान करते हुए हमारी जितनी आयु है उस सब का पूर्ण स्वस्थ व बलवान रहते हुए भोग करें ॥ २८ ॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य-दातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥ साम छंद आ०। प्रपा० १। मं० १॥

हे अग्ने आप आइये ताकि हम आपकी स्तुति और आप के द्वारा यज्ञादिमें हवि दान कर सकें। आप यज्ञोंमें हमारे समीप उपस्थित हूजिये ॥ २९ ॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥ साम छंद आ०प्रपा० १। मंत्र २ ॥

हे अग्ने, आप सब यज्ञों के स्वामी हो और विद्वानों द्वारा मनुष्योंके बीच स्थापित हो अर्थात साधारण मनुष्यों के लिये यज्ञादि क्रियामें विद्वान आपकी स्थापना करते हैं ॥ ३० ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥ अथर्व० कां० १। अनु० १। सू० १। मन्त्र १ ॥

जो पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच महा-भूत, पंच तन्मात्रा और एक जीव ये इक्कीस अनेक रूप धारण करते हुए संसारमें विचरते रहते हैं, उन सबके बलको (वेद-वाणी का) स्वामी परमात्मा आज मेरे शरीरमें धारण करावे ॥ ३१ ॥

इति स्वस्तिवाचनम्।

अथ शांतिप्रकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १ ॥

इन्द्र और अग्नि रक्षा द्वारा हमारे लिये शान्ति-दायक हों। अन्न के दाता इन्द्र और वरुण हमारे लिये शांति-दायक हों। इन्द्र और सोम हमारे ऐश्वर्य के लिये शांतिदायक हों। इन्द्र और पूषा अन्नादि प्राप्ति के लिये हमको शान्ति-दायक हों ॥ १ ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० २ ॥

ऐश्वर्य हमको शान्ति दायक हो। प्रशंसा हमको शान्तिदायक हो। बुद्धि हमको शांति-दायक हो। धन हमको शान्ति-दायक हो। नियमानुवर्ती सत्यका उपदेश हमको शान्ति-दायक हो। पुरुषोंमें प्रसिद्ध न्यायाधीश हमको शान्ति-दायक हो ॥ २ ॥

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधा-

(जगत) का पालक हमको शान्ति दायक हो। (जगतका) धारण करने वाला हम को शान्ति-

भिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ३ ॥

दायक हो। पृथ्वी अपने अमृत समान अन्नादि द्वारा हमको शान्तिदायक हो। विशाल पृथ्वी और आकाश हमको शान्ति-दायक हों। पर्वत हमें शान्ति-दायक हों और देवोंके स्तुति-गान आदि हमको शान्ति-दायक हों ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं मित्रावरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ४ ॥

ज्योतिकी किरणें ही जिसकी सेना हैं ऐसा अग्नि हमें शान्ति-दायक हो। मित्र वरुण और अश्विन् देव हमें शांति-दायक हों। सत्कर्मियोंके सत्कर्म हमें शान्ति-दायक हों। गमन-शील वायु हमें शांति-दायक होता हुआ बहे ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ५॥

पूर्वोक्त मन्त्रोंमें निर्दिष्ट द्यु और पृथिवी हमें शान्ति-दायक हों। (सूर्य चन्द्र द्वारा हमारे देखनेमें सहायक) आकाश हमें शान्ति-दायक हो। जङ्गली औषधियां हमें शान्ति-दायक हों। लोकों का स्वामी विजेता (ईश्वर) हमें शान्तिदायक हो ॥ ५ ॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ६ ॥

इन्द्र देव धनों द्वारा हमें शान्ति-दायक हो। प्रशंसनीय वरुण सूर्य-किरणों द्वारा हमें शान्ति-दायक हो। जलका आधार रुद्र अपनी रुद्रता द्वारा हमें शान्तिदायक हो। त्वष्टा हमारी स्तुतियोंको सुने और हमें शान्तिदायक हो ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ७ ॥

सोमरस, सोमरस निकालने वाला ब्राह्मण, रसे पीसने के पत्थर, यज्ञ, यज्ञों के स्तम्भे, औषधियां और वेदी ये सब हमें शान्ति दायक हों ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ८ ॥

अत्यन्त तेजोमय सूर्य हमें शांति देने के लिये उदित हो। चारों दिशायें, दृढ़ पर्वत, नदी, समुद्र और जल ये सब हमें शान्ति-दायक हों ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु। शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ९ ॥

अदिति व्रतों द्वारा हमें शान्ति-दायक हों। प्रशस्त मरुत् हमें शान्ति-दायक हों। विष्णु, पूषा, भवितव्यता और वायु ये सब हमें शान्ति-दायक हों ॥ ९ ॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥१०॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १० ॥

स्रष्टा और रक्षक देव हमें शान्तिदायक हो। प्रातःकालकी ज्योतियें हमें शांतिदायक हों। बादल और खेतों के मालिक किसान सबको शान्ति देने वाले हों ॥ १० ॥

शं नो देवा विश्वदेवाः भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ११ ॥

यावन्मात्र देव हमें शान्तिदायक हों। बुद्धि सहित सरस्वती (विद्या) हमें शान्तिदायक हो। अपने बलसे जीने वाले और दान आदि के सहारे जीने वाले दोनों हमें शान्तिदायक हों। आकाश, पृथ्वी और जल इन तीनोंसे उत्पन्न होने वाले पदार्थ हमें शान्तिदायक हों ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १२ ॥

सत्यके पालक हमें शान्तिदायक हों। गाय और घोड़े हमें शान्तिदायक हों। सत्कर्मी कुशल विद्वान हमें शान्तिदायक हों। स्तुति आदि के समय वृद्ध पिता हमें शान्तिदायक हों ॥ १२ ॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १३ ॥

अजन्मा और जगतका एकमात्र पालक देव हमें शान्तिदायक हो। मेघ और समुद्र हमें शान्तिदायक हों। जलमें पार ले जाने वाली नौका हमें शान्तिदायक हो। देवों से रक्षित आकाश हमें शान्तिदायक हो ॥ १३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ य० अ० ३६। मं० ८ ॥

इन्द्र सकल संसारका राजा है। वह द्विपाद और चतुष्पाद सब प्राणियों के लिये शान्तिदायक हो ॥ १४ ॥

शं नो वातः पवता$\smile$ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥ य०अ० ३६ ।मं०१०॥

वायु हमारी शान्ति के लिये बहे। सूर्य हमारी शान्ति के लिये तपे। गरजने वाला बादल हमारी शान्ति के लिये बरसे ॥ १५ ॥

अहानि शं भवन्तु नः श$\smile$ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इद्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥ य० अ० ३६। मं ११ ॥

दिन और रात हमारी शान्ति के लिये हुआ करें। इन्द्र और अग्नि रक्षा द्वारा हमें शान्तिदायक हों। अन्नके दाता इन्द्र और वरुण हमें शांतिदायक हों। इन्द्र और पूषा हमें अन्नादि दान के समय शान्तिदायक हों। इन्द्र और सोम ऐश्वय के लिये हमें शान्तिदायक हों ॥ १६ ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१७॥ य० अ० ३६। मं० १२ ॥

दिव्य-गुण-युक्त जल हमारे पीने और अभीष्ट कार्यों के लिये शान्तिदायक हों। वे हमारे रोगादि नाश के लिये बहते रहें ॥ १७ ॥

द्यौः शांतिरन्तरिक्ष$\smile$ शांतिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व$\smile$ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥ य० अ० ३६। मं १७ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, औषधियां, वनस्पतियां, सब देव और ब्रह्म ये सब हमारी शान्ति के लिये हों। सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो जाय। वह शान्ति मुझे प्राप्त हो ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत$\smile$ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥ य० अ० ३६। मं० २४ ॥

देवोंका हितकर्ता, शुद्ध और सबका नेत्र वह परमात्मा पहिले से यहां सर्वोपरि विचरता है। हम उसकी कृपा से सौ वर्ष तक देखते, सुनते, बोलते और स्वतन्त्र रहते रहें। और सौ वर्ष से भी अधिक जीवन का आनन्द उपभोग करते रहें ॥ १९ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥ य० अ० ३४। मं० १ ॥

जो दिव्य-शक्ति-सम्पन्न मेरा मन सोते और जागते, दोनों समय, दूर दूर भटकता रहता है और ज्योतियोंका भी ज्योति है, वह शुद्ध और उत्तम विचारों वाला होवे ॥ २० ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥ य० अ० ३४। मं० २॥

कर्मकाण्डी विद्वान धीमान् लोग यज्ञोंमें और धीर लोग युद्धों में जिसकी सहायता से सब कर्म करते हैं और प्राणियोंमें जो अपूर्व शक्ति है, वह मेरा मन शुद्ध व उत्तम विचारों वाला हो ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२२॥ य०अ० ३४। मं० ३ ॥

जो प्राणियों के अन्दर ज्ञान, चेतना, धैर्य और अमृत समान ज्योति, इन सबका प्रयोजन सिद्ध कर रहा है और जिसके विना कोई काम नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ व उत्तम विचारों वाला हो ॥ २२ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥ य० अ० ३४। मं० ४ ॥

जिस अमर मनने भूत, वर्तमान और भविष्यतको धारण किया हुआ है और सात होताओं वाले (अग्निष्टोमादि) यज्ञ जिसकी सहायतासे किये जाते हैं, वह मेरा मन शुभ व उत्तम विचारों वाला हो ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥ य० अ० ३४। मं० ५॥

जिसमें साम, यजु और ऋग्वेद इसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जैसे रथके पहिये की नाभिके सहारे अरे रहते हैं और सब प्राणियोंका चित्त जिसके आधीन रहता है, वह मेरा मन शुद्ध व उत्तम संकल्प वाला हो ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥ यजु० अ० ३४। मन्त्र ६ ॥

जैसे अच्छा कोचवान लगामों से घोड़ों को हांकता है वैसेही जो मनुष्योंको हांकता है, जो हृदयमें प्रतिष्ठित है, आलस्य-रहित और वेग-गामी है, वह मेरा मन शुभ व उत्तम संकल्पों वाला हो ॥ २५ ॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शꣳ राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम० उत्तरार्चिके प्रपा०१। मन्त्र१ का उत्तरार्द्ध ॥

जो आप संसार के राजा हैं वह हमारे गाय, घोड़े आदि पशुओं, औषधि आदि वनस्पतियों और बाल बच्चों के लिये शान्तिदायक हों ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥ अथर्व० का० १९। सू० १७। मं० ५ ॥

हमें अन्तरिक्ष, द्यु और भूमि, तीनों लोकोंमें अभय प्राप्त हो। आगे पीछे और ऊपर नीचे सब ओरसे अभय प्राप्त हो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः। अभयंनक्तं मभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥ अथर्व०कां०१९।सू०१७। मं०६॥

मित्र अमित्र और ज्ञात, अज्ञात सब से हमें अभय प्राप्त हो। रात दिन हमको अभय रहे और सब ओर से मेरे साथ मित्रवत् व्यवहार हो ॥ २८ ॥

इति शान्तिप्रकरणम्।



अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारोंमें करनी चाहिये। परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि यहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना स्थान २ में जना दिया जायगा।

शुद्देयज्ञ—यज्ञका देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकारका उपद्रव न हो।

यज्ञशाला—इसीको यज्ञमण्डप भी कहते हैं। यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम-चौरस चौकोण और न्यूनसे न्यून ८ (आठ) हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशालाको पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो हाथ खोद अशुद्ध निकालकर उसमें शुद्ध मिट्टी भरें। यदि १६ (सोलह) हाथ की सम-चौरस हो तो चारों ओर २० खंभे और जो आठ हाथकी हो तो १२ (बारह) खम्भे लगाकर उन पर छाया करें। वह छायाकी छत्त वेदीकी मेखलासे १० (हाथ) ऊंची होवे और यज्ञशालाके चारों दिशामें ४ द्वार रक्खें और यज्ञशालाके चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें। नित्य मार्जन तथा गोमयसे लेपन करें। और कुंकुम हलदी मैदाकी रेखाओंसे भूषित किया करें। मनुष्योंको योग्य है कि सब मङ्गलकार्योंमें अपने और पराये कल्याणके लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। इसलिये निम्न-लिखित सुगन्धित आदि द्रव्योंकी आहुति यज्ञ-कुण्डमें देवें।

यज्ञकुण्डका परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर समचौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तलेमें एक १ हाथ चौकोण लम्बा

चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियोंमें दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियोंमें छः हस्त परिमाणका चौड़ा और चौरस कुण्ड बनाना। और जो पचास हज़ार आहुति देनी हो तो एक घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे। तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे। दश हज़ार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और आधा हाथ नीचे रखना। पांच हज़ार आहुति तक डेढ हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे। यह कुण्डका परिमाण विशेष घृताहुतिका है यदि इसमें २५०० (ढाई हज़ार) आहुति मोहनभोग, खीर और २५०० (ढाई हज़ार) घृतकी देवे तो दो ही हाथका चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे कुंड रक्खे। चाहे घृतकी हज़ार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथसे न्यून चौड़ा गहिरा समचौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डोंमें १५ (पन्द्रह) अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुलकी ऊंचा ३ (तीन) बनावे। और ये तीन मेखला यज्ञशालाकी भूमिके तलेसे ऊपर करनी। प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञसमिधा

पलाश, शमी, पीपल, वड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदीके प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें। परंतु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिनदेशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीचमें चुनें।

होमके द्रव्य चार प्रकार

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि। (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुवारे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ।

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधिसे भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे। इसका प्रमाणः—

ओम् देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेणसूर्यस्य रश्मिभिः॥

सृष्ट्युत्पादक परमेश्वर तुझको (यज्ञ वा यज्ञिय पदार्थको) जल और सूर्यकी किरणें आदि पवित्र करनेके दोष-रहित साधनोंसे शुद्ध करे।

इस मन्त्रका यह अभिप्राय है कि होमके सब द्रव्यको यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये अर्थात् सबको यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें, इन द्रव्योंको यथायोग्य मिलाके पाक करना। जैसे कि सेर भर मिश्रीके मोहनभोगमें रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर; दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डाल कर, मोहनभोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होमके लिये बनावें। चरु अर्थात् होमके लिये पाक बनानेकी विधि

ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि। तुझे अग्निके लिये प्रीति पूर्वक छोड़ता हूं।

अर्थात् जितनी आहुति देनी हो प्रत्येक आहुतिके लिये चार २ मुट्ठी चावल आदि ले के

ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। तुझे अग्निके लिये प्रीति-पूर्वक धोता हूं।

अर्थात् अच्छे प्रकार जलसे धोके पाकस्थालीमें डाल अग्निमें पका लेवे। जब होमके लिये दूसरे पात्रमें लेना हो तभी नीचे लिखे आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थालीमें निकाल के यथावत् सुरक्षित रखें और उस पर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठके पात्र होने चाहियें निम्नलिखित प्रमाणेः—

अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः पडङ्गुलखातास्त्वग्बिला हंसमुखप्रसेकाः मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति। तत्र पालाशी जुहूः। आश्वत्थ्युपभृत्। वैकङ्कती ध्रुवा। अग्निहोत्रहवणी च। अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः अङ्गुष्ठपर्वमात्र-पुष्करः। तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः। वारणं बाहुमात्रं मकराकारम-ग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम्। अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम्। वारणान्यहोमसंयुक्तानि। तत्रोलूखलं नाभिमात्रम्। मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलूखले वार्क्ष्ये सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः। तथा—खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः। यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ॥ शूर्पं वैणवमेव वा। ऐषीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम्। प्रादेशमात्री वारणी शम्या। कृष्णाजिनमखण्डम्। दृषदुपले अश्ममये। वारणीं हस्तमात्रीं अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम्। अरत्निमात्राणि ब्रह्म-यजमानहोतृपत्न्यासनानि। मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम्। प्रादेशदीर्घे

अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ। प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम्। आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे। तयोरेकमीषत्खातमध्यम्। षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवदात्तम्। द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम्। उपवेशोऽरत्निमात्रः। मुञ्जमयी रज्जुः। खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शंकून्। यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम्। तथा प्रणीतापात्रञ्च। आज्यस्थाली द्वादशांगुलविस्तृता प्रादेशोच्चा। तथैव चरुस्थाली। अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तम्। समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयम्। कौशं बर्हिः। ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि। पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमं वासश्चतुष्टयम्। अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः। द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः। षट्पक्षे त्रयोदश। सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः। वरार्थं चतस्रो गावः॥

स्रुवे चार प्रकार के होते हैं। ये सब डेढ़ हाथ लम्बे, हथेली भर चिल्ले (वह भाग जिसमें घी आदि भरा जाता है) वाले, लकड़ी के वक्कल की ओर से खोद कर छै अंगुल गहरे बनाये हुए और हंस की चोंच के समान घी डालने के लिये नोकीले होने चाहिये। इनमें जुहू नामका स्रुवा पलाश (ढाक) की लकड़ीका; उपभृत-पीपल की लकड़ी का, ध्रुवा विकंकत (कटाई) की लकड़ी की, और स्रुव खैर की लकड़ी का, तथा चौवीस अङ्गुल भर लम्बा और अंगूठेकी पोरी भर गहरा होता है। अग्निहोत्रहवणी (चावल आदि धोने के लिये जलका पात्र) भी विकंकत की लकडी का बनाया जाय। एक दूसरा स्रुव विकंकत का भी बनाना चाहिये। अग्निहोत्रहवणीके नीचे रखने के लिये मगर की आकृतिका डेढ़ हाथ लम्बा वरना [वारुणी] की लकडी का एक 'कूर्च' (पटड़ा) बनाना चाहिये। जिन पात्रोंका उपयोग यज्ञ करते हुए नहीं होता वे सब वरना की लकड़ी के बनाये जांय। वज्र डेढ़ हाथ लम्बा तलवारकी शकलका खैरका बना हो। ओखली नाभि जितनी ऊंची और मूसल सिरके बराबर ऊंचा हो। ओखली और मूसल इच्छानुसार छोटे बडे या और भी किसी अच्छी लकड़ी के बनाये जा सकते हैं। कहा भी है कि मूसल खैर का, ओखली पलाश को अथवा दोनों ही वरना की लकड़ी के बनाये जावें। और जो ये लकड़ियां न मिलें तो किसी और लकड़ी के बना लिये जावें। छाज बांसका तथा झाड़ू के तिनकों अथवा नल नामक घास का हो परन्तु उसमें चमड़ा न लगाया जाय। शम्या (पीसने को सिलको एक ओर से ऊंचो करने की लकड़ी) वरना की और १२ अंगुल लम्बी हो। काले हिरण का चमड़ा अखण्डित और सिल और लोंढ़ा पत्थर के हों। इडापात्र [यज्ञ के अवशिष्टांश रखने का पात्र] वरना का डेढ हाथ अथवा चौबीस अंगुल भर लम्बा बीच में से खुदा हुआ और मध्य भागमें तंग बनाया जाय। ब्रह्मा, यजमान, होता और उनकी बीवियों के आसन चौबीस अंगुल लम्बे हों। योक्त्र [यजमान की बीवी के कटि प्रदेशमें बांधने की रस्सी] तीन लड़ोंवाली, मूंज की और दोनों भुजा फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है उतनी लम्बी

स्रुवे ४
लम्बाई २४ अंगुल

शाम्य १;
१२ अङ्गुल लम्बी

अन्तर्धानकट १;
१२ अङ्गुल लम्बा

खांडा १;
२४ अङ्गुल लम्बा



घृतावदान, १२ अं०
लम्बा

कूर्च, डेढ़
हाथ लम्बा

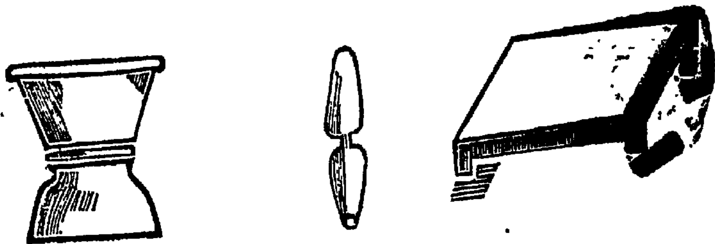
स्रुच् सर्व ४, डेढ़ डेढ़
हाथ लम्बे



उलूखल; नाभि जितना ऊंचा

मुसल; सिर जितना ऊंचा

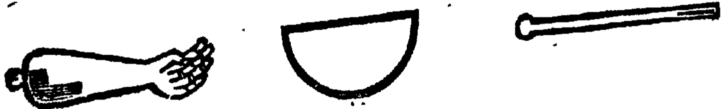
पाटला ४; लम्बे २४ अङ्गुल



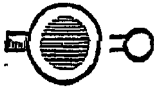
उपवेश १; अं० २४ लम्बा

पूर्णपात्र; अं० १२ लम्बा
अं० ४ चौड़ा और गहरा

अभ्रि० १; अं० २४ लम्बी



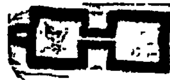
प्राशित्रहरण २; दर्पणाकार



पिष्टपात्री,



षड्वदात्त; १२ अङ्गुल लम्बा



पुरोडाशपात्री २; १२ अंगुल लम्बी



प्रणीता अं० १२ लम्बी।



प्रोक्षणी अं० १२ लम्बी।



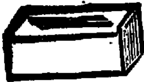
अंगोछा २४ अंगुल लम्बा।



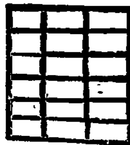
अरणी ४।



अङ्गुल ६ पोली अङ्गुल ४ ऊंची अधराणि



उत्तरारणि टुकड़ा १८ अङ्गुल लम्बा



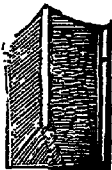
(सिल) दृषद्



उपल (लोढा)



शूर्प (छाज)



इडा, २४ अङ्गुल लम्बी



हो। दो पुरोडाशपात्रियां बारह अंगुल लम्बी, आठ अंगुल चौड़ी और छे अंगुल गहरी बनायी जांय। शतावदान [पुरोडाशको काटनेका छुरा] बारह अंगुल लम्बा दो अंगुल चौड़ा और तेज हो। दो प्राशित्रहरण [भोजन करने योग्य यज्ञ का भाग रखने के पात्र] दर्पण की भांति अण्डाकृति अथवा चौकोने हों। उनमें से एक बीच में से कम खुदा हो। षडवदात्त [आग्नीध्र का भोज्य भाग रखने का पात्र] छे अंगुल लम्बा कंघीकी शकलका और दोनों ओर खुदा हुआ हो। अन्तर्धान कट [आग की लपट से बचने का पट्टा] बारह अंगुल लम्बा और आठ अंगुल ऊंचा अर्धचन्द्र की शकलका बनवावें। अङ्गारे रखने के लिये चौबीस अङ्गुल का उपवेश नामक पात्र हो। रस्सी मूंज की हो। खूंटे [यज्ञ मण्डप तानने या यज्ञिय पशु बांधने के लिये] बारह अङ्गुल लम्बे सिर की तरफ से चार अंगुल मोटे और नीचे से पैने बनाये जांय। यजमान और उनकी बीवी के पूर्णपात्र [इन दोनों के खाने का हविर्भाग रखने के लिये] बारह अंगुल लम्बे चार अङ्गुल चौड़े और चार अंगुल गहरे बनवाये जांय। प्रणीतापात्र [यज्ञिय जल रखने का पात्र] भी पूर्णपात्र सरीखा हो। घी रखने की पतीली बारह अंगुल ऊंची और बारह अंगुल चौडी हो। चरु याने आहुतियों का अन्न रखने का पात्र भी ऐसा ही हो। अन्वाहार्य पात्र [होता आदि के भोजन रखनेका वर्तन] इतना बड़ा हो कि उसमें चार पुरुषोंका भोजन पकाया जा सके। इंधन की समिधायें ढाककी हों। बर्हि [वेदी के चारों ओर बिछाया हुआ घास] कुशाओंका हो। ऋत्विजों के पहनने को कुण्डल अंगूठी और कपड़े तथा यजमान की बीवी के पहनने को चार रेशमी कपड़े भी तैयार रहें। दक्षिणा के लिये यदि चौबीस व्यक्ति हों तो उनंचास, यदि बारह हों तो पचीस और छे हों तो तेरह गायें लेनी चाहिये। अथवा सभी के लिये आठ गौवें पर्याप्त हैं। वर को चार गौवें देनी चाहिये।

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः—'ओमा वसोः सदने सीद' इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने का इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे। ऋत्विगुक्तिः—'ओं सीदामि' ऐसा कहके जो उसके लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे। यजमानोक्तिः—'अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे'। ऋत्विगुक्तिः—'वृतोऽस्मि'। ऋत्विजों का लक्षण—अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले वेदवित् एक दो तीन अथवा चार का वरण करें। जो एक हो तो उसका पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा। इनका आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणमें आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक आसन पर बैठाना और ये प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित

कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने अपने जलपात्रसे सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन तीन आचमन करें अर्थात् एक एक से एक एक बार आचमन करें। वे मन्त्र ये हैं।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।१॥

हे जल, तू अमृत और प्राणियोंका आधार-भूत है॥१॥

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।२॥

हे जल तू अमृत और रोगों को रोकने वाला है॥२॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥ तैत्तरी० प्र० १०। अनु० ३२-३५॥

मुझको सत्य, यश, धन, लक्ष्मी और शोभा प्राप्त हों।३॥

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल करके अंगों का स्पर्श करें।

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु।
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु।
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु।
ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु।
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु॥ पारस्कर गृ० कण्डिका ३। सू० २५॥

मेरे मुखमें वाणी की, नथुनोंमें प्राण वायु की, आंखोंमें दृष्टि की, कानोंमें सुनने की, बाहुओंमें बल की और जांघोंमें ओजकी प्रतिष्ठा हो। मेरे शरीर के सब अङ्ग नीरोग हों और शरीर शारीरिक बलसे युक्त हों॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना। पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें। पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः॥ गोभिल गृ० प्र० १। खं० १। सू० ११॥

भूः, भुवः और स्वः ये तीनों नाम परमात्मा के हैं। आरम्भमें मंगलाचरण के रूपसे परमात्मा का नाम उच्चारण किया है॥ अथवा ये तीनों शब्द तीनों लोकों के वाचक भी हैं। यज्ञ के आरम्भ में तीनों लोकों की हित-कामनार्थ इनका उच्चारण किया जाता है, ऐसा भी अभिप्राय सम्भव है।

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी छोटी लकड़ी

लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे। वह मन्त्र यह है।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव व्वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥ यजु० अ० ३। मं० ५॥

विद्वान जिसमें यज्ञ करते हैं, ऐसी हे पृथ्वि, मैं तेरी पीठ पर, तीनों लोकोंमें अपनी चमकसे आकाश के समान और महिमासे पृथ्वी के समान सर्वविदित, अन्न के खाने वाले अग्निको अन्न खाने के लिये स्थापित करता हूं। १।

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्निको धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳬसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु०अ० १५। मं०५४॥

हे अग्ने, तू चेतन हो जा और जलने लग। तू और यह यजमान अभीष्ट धार्मिक कार्यों के लिये सम्मिलित हों। इस उत्तम घरमें सब विद्वान पुरुष और यजमान आकर बैठें॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकडी आठ आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक एक नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढावें। वे मन्त्र ये हैं—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम॥ १॥

हे जातवेदा अग्ने, यह इंधन तेरा आत्मा है, इससे तू प्रदीप्त हो और बढ तथा हम को भी बाल बच्चों, पशुओं, ब्रह्म वर्चस और अन्न आदि से फलता फूलता और समृद्ध बना। यह जातवेदा अग्नि के लिये है—मेरे लिये नहीं॥ १॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥ २॥ य० अ० ३। मं० १॥ इससे और—

अग्नि की समिधाओ [इंधन] से सेवा करो और उसे अतिथि के समान घी से सन्तुष्ट करो। इसमें हवि [यजनीय पदार्थों] की आहुतियां दो। यह अग्नि के लिये है मेरे लिये नहीं॥ २॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम॥ ३॥ य० अ० ३। मं० २॥

अच्छी तरह जलते हुए, प्रदीप्त, जातवेदा अग्नि के लिये औषधियुक्त घी की आहुतियां दो। यह जातवेदा अग्नि के लिये है—मेरे लिये नहीं॥ ३॥

इस मन्त्रसे अर्थात् दोनों मन्त्रोंसे दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम। यजु० अ० ३। मं० ३॥

हे अंगिरा (गमन-शील) अग्ने, पूर्वोक्त वर्धित तुझको हम समिधाओं और घीसे बढ़ाते हैं। हे बलवान अग्ने, तू खूब प्रदीप्त हो। यह अंगिरा अग्नि के लिये है—मेरे लिये नहीं॥ ४॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठपात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरिलिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रोंमें रक्खा हो, उस, घृत वा अन्य मोहन-भोगादि जो कुछ सामग्री हो, मेंसे कमसे कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे यही आहुति का प्रमाण है। उस घृत में से चमसा, कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम॥ १॥

(इसका अर्थ २१ वें पृष्ठमें देखिये।)

तत्पश्चात् अञ्जलिमें जल लेके वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावे। उसके ये मन्त्र हैं:—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व।

हे अदिते, (अखण्ड परमात्मन्) हमें अनुकूल मति दीजिये।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व।

हे अनुमते, (अनुकूल मति के दाता परमात्मन्) हमें अनुकूल मति दीजिये॥

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥

गोभिल गृ० प्र० ख० ३। सू० १-३॥

हे सरस्वति (विद्याओंके स्वामी) परमात्मन्, हमें अनुकूल मति दीजिये॥

ओं देवसवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु। यजु० अ० ३०। मं० १॥

हे सृष्टि के कर्ता और स्वामिन्, आप ऐश्वर्य के लिये यज्ञ और यज्ञ-कर्ताओंको उत्पन्न कीजिये। दिव्य गुणोंसे युक्त, वाणीका धारण करने वाला और ज्ञानका पवित्र-कर्ता हमारे ज्ञानको शुद्ध करे। वाणीका स्वामी हमारी वाणीको शुद्ध बनावे

इस मन्त्रसे वेदीके चारों ओर जल छिड़कावे। इसके पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारोंमें अवश्य करें। इसमें मुख्य होम के आदि और अन्तमें जो आहुति दी जाती है उनमें से यज्ञकुण्डके उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्डके दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं। सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

इनका अर्थ स्पष्ट है।

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्निमें,

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम॥ गो० गृ० प्र० १। ख ८।

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी। तत्पश्चात्

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम॥

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके जब प्रधान होम अर्थात् जिस जिस कर्म में जितना जितना होम करना हो करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें। पुनः शुद्ध किये हुये उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति को चार आहुति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥

ओं भुववायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥

भूः, भुवः और स्वः ये तीनों क्रमशः तीन लोकों के नाम हैं और अग्नि वायु और सूर्य क्रमशः इन्हीं तीनों लोकोंमें मुख्यतः विद्यमान हैं। अतः इनके द्वारा भूलोक-वर्ती अग्नि, भुवर्लोक-वर्ती वायु और और स्वर्लोक-वर्ती आदित्य के लिये एक एक आहुति देकर फिर एक आहुति तीनों के लिये सम्मिलित दी जाती है। अभिप्राय यह है कि ये तीनों मनुष्य मात्र के लिये अनुकूल तथा सुखकारी हों॥

ये चार घी को आहुति देकर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है यह घृत अथवा भात की देनी चाहिये। उस का मन्त्रः—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम॥ शतपथ कां० १४। ९। ४। २४।

जो कर्म, मैंने उचित मर्यादा से अधिक (अतिरिक्त) अथवा कम किये हैं, उनको, अच्छे इष्ट कार्यों का साधक अग्नि, जानता हुआ, उन्हें मेरे लिये इष्ट अनुकूल और सुफल-दायक बनाए। मैं यह आहुति इष्ट कार्यों के साधक, सब प्रायश्चित्तोंके निवारक और सब इच्छाओं के पूरक अग्नि के लिये देता हूं। हे अग्ने, तू हमारी सब कामनाओंको पूर्ण कर। यह अभीष्टों के साधक अग्नि के लिये है, मेरे लिये नहीं॥

इस से एक आहुति करके प्राजापत्याहुति करे। नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम॥

इस से मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें। परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मन्त्र ये हैं:—

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥१॥ ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं १९॥

हे अग्ने, तू आयु का रक्षक है, हमको बल और अन्न दे। रोग-जन्तु आदि शत्रुओंको हमसे दूर ही रख॥ यह रक्षक अग्नि के लिये है—यह मेरे लिये नहीं॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥२॥ ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं २०॥

अग्नि सर्वद्रष्टा, रक्षक अथवा शोधक, नीचे से ऊपर तक सब लोगों के लिये समान और प्रत्येक कार्य में सामने रखा जानेवाला है। उस महा गुणवान अग्नि से हम याचना करते हैं॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥३॥ ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० २१॥

हे सत्कर्म-कर्त्ता अग्ने, हमको बल और वीर्य दे। मुझमें पुष्टि और धनका आधान कर॥३॥

इनसे घृतकी चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रोंसे सर्वत्र

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

हे प्रजाओं के स्वामिन्, इन सब उत्पन्न हुए प्राणियों पर तुझ से अधिक किसी का अधिकार नहीं है। हम जिस इच्छा से तुझे आहुति देते हैं वह हमारी पूर्ण हो और हम धन सम्पत्ति के स्वामी हो जांय॥ यह प्रजापतिके लिये है—मेरे लिये नहीं ॥४॥

इनसे घृतकी चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रोंसे सर्वत्र मङ्गल कार्योंमें ८ (आठ) आहुति देवें परन्तु किस किस संस्कारमें कहां २ देनी चाहिये यह विशेष बात उस उस संस्कारमें लिखेंगे। वे आठ आहुति-मन्त्र ये हैं :—

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥ ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४॥

हे विद्वान् अग्ने, तू हमको वरुण देव के (परमात्मा) के क्रोध से दूर रख। तू यजनीयोंमें श्रेष्ठ, सुगन्ध आदि को वहन करने वालोंमें श्रेष्ठ और दीप्ति वालोंमें भी श्रेष्ठ है। हमारे सब द्वेष भावोंको नष्ट कर॥ यह अग्नि और वरुण के लिये है—मेरे लिये नहीं॥ १॥

ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ २॥ ऋ०मं०४। सू०१। मं०५॥

हे पूर्वोक्त अग्ने, तू हमारा रक्षक और इस प्रातःकालके यज्ञमें हमारा समीपवर्ती हो। हमारे अभीष्टों को दान करता हुआ तू हमारे वरुण (पाप?) को परास्त कर, हमारी सुखदायिनी आहुति को स्वीकार कर और हमारी स्तुतिको शीघ्र शीघ्र सुनाकर॥ २॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम॥ ३॥ ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १६॥

हे वरुण आज मेरी इस स्तुतिको तू सुन और मुझे सुखी कर। अपनी रक्षा चाहता हुआ मैं तुझसे याचना करता हूं॥ यह वरुण के लिये है—मेरे लिये नहीं॥ ३॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः

हे वरुण, मैं तेरी 'ब्रह्म' (वेद) द्वारा वन्दना करता हुआ जिस [आयु को] तुझसे मांगता हूं, यजमान आहुतियों द्वारा उसी की इच्छा करता है। तू हम

प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥ २४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

पर क्रोध न करता हुआ यहां बैठा और है अनेकोंसे स्तुति योग्य वरुण, तू हमारी आयु को कम न कर ॥ ४ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चंतु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ॥ ५ ॥

हे वरुण, जो सैकड़ों व हजारों यज्ञ के बड़े बड़े पाश [विघ्न] तुम्हारी सृष्टिमें फैले हुए हैं, उनसे आज आप, सविता, विष्णु, सब देव और आकाशव्यापी मरुत् [वायु] हमारी रक्षा करें ॥ यह वरुण, सविता, विष्णु, विश्व देवों और स्वर्लोकवर्ती मरुतों के लिये है—मेरे लिये नहीं ॥ ५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥ ६ ॥ कात्या० २५—१ । १ ॥

हे अग्ने, तू सर्वव्यापक और निर्दोष प्राणियों का रक्षक है। तू सचमुच सर्वव्यापक है। हे सर्वव्यापक, तू हमारे यज्ञ का भार वहन करता है। तू हमें रोग-निवारक ओषधि आदि वनस्पतियां दे ॥ यह सर्वव्यापी अग्नि के लिये है मेरे लिये नहीं ॥ ६ ॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदन्न मम। ॥ ७ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १५ ॥

हे वरुण, तू ऊपरके, बीचके और नीचे के पाश [विघ्नों] को जहां का तहां काट दे। हे आदित्य, हम तेरे व्रत [उपदेश] के अनुवर्ती बनकर पापरहित होते हुए सदा अदीन [स्वाधीन] रहें ॥ यह वरुण, आदित्य और अदितिके लिये है—मेरे लिये नहीं ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥ ८ ॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

हे जातवेदो, [?] आप दोनों आज हमारे लिये अच्छे मन और चित्तवाले, पापरहित और सुखकारी होइये। आप यज्ञ अथवा यज्ञपतिकी हिंसा [हानि] मत कीजिये ॥ यह जातवेदों के लिये है—मेरे लिये नहीं ॥ ८ ॥

सब संस्कारोंमें मधुर स्वरसे मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र न विलम्बसे उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेदका उच्चारण है करे।

यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्य-कर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारणमें असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमानके हाथसे करावे। पुनः निम्नलिखित मन्त्रसे पूर्णाहुति करे स्रुवाको घृतसे भर के—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

यह अवशिष्ट सब घृतादि हविष्यकी आहुति है अथवा हमारे यज्ञ के सब प्रयोजन पूर्ण सिद्ध हों।

इस मन्त्र से एक आहुति देवे, ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति देके जिसको दक्षिणा देनी हो वा जिसको जिसको जिमाना हो, जिमा, दक्षिणा देके सबको विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोगको प्रथम जीमके पश्चात् रुचि पूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मङ्गलकार्य ॥

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास-संस्कार-पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें। वे मन्त्र ये हैं।

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ-भुवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१॥ साम० उ० अ० १। खं० ३। मं० १॥

आश्चर्यमय और सदासे महान् परमेश्वर, अपने कल्याणमय रक्षा और कल्याणमय बलवान् कर्मों द्वारा हम सबसे मित्र का सा व्यवहार करता है ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ साम० उ० अ० १। खं० ३। मं० २॥

कल्याणमय, सत्य स्वरूप और सब आनन्दोंमें श्रेष्ठ परमात्मा तुझको अन्न द्वारा सुखी करता है और रोगादि दुखों के नाशके लिये तुझे प्रचुर धन देता है ॥ २ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखी-नामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यू-तये ॥३॥ साम० उ० अ० १। खं० ३। मं० ३॥

हे परमात्मन् तू हमारी, मित्रोंकी और उपासकोंकी रक्षाके लिये सैकड़ों प्रकार अभिमुख होता है अर्थात् सैकड़ों रूपमें उनके सन्मुख उपस्थित होता है ॥ ३ ॥

महावामदेव्यम् ॥

काऽ५या। नश्चा३ इत्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदा वृधाः सखा। औ३होहाई। कया २३ शचाई। ष्ठयौ३हो३हुम्म २। वा२र्तो३ हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा। सत्यो३ मा३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्ध। सा। औ३होहाइ। दृढा२३चिदा। रुजा-

हो ३ । हुम्मा २ । वाऽ३सो३ऽ५हायि ॥ ॥ (२) ॥ आऽ५भी । पु णा३ः सा३-खीनाम् । आ । विता जरायितृ । णाम् । औ२३ हो हायि । शता२३ म्भवा । सियोहो३ । हुम्मा २ । ताऽ२ यो३ऽ५ हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

उक्त महावामदेव्य गानके तीनों मंत्रोंका अर्थ ऊपर आ ही चुका है ।

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्य-कर्त्ता सद्धर्मी लोक प्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपात रहित संन्यासी जो सदा विद्याकी वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्त्तने वाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दानसे उत्तम प्रकारसे यथासामर्थ्य सत्कार करें, पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उनको भी सत्कार पूर्वक विदा करदें अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक २ मौन करके बैठे रहें, कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें, सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म कराने वाले शान्ति धीरज और विचार पूर्वक क्रमसे कर्म करें और करावें ॥ यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारोंमें कर्तव्य है ।

इति सामान्यप्रकरणम् ॥



अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥

मनुस्मृति द्वितीयाध्याये श्लोक १६ ॥

अर्थः—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीरका आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उन में से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

गर्भाधान उसको कहते हैं कि जो "गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिससे होता है। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम बलवान स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ (सोलह) वर्ष की कन्या और २५ (पच्चीस) वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इससे अधिक वयवाले होने से अधिक उत्तमता होती है क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता और २५ (पच्चीस) वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इसमें यह प्रमाण है।

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

सुश्रुते सूत्रस्थाने। अध्याय ३५ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥

सुश्रुते शारीरस्थाने अ० १० ॥

ये सुश्रुत के श्लोक हैं। शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यक शास्त्र में है वैसी अन्यत्र नहीं जो उसका मूल विधान है आगे वेदारम्भ में लिखा जायगा अर्थात् किस २ वर्ष में कौन २ धातु किस २ प्रकार का कच्चा वा पक्का वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है यह सब वैद्यक शास्त्र में विधान है इसलिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये। अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे यह लिखते हैं जितना सामर्थ्य २५ (पच्चीसवें) वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ (सोलहवें) वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥१॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में २५ (पच्चीस) वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही विगड़ जाता है ॥ २ ॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आ-षोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहा-णिश्चेति ॥

अर्थः—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्ची-सवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओंकी पूर्ण पुष्टि और उससे आगे किंचित् २ धातु वीर्य की हानि होती है अर्थात् ४० (चालीसवें) वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं पुनः खानपान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है वह कुछ २ क्षीण होने लगता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ (सोलह) वर्ष की और पुरुष २५ (पच्चीस) वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का २० (बीस) वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चाली-सवां वर्ष और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त का है। जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ (सोलहवें) वर्ष से पूर्व कन्या और २५ (पच्चीसवें) वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस

अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिस-से उत्तम सन्तान होवें।

ऋतुदानका काल

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥ १॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥ २॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥ ३॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम्॥ ४॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥ ५॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ ६॥
मनुस्मृतौ अ० ३॥

अर्थः—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करें और अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे। वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे। जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पति-व्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब पूर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के (सोलह) दिनों में पौर्णमासी अमावास्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ देवें इनमें स्त्री पुरुष रतिक्रया कभी न करें॥ १॥ स्त्रियों का स्वभाविक ऋतुकाल १६ (सोलह) रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ (सोलहवें) दिन तक ऋतुसमय है उनमें प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय, तृतीय, और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस

रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे, न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहे क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है। रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है वैसा है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित है और बाकी रहीं दश रात्रि सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इनमें भी उत्तर २ श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नवमी और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें ❁ इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे ॥ ४ ॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा वन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ८ (आठ) रात्रि कह आये हैं उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ।

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखा है वैसा करना चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ (सोलहवें) और २५ (पच्चीसवें) वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विधान है।

अथ गर्भाधानꣳस्त्रियाः। पुष्पवत्या श्चतुरहादूर्ध्वꣳ स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भ"मिति ॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है। ऐसा ही गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी विधान है। इसके अनन्तर जब स्त्री रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोगरहित हो उसी दिन (आदित्यं गर्भम्) इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उससे पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी। वहां [illegible] पति के वाम भाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख पूर्व दक्षिण वा उत्तर [illegible] में यथा[illegible] बैठे [illegible] बैठें।

* रात्रि में ऋतुदान इसलिये कहा है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है।

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥

इन मन्त्रोंमें भौतिक शक्तियोंसे स्त्रीके शरीरके दोष दूर करनेकी प्रार्थना की गयी है।

हे दोष-नाशक अग्ने, तेरी दोष नाश करनेकी शक्ति देवोंमें (भौतिक शक्तियोंमें) सबसे अधिक है, इसलिये वेदानुयायी मैं प्रार्थना करनेकी इच्छासे तेरी शरणमें आता हूं, तू इस सुन्दर स्त्रीके शरीरमें जो दोष हो उसे दूर कर दे ॥ १ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ २ ॥

हे दोष-नाशक वायु, तेरी दोष नाश करनेकी इत्यादि पूर्ववत् ॥२ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अजपहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥

हे दोष-नाशक चन्द्रमा, तेरी दोष नाश करनेकी इत्यादि ॥ ३ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ ४ ॥

हे दोष-नाशक सूर्य इत्यादि ॥ ४ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥ ५ ॥ मन्त्र-ब्राह्मण प्र० १ । खं० ४ । मं० ५ ॥

हे दोष नाशक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्यो, तुम सबकी दोष नाश करनेकी शक्तियां बहुत हैं, मैं वेदानुयायी पुरुष तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम मेरी स्त्रीके सुन्दर शरीरके दोषोंको दूर कर दो ॥ ५ ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ६ ॥

हे दोष-नाशक अग्ने, तुम्हारी दोष नाश करने की शक्ति बहुत है, तुमसे प्रार्थना है कि इस स्त्रीके शरीरमें पतिको हानि पहुंचाने वाले जो रोगादि हों उनको तुम दूर कर दो । ६ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तमस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ ७ ॥

हे दोष-नाशक वायु इत्यादि ॥ ७ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ८ ॥

हे दोष-नाशक चन्द्रमा० ॥ ८ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्य्याय इदन्न मम ॥ ९ ॥

हे दोष-नाशक सूर्य० ॥ ९ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याःप्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः इदन्न मम ॥ १० ॥ पारस्कर कां० १ । कण्डिका ११ ॥

हे अग्नि, वायु, चन्द्र, और सूर्यो० ॥ १० ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥ ११॥

हे दोष-नाशक अग्ने, तुम इस स्त्रीके शरीरमें से वन्ध्यात्वके दोषको दूर कर दो॥ ११॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे इदन्न मम॥ १२॥

हे दोष-नाशक वायु०॥ १२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम॥ १३॥

हे दोष-नाशक चन्द्र०॥ १३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय इदन्न मम॥ १४॥

हे दोष नाशक सूर्य०॥ १४॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम॥ १५॥

हे दोष-नाशक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्यो०॥ १५॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधा-

वामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १६॥

हे दोष-नाशक अग्ने, तुम इस स्त्रीके शरीरको कुरूपताको दूर कर दो ॥ १६ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्य अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम॥ १७ ॥

हे दोष-नाशक वायु० ॥ १७ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ १८ ॥

हे दोष-नाशक चन्द्र० ॥ १८ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ १९ ॥

हे दोष-नाशक सूर्य० ॥ १९ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इमदग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥ २० ॥

हे दोष-नाशक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्यो तुम सबकी दोष नाश करनेकी शक्ति बहुत है। तुम से प्रार्थना है कि इस स्त्रीके शरीरकी कुरूपताको नष्ट कर दो ॥ २० ॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी ❋ और बीस आहुति करने से यत्किञ्चित् घृत बचे वह काँसे के पात्र में ढांक के रख देवें। इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एकरस होजाय पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा में का शेष आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे।

❋ इन बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथसे वरके दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ॥

ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा ॥ इद-मग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥ १ ॥

यह आहुति प्रकाशक अग्निके लिये है ॥ १ ॥

ओं अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदम-ग्नये पावकाय इदन्न मम ॥ २ ॥

यह शोधक अग्निके लिये है ॥ २ ॥

ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये इदन्न मम ॥ ३ ॥

यह प्रदीप्त अग्निके लिये है ॥ ३ ॥

ओं अदित्यै स्वाहा ॥ इदमदित्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥

यह अदिति (सूर्य-शक्ति) के लिये है ॥ ४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजाप-तये इदन्न मम ॥ ५ ॥

यह प्रजापति (वायु) के लिये है ॥ ५ ॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्या-त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्सम-र्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥ ६ ॥

इस मन्त्रका आशय सामान्य प्रकरणमें (पृष्ठ २४ पर) लिखा जा चुका है ॥ ६ ॥

इन छः मन्त्रोंसे उस भातकी आहुति देवें। तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त २५—२६ पृष्ठ लिखित आठ मंत्रोंसे अष्टाज्याहुति देवो। उन ८ (आठ) मंत्रोंसे ८ (आठ) तथा निम्नलिखित मंत्रोंसे भी आज्याहुति देवें।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥ १ ॥

विष्णु स्त्रीकी योनिको गर्भ धारण करने योग्य बनावे, त्वष्टा गर्भके रूपका निश्चय करे, प्रजापति वीर्यका सिंचन करे और धाता गर्भको स्थिर करे ॥ १ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा ॥ २ ॥

हे प्रसन्न स्त्री, तू गर्भ धारण कर। हे ज्ञान वाली स्त्री तू गर्भ धारण कर। अश्विन् देव (प्राण और अपान) तेरे गर्भको स्थिर करें ॥ २ ॥

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ३ ॥ ऋ० मं०१०। सू० १८४॥

जिस प्रकारसे याज्ञिक लोग तेजोमयी अरणीका मंथन करके अग्नि उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार हम तुझमें ऐसा गर्भ स्थापित होने की प्रार्थना करते हैं जो दशम मासमें उत्पन्न हो॥ ३॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणा वृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा॥ ४॥ यजु० अ० १९। मं० ७६॥

स्त्रीकी योनिमें प्रविष्ट होता हुआ पुरुषेन्द्रिय वीर्य और मूत्रको पृथक छोड़ता है। गर्भ जरायु (जेर) से लिपटा रहता है परन्तु जन्मके समय वह जेर अलग हो जाता है। प्राकृतिक सत्य नियमोंके अनुसार ऐश्वर्यशाली परमात्माके दिये हुए शुद्ध अन्नका भोजन और अमृत समान मधुर दूधको पान इन्द्रियोंमें बल वीर्य को बढ़ाने वाला है॥४॥

यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा॥ ५॥ पारस्कर कां० १। कं०११॥

हे सुन्दर केशों वाली स्त्री, मैं तेरे चन्द्रमाके समान प्रसन्न चित्तको जानता हूं, तू भी मेरे हृदय को जान। हम दोनों सौ वर्ष तक देखते सुनते बोलते चालते और स्वाधीनता-पूर्वक जीते रहें तथा इससे भी अधिक कालतक सशक्त और स्वस्थ रहें॥ ५॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे॥ एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥ ६॥

जैसे यह बड़ी पृथिवी पंच भूतोंका गर्भ धारण करती है इसी प्रकार तू उत्पत्ति और ऐश्वर्यके लिये गर्भ धारण कर॥ ६॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥ ७॥

जैसे पृथिवीने वनस्पतियोंको धारण किया हुआ है ऐसे ही तू गर्भको धारण कर॥ ७॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥ ८॥

जैसे इस पृथिवीने बड़े बड़े पर्वतोंको धारण किया हुआ है०॥ ८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं

जगत्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं स-
वितवे स्वाहा ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० १७ ॥

जिस तरह इस पृथिवीने स्थिर जगतको धारण किया हुआ है० ॥ ६ ॥

इन ६ मन्त्रों से नव आज्य और मोहनभोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

इन मन्त्रोंका आशय सामान्य प्रकरणमें (पृ० २३ पर) लिख चुके हैं।

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रोंसे घृतकी दो आहुति देनी ॥

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा ॥ इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः—इदन्न मम ॥ १ ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ २ ॥ पारस्कर कां० १ । कं० । २ ॥

ये चार मन्त्रोंकी अलग अलग प्रतीकें हैं। इनका पूर्ण स्वरूप अनुसंधान करनेकी आवश्यकता है।

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "ओं यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं०" इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे । जो इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों जब आहुती हो चुकें तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करे तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे। तब दोनों वधू वर कुण्डकी प्रदक्षिणा करके सूर्यका दर्शन करें। उस समय—

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥१॥ यजु०अ०१३। मं० ४१॥

हज़ारों मनुष्योंकी उपमा वाले, आदित्य-समान गर्भको दूध आदि पदार्थोंसे पुष्ट करो और हानि-कारक प्रभावोंसे बचाओ। इसकी उपेक्षा मत करो और इसे फलता फूलता सौ वर्षकी आयु वाला बनाओ॥१॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥२॥ ऋ० मं० १०। सू० १५८। मं० १॥

सूर्य द्युलोकस्थ, वायु अन्तरिक्ष-लोकस्थ और अग्नि पृथिवी-लोकस्थ बाधाओंसे हमारी रक्षा करें॥२॥

ज्योषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः॥३॥ ऋ० मं०१०। सू०१५८। मं०२॥

हे सर्वोत्पादक ईश्वर, तू हमसे प्रेम कर। तेरा प्रभाव सैकड़ों यज्ञोंसे भी बढ़कर है। तू बिजली के प्रहारोंसे हमारी रक्षा कर॥३॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥४॥ ऋ० मं० १०। सू० १५८। मं० ३॥

सर्वोत्पादक, पूर्ण और रक्षक ईश्वर हमें दृष्टि-शक्ति दे॥४॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। तं चेदं वि च पश्येम॥५॥ ऋ० मं० १०। सू० १५८। मं० ४॥

हमारी आंखके लिये दृष्टिशक्ति दे ताकि हमारे शरीर पूर्ण हों और हम विविध संसारको भली प्रकार देखें॥५॥

सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः॥६॥ऋ० मं० १०। सू० १५८। मं० ५॥

हे सकल संसारको देखने वाले सूर्य, हम तुझे देखें और सब विविध प्राणियोंको भी देखें॥६॥

इन मन्त्रोंसे परमेश्वरका उपस्थान करके वधू—

ओं (अमुक (१) गोत्र शुभदाः अमुक (२) दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि)

मैं इस गोत्रवाली, कल्याणकारिणी, अमुक नाम वाली आपको नमस्कार करती हूं।

ऐसा वाक्य बोलके अपने पतिको वन्दन अर्थात् नमस्कार करे। तत्पश्चात् स्वपतिके

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे॥

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पिताकी माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियोंकी वृद्ध स्त्रियां हों उनको भी इसी प्रकार वंदन करे। इस प्रमाणे वधू वरके गोत्रकी हुए अर्थात् वधू पत्नीत्वको प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदीके पश्चिम भागमें बैठके वामदेव्यगान करें। तत्पश्चात् यथोक्त (१) भोजन दोनों करें। और पुरोहितादि सब मण्डलीको सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन कराके आदर सत्कार पूर्वक सबको विदा करें॥

इसके पश्चात् रात्रिमें नियत समय पर जब दोनोंका शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनोंमें अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी। गर्भाधान क्रिया

(१) उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है इसलिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आंबा हलदी, दूसरी खाने की हलदी, "चन्दन" मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), कुष्ठ, जटामांसी, मोरवेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ इन सब ओषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मंथनी से मंथन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय, घृत करके उसमें सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक २ मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से २२ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ ३७-३८ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ [सात] मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ स्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जनें खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें। इस प्रकार गर्भ-स्थापन करें तो सुशील विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि—

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।"

यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्यमांसादिरहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि, बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह करें इस प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्य प्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें। जब रजस्वला होने के समय में १०-१२ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतुसमय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवें, जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि, नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है॥

का समय प्रहर रात्रिके गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है। जब वीर्य गर्भाशयमें जानेका समय आवे तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवदन, मुखके सामने मुख, नासिकाके सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्यका प्रक्षेप पुरुष करे। जब वीर्य स्त्रीके शरीरमें प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रियको ऊपर संकोच और वीर्यको खैंच कर स्त्री गर्भाशयमें स्थिर करे। तत्पश्चात् थोड़ा ठहरके स्नान करे, यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूधका यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें। यदि स्त्री पुरुषको ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर होगया तो उसके दूसरे दिन और जो गर्भ रहेका दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीनेके पश्चात् रजस्वला होनेके समय स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थिर होगया है। अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीनेके आरम्भमें निम्नलिखित मन्त्रोंसे आहुति देवे ❋॥

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा॥१॥ ऋ० मं० ५। सू० ७८। मं० ७॥

जैसे वायु तालाव आदिमें चारों ओरसे लहरोंको उत्पन्न करता है ऐसे ही तेरा गर्भ हिले और डुले और दस मासके बाद बाहर निकले॥१॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा॥२॥ ऋ० मं० ५। सू० ७८। मं० ८॥

जैसे वायु, वन और समुद्र स्वाभाविक गति करते हैं ऐसे ही हे गर्भ, तू दश मासका हो कर जरायु सहित बिना तकलीफ बाहर आ॥२॥

❋ यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायँ अर्थात् दो बार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल होजाय, गर्भस्थिति न होवे, तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा लेके इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में देके उससे पति पूछे "किं पिबसि" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन बार बोल के उत्तर देवे और उसका प्राशन करे, इसी रीति से पुनः २ तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति-

ओ३म् यमोषधी त्रायमाणा, सहमाना सरस्वती।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे, यह सूत्रकार का मत है॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा॥ ३ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ७८। मं० ६॥

कुमार (बालक) माताके उदरमें दस मास तक सो कर विना किसी दुःखके बाहर निकल आवे यह जीती हुई माताका जीवन है॥ ३॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा॥ ४॥ य० अ० ८। मं० २८॥

दश मासका गर्भ जरायु सहित बाहर निकल आवे। जैसे यह वायु और समुद्र हिलते हैं ऐसे ही यह दश मासका गर्भ जरायुके साथ अपने स्थानसे सरक कर बाहर आवे॥ ४॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमᳪ स्वाहा॥५॥ यजु० अ० ८। मं० २९।

जिस स्त्रीके लिये गर्भाधानादि संस्कारानुकूल गर्भ और स्वस्थ शुद्ध योनिका विधान किया गया है; उसीके साथ माता बनने पर अकुटिल अंगोंवाले बालकका संयोग होता है॥ ५॥

पुमाᳪसौ मित्रावरुणौ पुमाᳪसावश्विनावुभौ। पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा॥६॥ मंत्र ब्राह्मण १। ४। ८॥

चन्द्र, सूर्य, दोनों अश्विन (प्राण और अपान), अग्नि और वायु और तेरे पेटका गर्भ, ये सब तुझे शक्ति देने वाले हों॥ ६॥

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः। पुमाᳪसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा॥ ७॥ मन्त्रब्राह्मण ब्रा० १। ४। ९॥

अग्नि, इन्द्र और नाना विद्याओंके ज्ञाता विद्वान् ये सब तुझे शक्ति देने वाले हैं। तू शक्ति-शाली पुत्रको प्राप्त कर और उसकी संतति भी शक्तिशाली होवे॥ ७॥

इन मन्त्रोंसे आहुति देकर व लिखित सामान्यप्रकरणकी शान्त्याहुति देके पुनः २७ पृष्ठमें लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवे। पुनः स्त्रीके भोजन छादनका सुनियम करे। कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे। किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट दधि गेहूं, उर्द, मूङ्ग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें। उसमें ऋतु २ के मसाले गर्मीमें ठण्डे सफेद इलायची आदि और सरदीमें केशर कस्तूरी आदि डालकर खाया करें। युक्ताहार-विहार सदा किया करें। दुग्धमें शुंठी और ब्राह्मी ओषधिका सेवन स्त्री विशेष किया करे। जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाववाली होवे॥

इति गर्भाधानविधिः समाप्तः॥

अथ पुंसवनम् ।

पुंसवन संस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञान हुए समयसे दूसरे वा तीसरे महीनेमें है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्यका लाभ होवे। यावत् बालकके जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें तबतक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन, छादन, शयन, जागरणादि व्यवहार उसी प्रकारसे करे जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे ॥

अत्र प्रमाणानि ।

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ। पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १। ४ । ८ ।

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ॥ पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम् ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । ४ । ६ ॥

इन दोनों मन्त्रोंका आशय गर्भाधान-सन्स्कार-प्रकरणमें दिया जा चुका है। देखो पृष्ठ ४३

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुन्सवनं कृतम्। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वाभरामसि ॥१॥ अथर्व०कां०६। सू०११। मं०१॥

घोड़ेके समान वीर्यवान पुरुष जब शान्त-स्वभाववाली स्त्री पर आरोहण द्वारा गर्भाधान कर चुकता है, तदनन्तर पुन्सवन किया जाता है; क्योंकि यही पुत्र-प्राप्तिका उत्तम उपाय है। हम स्त्रियोंमें उस सन्स्कारको करें ॥ १ ॥

पुन्सि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥२॥ अथर्व०कां०६। सू०११ मं२॥

प्रजापति ईश्वरने बतलाया है कि पुरुषमें वीर्य होता है, उसे स्त्रीमें सींचा जाता है और उसीसे पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह॥ ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० ६ । अनु० २ । सू० ११ । मं० ३॥

प्रजापति, अनुमति और सिनीवाली (संवत्सर, पूर्णिमा और अमावास्या) ये सब गर्भको परिणति करते हैं। स्त्री-प्रसवके नियमोंका अन्यत्र विधान है; यहां पुरुष-सम्बन्धी नियमोंका विवरण है ॥ ३ ॥

इन मन्त्रोंका यही अभिप्राय है कि पुरुषको वीर्यवान होना चाहिये। इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्रका प्रमाणः—

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥ १ ॥

अब इस स्त्रीकी नाकमें, मण्डपकी छायामें, ताजो ओषधी डाले ॥ १ ॥

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥

कुछ आचार्योंका मत है कि अथर्व वेदके 'आ तं गर्भः' इत्यादि प्रजावत् सूक्तको पढ़कर और कुछका मत है कि "अग्निरेतु" इत्यादि जीवपुत्र सूक्तको पढ़कर यह संस्कार किया जाय ॥ २ ॥

गर्भके दूसरे वा तीसरे महीनेमें वटवृक्षकी जटा वा उसकी पत्ती ले के स्त्री को दक्षिण नासापुटसे सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुडूच जो गिलोय वा ब्राह्मी ओषधि खिलावे। ऐसा ही पारस्कर गृह्यसूत्रका प्रमाण है ॥

अथ पुंसवनं पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ॥ १ ॥ पारस्कर-कां० १। कं० १४ ॥

इसका नाम पुन्सवन इसलिये है कि दूसरे या तीसरे मासमें गर्भमें गति पैदा होती है ॥ १ ॥

इसके अनन्तर, पुंसवन उसको कहते हैं जो पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीनेमें पुंसवन संस्कार किया जाता है। इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रोंमें लिखा है ॥

अथ क्रियारम्भः

पृष्ठ ३ से १५ व पृष्ठके शान्तिप्रकरण पर्यन्त कहे प्रमाणे [विश्वानि देव०] इत्यादि चारों वेदोंके मन्त्रों से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहां उपस्थित हों वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें और पृष्ठ ५ में कहे प्रमाणे स्वस्तिवाचन तथा पृष्ठ १० में लिखे प्रमाणे शांतिप्रकरण करके पृष्ठ १५ में लिखे प्रमाणे यज्ञदेश, यज्ञशाला तथा पृष्ठ १५ वें में यज्ञकुण्ड, १६ में यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि करके और पृष्ठ २१-२६ में लिखे प्रमाणे [अयन्त इध्म०] इत्यादि [ओं अदिते०] इत्यादि ४ [चार] मन्त्रोक्त कर्म और आघारावाज्यभागाहुति ४ [चार] तथा व्याहृति आहुति ४ [चार] और पृष्ठ २३ में [ओं प्रजापतये स्वाहा]॥ १ ॥ पृष्ठ २४ में [ओं य-

दस्य कर्मणो०] ॥ २ ॥ लिखे प्रमाणे २ [दो] आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मंत्रों से दो आहुति घृत की देवे ॥

ओं आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषुधिम्। आवीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ३। सू० २३॥ मं०२ ॥

तेरी योनिमें गर्भ इस प्रकार आवे जैसे बाण तरकसमें आ जाता है। तेरा पुत्र दश महीनेके बाद ही उत्पन्न हो और वह वीर बने ॥ १ ॥

ओं अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुंचतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥ २ ॥ मन्त्र ब्रा० १। १। १० ॥

देवोंमें मुख्य अग्नि (ईश्वर) आकर इस स्त्री की सन्तानकी मृत्युसे रक्षा करे। तदनन्तर देश का श्रेष्ठ राजा भी (प्रजाकी स्वास्थ्य रक्षाके योग्य बन्दोबस्त द्वारा) इसकी रक्षा करे, ताकि इस स्त्री को पुत्रजनित दुःख (पुत्र-मृत्यु आदि) के कारण रोना न पड़े ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोलके ६ आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नीके हृदय पर हाथ धरके यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले ॥

ओं यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ। मन्येहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघन्नियाम् ॥ मं० ब्रा० १। ५। १० ॥

हे सुन्दर केशों वाली स्त्री, सन्तानका पालन करने वाले तेरे हृदयमें जो भाव है, उनको मैं जानता हूं, यह मैं स्वीकार करता हूं (अर्थात् पिता भी माताके समान गर्भ-गत शिशुकी चिन्ता करे)। मुझे पुत्र-जनित दुःख कोई न हो ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ २७-२८ में लिखे प्रमाणे सामवेद आर्चिक और महावामदेव्यगान गाके जो २ पुरुष वा स्त्री संस्कार समय पर आये हों उनको विदा करदे। पुनः वटवृक्षके कोमल कूंपल और गिलोयको महीन बांट कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्रीके दक्षिण नासापुटमें सुंघावे। तत्पश्चात्:—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ य० अ० १३। मं ४ ॥

इसका आशय आरम्भमें ही ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासनाके मन्त्रोंमें लिखा जा चुका है ॥ १ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानदग्रे ॥ २ ॥ य० अ० ३१ । मं० १७ ॥

पृथिवी और जल आदि पञ्च महाभूतोंकी मूल कारण प्रकृति बीज रूपमें बहुत पहिलेसे वर्तमान थी। उसे सृष्टिके रचयिता ईश्वरने दृश्य रूपमें प्रकट किया और वही ईश्वर मनुष्योंमें दिव्य गुणों को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रोंको बोलके पति अपनी गर्भिणी पत्नीके गर्भाशय पर हाथ धरके यह मन्त्र बोले:—

सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाᳬस्यङ्गानि यजूᳬषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ १ ॥ य० अ० १२ । मं० ४ ॥

हे गर्भस्थ जीव तू अच्छे पङ्खों वाला पक्षी है। तेरा सिर ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों से युक्त है। गायत्री मन्त्र तेरी आंख, साम वेद की दोनों शाखायें तेरे पङ्ख, ऋग्वेद तेरे आत्मा, छन्दोग्रन्थ तेरे शरीरके अवयव, यजुर्वेद तेरी ख्याति, वामदेव्य साम तेरे शरीर, यज्ञादि विषय तेरी पूंछ, और लौकिक शास्त्र तेरे खुरोंके समान हैं। तू अच्छे पङ्खों वाला पक्षी है, इसलिये आकाशमें जा और आनन्द कर। इस मन्त्रमें गर्भस्थ जीवको पक्षीका रूप देकर विविध ज्ञानमय ग्रन्थों को उसके अनेक अङ्गोंके स्थान पर रखा गया है, जिसका आशय यह है कि पिता चाहता है कि मेरे बालकके ये अङ्ग इन शास्त्रोंके समान प्रतिष्ठित बलवान आदि हों और वह उक्त पक्षीके समान स्वच्छन्द विचरे ॥ १ ॥

इसके पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे विशेष कर गिलोय ब्राह्मी ओषधि और सुंठीको दूधके साथ थोड़ी २ खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़े आदि न खावे सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे ॥

इति पुंसवन संस्कारविधिः समाप्तः ॥



अथ सीमन्तोन्नयनम् ।



अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इसमें आगे प्रमाण लिखते हैं।

चतुर्थे गर्भमासे सीमंतोन्नयनम् ॥१॥

आपूर्यमाणपक्षे यदा पुन्सा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥

अथास्यै युग्मेन शलाटुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः। चतुर्वा ॥ यह आश्वलायन गृह्यसूत्र है॥

गर्भ स्थापित होनेके बाद चौथे मासमें सीमन्तोन्नयन किया जाय ॥ १ ॥ जब कि शुक्ल-पक्षमें चन्द्रमा किसी पुल्लिंग-वाची नक्षत्रके साथ संयुक्त हो ॥२॥ स्त्रीके केशोंको दो कच्ची गूलरोंसे अथवा तीन स्थानोंपर जो सफेद हो ऐसे सेहीके कांटोंसे अथवा तीन हरी कुशाके तिनकोंसे, भूर्भुवः स्वरोम् यह मंत्र-भाग बोलकर, तीन या चार बार ऊपरकी ओरको स्त्रीके केशोंको संवार दे॥

पुंसवनवत्प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ॥ पा० कां० १ । कं० १५ ।

यह पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण—इस प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है ॥

गर्भमास से चौथे महीने में शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे और पुंसवन संस्कारके तुल्य छठे आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे। इसमें प्रथम ३-२८ पृष्ठ तक का विधि करके (अदितेऽनुमन्यस्व) इत्यादि पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे वेदी से पूर्वादि दिशाओं में जल सेचन करके—

ओं देवसवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥ य०अ० ११ । मं० ७ ॥

इस मन्त्रके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २२।

इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करके आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) मिल के ८ (आठ) आहुति पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे करके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

अर्थात् चावल, तिल, मूंग इन तीनोंको सम भाग ले के—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

अर्थात् धोके इनकी खिचड़ी बना, उसमें पुष्कल घी डाल के निम्नलिखित मन्त्रों से ८ (आठ) आहुति देवें ॥

ओं धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा । इदं धात्रे इदन्न मम ॥१॥ अथर्व०कां०७ ।सू०१७ । मं०२॥

हे बलवान सन्तान वाली स्त्री, जगत्‌का धाता परमेश्वर दानी पुरुषके लिये प्रभाव-शाली और रसोंसे सिंचित जीवनौषधिको देवे। हम उसी परमात्माकी सुमतिका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

ओं धाता प्रजानामुत राय ईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान । धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्र इद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा ॥ इदं धात्रे—इदन्न मम ॥ २ ॥

जगत्‌का धाता ईश्वर प्राणियों और धनोंका स्वामी है। धातासे ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। धाता सब मनुष्योंको बिना किसी चक्षु-व्यापारके देखता है। धाताके लिये घृतसे युक्त सामग्रीकी आहुतियां दो ॥ २ ॥

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥ इदं राकायै—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ०मं०२ । सू०३२। मं०४ ॥

मैं (पति) सम्मान-पूर्वक बुलाने योग्य, पूर्णमासीके समान सुन्दर स्त्रीको स्तुति द्वारा बुलाता हूं। वह सौभाग्यवती हमारी बातको सुने और स्वयं समझे। वह हमारे गृहकार्योंको दृढ़ उपकरणों और नियमोंसे करे तथा हमें प्रशंसनीय ख्याति पाने वाले वीर पुत्रको दे ॥ ३ ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा ॥ इदं राकायै—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ५ ॥

हे सुन्दरि, तेरी जो सुन्दर सुमतियां (सुन्दर विचार) हैं, जिनसे तू धनियोंको धनादि देती है, हे प्रसन्न चित्तवाली, उन सब सुमतियोंके साथ तू हमें प्राप्त हो और हे सौभाग्यवति, हजारों प्रकार पुष्टि करने वाले धनको देती हुई तू हमारे समीप आ। भावार्थ यह है स्त्रीके सद्विचारवती होनेपर गृहमें धन धान्य आदिकी कमी नहीं रहती ॥ ४ ॥

नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत । अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान्स्वाहा ॥ ५ ॥

जिस पुरुषने [मेरे पतिने] मुझ पुत्रकी इच्छा रखने वालीको गर्भ धारण कराया है वह अनिन्द्य कार्योंको करता हुआ शोभन सन्तान सहित मेरे पास आवे ॥ ५ ॥

यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे। एवं तं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ६ ॥

जिस प्रकार यह बड़ी और ऊंची पृथिवी [अनेक वनस्पतियों आदिका] गर्भ धारण करती है इसी प्रकार तू दशम मासमें उत्पत्तिके लिये गर्भको धारण कर ॥ ६ ॥

विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम्। पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥ अ०कां०५। सू० २५।

हे पुरुष, गौ आदि पशुओंकी स्वामिनी इस नारीमें तू श्रेष्ठ गुणोंसे बलवान पुत्रके गर्भका आधान कर और वह दसवें महीनेमें उत्पन्न हो ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रोंसे खिचड़ीको सात आहुति देके पुनः (प्रजापते न त्व०) पृष्ठ २५ में लिखित इससे एक, सब मिलाके ८ (आठ) आहुति देवे और पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे (ओं प्रजापतये०) मन्त्रसे एक भातकी और पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्य कर्मणो०) मन्त्रसे एक खिचड़ीकी आहुति देवे। तत्पश्चात् "ओं त्वन्नो अग्ने" पृष्ठ २५-२६ में लिखे प्रमाणे ८ (आठ) घृतकी आहुति और "ओं भूरग्नये" पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे ४ (चार) व्याहृति मन्त्रोंसे चार आज्याहुति देकर पति पत्नीके पश्चात् पृष्ठकी ओर बैठे—

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१॥ यजु० अ० ६। मं० २२ ॥

हमारे लिये जल और ओषधियां अच्छे मित्र की भांति हितकारी हों। जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसके लिये ये दोनों शत्रुवत् अनिष्टकारी हों ॥ १ ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविᳫं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥ य० अ० ७। मं० २४ ॥

विद्वान् लोगोंने ऐसे अग्निको [यज्ञाग्निको अथवा अग्नि-शास्त्रको] उत्पन्न किया है जो द्युलोकमें शिरःस्थानीय सूर्यके रूपमें अवस्थित है, पृथिवी पर अविरल पाक प्रकाश आदि किया कर रहा है, यज्ञमें वैश्वानरके नामसे प्रसिद्ध है, संसार में अनेक कर्म कर रहा है, सर्वत्र राजाके समान चमत्कृत है और मनुष्य जिसे अतिथिके समान पूजते हैं ॥ २ ॥

ओं अपघुर्ज्जात्रतो वृक्ष ऊर्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नुत्वा नुत्वा सूयताᳫं रयिः ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १। ५। १ ॥

हे स्त्री, जिस प्रकार यह गूलरका वृक्ष गूलरोंसे लदा हुआ है इसी प्रकार तू भी अनेक सन्तानवाली हो। जैसे वनस्पतिका पत्ता पत्ता रसको संग्रह करता है ऐसे ही तेरे पास धनकी वृद्धि हो ॥ ३ ॥

ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय । तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥ ४॥ मंत्र ब्राह्मण १ । ५ । २ ॥

प्रजापति परमेश्वर जैसे महान् सौभाग्य [ऐश्वर्य] को वृद्धिके लिये पृथिवीकी मर्यादाका निर्माण करता है ऐसे ही मैं इस स्त्रीकी मर्यादाको बनाता हूं और इसको सन्तानको बुढापे-पर्यन्त बलवान करता हूं ॥ ४॥

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याछिद्यमानया ददातु वीरॳ शतदायमुक्थ्यम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ४ ॥

ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ६ ॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ मं० ५ ॥

इन दोनों मन्त्रोंका भाव इसी संस्कारके प्रकरणमें पीछे लिखा जा चुका ॥ ५ ॥ ६ ॥ देखिये पृष्ठ ४९

इन मन्त्रोंको पढ़के पति अपने हाथसे स्वपत्नीके केशोंमें सुगन्ध तैल डाल कंघेसे सुधार हाथमें उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्षकी शलाका वा कुशको मृदु छीपी वा शाही पशुके कांटेसे अपनी पत्नीके केशोंको स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछेकी ओर जूड़ा सुन्दर बांधकर यज्ञशालामें आवे—उस समय वीणा आदि बाजे बजवावें, तत्पश्चात् पृष्ठ २७-२८ में लिखे प्रमाणे सामवेदका गान करें, पश्चात्—

ओं सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यं असौ* ॥ पारस्कर कां० १ । कं० १५ ॥

हमारा राजा शान्त-गुण-वान है और ये प्रजायें भी मनुष्योंके कर्त्तव्योंपर चलने वाली हैं । हे नदि, हम तेरे किनारे अपना सङ्गठन न त्यागते हुए निवास करें ॥ १ ॥

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डालके गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे "किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि" तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की

* यहां किसी नदी का नामोच्चारण करें ॥

और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उसी खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुई उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें।

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥

हे स्त्री, तू वीर पुत्रोंकी माता हो, तेरी सन्तान चिरजीवी हो और तेरा पति भी दीर्घ जीवी हो ॥ १ ॥

ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें ॥

इति सीमन्तोन्नयन संस्कारविधिः समाप्तः



अथ जातकर्मसंस्कार-विधिः ।

इसका समय और प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार करें ।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति ॥ पा० कां० १ । कं० १६ ॥

अर्थात् बच्चा जननेवाली स्त्रीको जलसे स्नान करवावे ।

इत्यादि पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है ।

जब प्रसव होने का समय आवे तब निम्नलिखित मन्त्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे—

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ य० अ० ८ । मं० २८ ॥

दश मासका यह गर्भ जरायु सहित बिना कष्ट बाहर आ जावे । जैसे यह वायु और समुद्र स्वाभाविक गति करते हैं ऐसे ही दश मासका गर्भ जरायु सहित बाहर आ जाय ॥

इससे मार्जन करने के पश्चात्:—

ओं अवैतु पृश्निशेवलꣳ शुने जरायवत्तवे । नैव माꣳसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥ पा० गृ० कां० १ । कं० १६ । सू० २ ॥

नाना रङ्गोंवाला रुधिरसे सना हुआ जरायु कुत्ते आदिके खानेके लिये नीचे आ जाय । हे पुष्ट शरीर वाली स्त्री, वह जरायु तेरे किसी मांस भागके सहित अथवा तुझको पीड़ा पहुँचानेवाले किसी कारणके होते हुए न गिरे ॥

इस मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे ।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत् ॥ आश्व० गृ० अ०१।कं०१। सू०१॥

उत्पन्न बालकको और किसीके हाथमें देनेसे पहिले पिता सोनेकी शलाकासे उसे घी और शहद खिलावे ॥

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता के गोद में बालकको देवे पिता जहाँ वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बन्धन के ऊपर से

नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पूंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना, जो प्रसूता घर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुण्ड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर पूर्वोक्त सामान्यविध्युक्त पृष्ठ २१-२२ में कहे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके सुगन्धित घृतादि वेदी के पास रख के हाथ पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित * के लिये कुण्ड के दक्षिण भाग में रक्खे उस पर उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पदके स्वीकार के लिये बोले:—

ओम् आ वसोः सदने सीद ॥ प्रतिष्ठाके स्थानपर बैठिये।

तत्पश्चात् पुरोहितः—

ओं सीदामि ॥ बैठता हूं।

बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ २१ में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म" ३ मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और दीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) दोनों मिलके ८ (आठ) आज्याहुति देनी तत्पश्चात्:—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम्। सꣳराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा ॥ इदं संराधिन्यै—इदन्न मम ॥ मं० ब्रा० १। ५। ६ ॥

पति कहता है कि जो तू मेरी पत्नी सदा मुझसे अप्रतिकूल व्यवहार करती है, उसको अपने गृहस्थ भारकी विशेष रूपसे धारण करनेवाली और कार्यों की साधिका मानकर, मैं उसका इस घीकी आहुति द्वारा सत्कार करता हूं। यह आहुति गृहस्थ-कार्य्य की साधिका और इष्ट फलोंके देनेवाली गृहदेवीके लिये है ॥

ओं विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत्। परेहि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा ॥ इदं धात्रे-इदन्न मम ॥ मन्त्र ब्राह्मण १। ५। ७॥

पत्नी कहती है कि विद्वानोंने, पुत्रको प्रतिष्ठाका कारण बतलाया है और जगतके धाता परमात्माने भी उसका अनुमोदन किया है। इसलिये हे विद्वानों तुम आओ। मेरा इस नामवाला यह बलवान पति फिर भी सन्तान उत्पत्ति करेगा।

इन दोनों मन्त्रों से दो आज्याहुति करके पृष्ठ २७—२८ में लिखे प्रमाणे वामदेव्य गान करके ३—४ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करे तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो उससे बालक की जीभ पर—

*धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीतिसे जाननेहारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदपूजनीय सर्वोपरि गृहस्थको पुरोहित संज्ञा है।

'ओ३म्'

यह अक्षर लिख के उसके दक्षिण कान में "वेदोसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा २ चटावे:—

ओं प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्॥ १ ॥ आश्व० १ । १५ ।१ ॥

हे बालक, तुझको घी और शहदकी यह बून्द मैं देता हूं। इस घृत और मधुको सब धन-सम्पत्तियों के स्रष्टा परमेश्वरने ही उत्पन्न किया है ऐसा मैं समझता हूं। तू इस संसारमें विद्वानों द्वारा रक्षित होकर सैकड़ों वर्ष तक जी ॥ १ ॥

मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । ६ ॥

मित्र, वरुण, अग्नि और सुन्दर अश्विन देवता, ये सब भौतिक शक्तियां तेरी बुद्धिको तीव्र बनावें ॥ २ ॥

ओं भूस्त्वयि दधामि ॥ ३ ॥

मैं तुझमें भू लोकको रखता हूं अर्थात् तू भू-लोकका ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३ ॥

ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥ ४ ॥

मैं तुझमें भुव-र्लोकको रखता हूं, अर्थात् तू भुव-र्लोकका ज्ञान प्राप्त कर ॥ ४ ॥

ओं स्वस्त्वयि दधामि ॥ ५ ॥

मैं तुझमें स्व-र्लोकको रखता हूं अर्थात् तू स्व-र्लोकका ज्ञान प्राप्त कर ॥ ५ ॥

ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥ ६ ॥ पार० कां० १ । कं० १६ ।

मैं तुझमें उक्त तीनों लोक रखता हूं अर्थात् तू तीनों लोकोंका ज्ञान प्राप्त करे ॥ ६ ॥

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषᳬ स्वाहा ॥७॥ ऋ० मं० १ । सू० १८ । मं० ६॥

जीवात्माके स्वामी, अभिलषणीय अद्भुत और विश्व संसारके स्वामी परमात्मासे मैं योग्य उपभोग और बुद्धिको याचना करता हूं ॥ ७ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से सात वार घृत मधु प्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और जव को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ासा लेके:—

ओ३म् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्। मं०ब्रा०१।५।८ ॥

यह तेजोमय है, यह खाने योग्य है और यही अमृत है ॥

इस मन्त्र को बोलके बालक के मुख में एक बिन्दु छोड़ देवे यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है सब का नहीं। पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले:—

ओं मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती । मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥१॥ आश्व०१ । १५ । २ ॥

हे बालक, तुझे जगत्का स्रष्टा ईश्वर, विद्वानोंकी ज्ञानमय वाणी और अश्विन देव ये सब बुद्धिका दान करें ॥ १ ॥

ओं अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥

अग्नि वनस्पतियोंको जलानेके कारण बहुत लम्बी आयु वाला है। हे बालक, तू भी अग्निकी भांति चिरजीवी होवे ॥ २ ॥

ओं सोम आयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन० * ॥ ३ ॥

चन्द्रमा ओषधियोंमें रस उत्पन्न करनेके कारण दीर्घायु वाला है। हे बालक, तू चन्द्रमाकी भांति चिरजीवी हो ॥ ३ ॥

ओं ब्रह्म आयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥ ४ ॥

वेद ब्राह्मणोंके अध्ययनाऽध्यापनादिके कारण बहुत आयु वाला है। हे बालक, तू वेदकी भांति चिर जीवी हो ॥ ४ ॥

ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्त न० ॥ ५ ॥

विद्वान् लोग अमृत (आयु-वर्धक भोजन ओषधी आदि) के द्वारा चिर काल जीते हैं। हे बालक तू विद्वानोंकी भांति चिर-जीवी हो ॥ ५ ॥

ओं ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ६ ॥

ऋषि लोग व्रत अर्थात् नियमित जीवनके कारण देर तक जीते हैं। हे बालक, तू ऋषियोंकी भांति चिर-जीवी हो ॥ ६ ॥

ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ७ ॥

पिता आदि वृद्ध सम्माननीय पुरुष योग्य अन्नादि द्वारा दीर्घायु होते हैं। हे बालक, तू उनकी भांति चिर-जीवी हो ॥ ७ ॥

ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥ ८ ॥

यज्ञ दक्षिणाओंके कारण सदा होते रहते हैं। हे बालक तू यज्ञोंकी भांति चिर-जीवी हो ॥ ८ ॥

ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥ पा० कां० १ । कं० १६ ॥

समुद्र नदियोंके कारण कभी सूखता नहीं है बालक तू समुद्रकी भांति चिर-जीवी हो ॥ ९ ॥

इन नव मन्त्रों का जप करे इसी प्रकार बायें कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे इसके पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श से हाथ धर अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझा न पड़े धर के निम्नलिखित मन्त्र बोले:—

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयी-

हे इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मन), हमें आप श्रेष्ठ धन दीजिये, कर्म करनेकी सामर्थ्य, बुद्धि और सौ-

* यहां पूर्व मन्त्रका शेष (त्वा०) इत्यादि उत्तर मन्त्रोंके पश्चात् बोले।

णामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ १ ॥ ऋ० मं० २ । सू० २१ । मं० ६ ॥

भाग्यको दीजिये। धनोंकी पुष्टि, शरीरोंकी अरोगता, वाणीकी मधुरता और दिनोंको सुदिनता (सुन्दरता) को दीजिये ॥ १ ॥

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥२॥ ऋ०मं० ३।सू० ३६।मं०१०।

हे ऐश्वर्य-शाली, प्राप्त करने योग्य परमात्मन्, सब जिसको चाहते हैं ऐसा बहुतसा धन हमको दीजिये। जीनेके लिये हमें सैकड़ों वर्षकी आयु दीजिये और हे सुखकारक इन्द्र, हमें सदा वीर पुत्रोंको देते रहिये ॥ २ ॥

ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥३॥ मं० । ब्रा० १ । ५ । १८ ॥

हे बालक, तू पत्थरकी भांति और कुल्हाडेकी भांति दृढ़ और रक्षा करनेमें समर्थ हो। स्वच्छ सोनेके समान तेजस्वी हो। तू पुत्रके नामसे मेरा ही स्वरूप है। तू सौ वरस तक जी ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात्:—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥ यजु० अ० ३ । मं० ६२ ।

नित्य यज्ञ करने वाले पुरुषोंके जीवनकी जो बाल्य, यौवन और वृद्धावस्थायें हैं, आत्मज्ञानी पुरुषोंकी जो यही तीनों जीवनावस्थायें हैं और विद्वानोंके जीवनकी जो ये तीनों अवस्थायें हैं, वे तीनों हमारी हों, अर्थात् हम अपने जीवनकी उक्त तीनों अवस्थाओंको उक्त पुरुषोंकी भांति बितावें ॥१॥

इस मन्त्रका तीन बार जप करे तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठाले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुवा हो वहां जा के:—

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥ १ ॥ पार० कां० ७ । कं० १६ ॥

हे भूमि, (पुत्रको जन्म देनेवाली स्त्री), मैं तेरे हृदयको जानता हूं कि वह चन्द्रमा आदि आह्लादकारक वस्तुओंमें लगा हुआ है, तेरा हृदय भी मेरे हृदयको जाने। हम दोनों सौ वर्ष तक देखते सुनते और जीते रहें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे तथा:—

यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहे मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥२॥ मन्त्र ब्रा० १ । ५ । १० ॥

हे सुकेशिनी स्त्री, तेरा जो हृदय प्रजा-पालनमें लगा हुआ है मैं उसे जानता हूं और मैं यह भी मानता हूं कि वह उदार है। मैं पुत्र-जनित किसी दुःखको प्राप्त न होऊं ॥ २ ॥

यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्येह नाम माहं पौत्रमघꣳरिषम्॥ ३॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । ११॥

इस पृथिवीका जो सार-भाग द्युलोकस्थ चन्द्रमामें आश्रित है उस अमृतको मैं जानता हूं। (यहां चन्द्रमा द्वारा रस प्राप्त करने वाली पृथिवीकी अमृत समान ओषधियोंकी ओर सङ्केत किया गया प्रतीत होता है) मुझे पुत्र-जनित कोई दुःख न हो॥ ३॥

इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती। यथायन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ४॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । १२॥

हे प्रजाका पालन करने वाले इन्द्र और अग्ने, तुम ऐसा कल्याण करो जिससे यह पुत्र अपनी माताकी गोदमें न मरे॥ ४॥

यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्। तदहं विद्वांꣳस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघं रुदम्॥ ५॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १३॥

जो यह चन्द्रमामें पृथिवीका काला हृदय (प्रतिबिम्ब) स्थित है इसको मैं जानता और देखता हूँ। मुझे पुत्र-जनित किसी दुःखसे रोना न पड़े॥ ५॥

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे॥

कोसि कतमोस्येषोस्यमृतोसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ॥ ६॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । १४॥

तू कौन है? कैसा है? यही है और अमृत (चिर-जीवी) है। इस सूर्य-कृत मासमें प्रवेश कर अर्थात् इस संसारमें आ॥ ६॥

स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रे त्वार्द्धमासेभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ॥ ७॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १५॥

वह सूर्य तुझे दिनके लिये दे, दिन तुझे रात्रि के लिये दे, रात्रि तुझे दिन-रातके लिये दे, दिन-रात तुझे पक्षोंके लिये दें, पक्ष तुझे महीनोंकेलिये दें, महीने तुझे ऋतुओंके लिये दें; ऋतुएं तुझे वर्षोंके लिये दें और वर्ष तुझे बुढापे-पर्यन्त लम्बी आयुके लिये दें, अर्थात् तेरी आयु उत्तरोत्तर बढ़ती जावे॥७॥

इन मन्त्रों को पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे। पुनः—

अङ्गादङ्गात्सं स्रवसि हृदयादधिजायसे। प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्॥ ८॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । १५॥

हे पुत्र, तू मेरे अङ्ग अङ्गसे और हृदयसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् तू मेरे ही शरीर और हृदयका टुकड़ा है। मैं तेरे प्राणोंको अपने प्राणोंसे संयुक्त करता हूँ। तू मनुष्यकी पूर्ण आयु पर्यंत जी॥ ८॥

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥९॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । १७ ॥

हे पुत्र, तू मेरे अङ्ग अङ्गसे और हृदयसे उत्पन्न हुआ है। तू प्रसिद्ध वेद-पाठी बन और सौ वर्ष पर्यन्त जी ॥ ९ ॥

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥ १० ॥ मन्त्र ब्रा० । १ । ५ । १८ ॥

तू पत्थरके समान दृढ़, परशुके समान आत्मरक्षा में समर्थ और शुद्ध सोनेके समान तेजस्वी बन। तू मेरा ही आत्म-स्वरूप है। तेरी मृत्यु न हो। और तू सौ वर्ष तक जी ॥ १० ॥

पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ११ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १९ ॥

जैसे पशु प्रेम-पूर्वक 'हिं' शब्द करके अपने बच्चों को चाटते अथवा सूंघते हैं ऐसे तुझे मैं सूंघता हूं ॥ ११ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूंघे इसी प्रकार जब परदेश से आवे वा जावे तब २ भी इस क्रिया को करे जिससे पुत्र और पिता माता में अति प्रेम बढ़े ॥

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः। सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरत् ॥ १ ॥ पारस्कर० कां० १ । कं० १६ ॥

हे वीर स्त्री, जैसे यज्ञमें विद्वान् पुरोहितोंको इडापात्री प्रिय होती है (क्योंकि उसीके द्वारा उन्हें यज्ञिय भाग खानेको मिलता है) ऐसे तू हमारी प्रिय है। तू ने वीर पुत्रको उत्पन्न करके हमें वीर-पुत्र-युक्त बनाया है। तू भी वीर-पुत्रवती हो ॥१॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किञ्चित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के:—

ओं इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियं सदनमाविशस्व ॥१॥ यजु० अ० १७ । ८७ ॥

हे अग्नि-समान तेजस्वी बालक, शरीरके मध्यमें स्थित, दूधसे भरे हुए होनेके कारण पुष्ट, बल-दायक इस स्तनको पी। इस स्तनको मधुका स्रोत समझकर इसका सेवन कर। और चलने फिरनेमें समर्थ होकर समुद्र सहित सब संसारका भ्रमण कर ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे इसके पश्चात्:—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। यो रत्नधा

हे सरस्वति स्त्री, जो तेरा स्तन शरीरमें स्थित और सुखका कारण है और जिससे तू बालकको सब धातुओंको पुष्ट करती है; जो दूधरूपी रत्न और

वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वतो तमिह धातवे कः ॥ १ ॥ ऋ० १ । सू० १६४ । ४६ ॥

धनको धारण करने वाला होनेके कारण अच्छे धनका साधन है उसे इस बालकके पोषणार्थ प्रस्तुत कर ॥ २ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख में देवे तत्पश्चात्:—

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ। एवमस्यां सूतिकाया सपुत्रिकायां जागृथ ॥ १ ॥ पारस्कर० कां० १ । कं० १६ ॥

हे जलो, तुम विद्वानोंके प्रत्येक कार्यमें सदा तत्पर रहते हो । जैसे वहां तत्पर रहते हो वैसे ही इस छपुत्रवान् सूतिकागारमें भी आवश्यक कार्योंके लिये तत्पर रहो ॥ १ ॥

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूत स्थान में दश दिन तक रहे वहां नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धिवेला में निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर आहुतियां देवे ॥

ओं शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः । मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदं शण्डामर्काय उपवीराय, शौण्डिकेयायोलूखलाय, मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितेभ्यश्च इदन्न मम ॥ १ ॥

यहांसे मारनेवाले, हठीले, पीड़ा पहुंचानेवाले, पापके कारण उत्पन्न होनेवाले, मलिनतासे उत्पन्न होनेवाले, नासिका-रोगको उत्पन्न करनेवाले और शरीरको कृश करनेवाले, सब रोग-जन्तु नष्ट हो जायं ॥१॥

ओं अलिखिन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिः । हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदमलिखिन्ननिमिषाय किंवदद्भ्य उपश्रुतिहर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ पारस्कर० कां० १ । कं० १६ ॥

निरन्तर हानि पहुंचानेवाला, कुत्सित-भाषी, चुगलखोर, पीली दृष्टिवाला (मद्यसेवी आदि), दीनोंसे द्वेष रखने वाला, भिखमंगा, मनुष्यघातक, प्राणियोंका भोजन करनेवाला, और बात बातमें रङ्ग बदलकर अपने आचारसे च्युत होनेवाला यहांसे नष्ट हो जाय, अर्थात् उक्त प्रकारके पुरुषोंका यहां प्रवेश न होने पावे ॥ २ ॥

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् अच्छे २ विद्वान् धार्मिक वैदिक मत वाले बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता भीतर रहकर आशीर्वादरूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें ॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः । अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ अथर्व० कां० ६ । अनु० ४ । सू० ४१ । मं० ३ ॥

दिव्य-गुण-सम्पन्न वेदके ज्ञाता विद्वान् हमसे अलग न हों। हमसे ही उत्पन्न हुए पुत्र पौत्रादिकोंका हमसे वियोग न हो। हे मुक्त पुरुषो, हम मनुष्योंके समीप आओ और हमें जीवनके लिये प्रकृष्ट आयुका दान दो ॥ १ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १२ । अ० २ । मं० २३ ॥

ईश्वर कहता है मैंने जीवोंके लिये पिता-पुत्र-पौत्रादि रूपी यह जन्म-मरणकी मर्यादा नियत कर दी है। इनके अतिरिक्त कोई इस नियमको नहीं जानता। मनुष्योंको चाहिये कि सैकड़ों वर्ष तक जीते हुये दुर्भिक्षादि-जनित अकाल-मृत्युका मेघसे (सुवृष्टिसे) नाश कर दें ॥ २ ॥

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः । इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० १८ । अनु० ३ । मन्त्र ६१ ॥

भली प्रकार रक्षा करने वाला, प्राणोंका दाता, सब आवश्यक पदार्थोंको हम तक पहुंचानेवाला और अन्धकारका नाशक परमात्मा हमें सबल अभय-प्रदान करे। मेरे यहां बहुत पुत्र पौत्र आदि हों और मुझे गाय घोड़े आदि पशुओं द्वारा पुष्टि-कारक पदार्थोंकी कमी न रहे ॥ ३ ॥

इति जातकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ।



अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः



अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥

आश्वलायन गृह्यसूत्रमें लिखा है कि [माता पिता आदि मिलकर] इस बालकका नाम रखें ॥ १ ॥

घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥

वह नाम ऐसा हो जिसके आदि में वर्गोंके तीसरे चौथे और पांचवें अक्षरोंमेंसे कोई अक्षर हो, बीचमें य, र, ल, और व में से कोई अक्षर हो तथा अन्त में विसर्ग हों। नाम दो अक्षरोंका हो ॥ २ ॥

चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥

अथवा चार अक्षरोंका हो ॥ ३ ॥

द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥

जो प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि पाना चाहे वह दो अक्षरका और जो ब्रह्मतेज पाना चाहे वह चार अक्षरका नाम रखे ॥ ४ ॥

युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥

पुरुषोंका नाम युग्म अक्षरोंका हो ॥ ५ ॥

अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥

स्त्रियोंका नाम अयुग्म-अक्षरोंका हो ॥ ६ ॥

अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विदध्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु । अ०१ । खं१५ ।

उपनयनसे पहिले तकके लिये एक ऐसा नाम भी रख दे जिससे अभिवादन किया जाय, उस नामको माता पिता ही जानें ॥ ७ ॥

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितमयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥ पार० कां० १ । कं० १७ । सू० १-४ ॥

पारस्कर गृह्यसूत्रोंमें लिखा है कि जन्मसे दसवें दिन पिता बालकको उठाकर उसका नाम रखता है। नाम दो या चार अक्षरका, वर्गोंके तीसरे चौथे और पांचवें अक्षर जिसके शुरूमें आवें, य, र, ल, और व ये चार अक्षर बीचमें आवें और अन्तमें विसर्ग हों, ऐसा रखे। नाम कृत्प्रत्ययान्त हो, तद्धित-प्रत्ययान्त नहीं। स्त्रियोंका नाम अयुग्म अक्षरों वाला और आकारान्त हो। ब्राह्मणके, नाम के पीछे शर्मा, क्षत्रियके वर्मा और वैश्यके गुप्त लगाया जाय।

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रमें भी लिखा है।

नामकरण अर्थात् जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम धरे। नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११ में वा १०१ (एकसौ एक) में अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान बालक का पिता और ऋत्विज करें। पुनः पृष्ठ ३-२८ में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और सामन्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २९-३० में लिखे प्रमाणे (त्वन्नो अग्ने०) इत्यादि आठ मन्त्रों से ८ (आठ) आहुति अर्थात् सब मिला के १६ घृताहुति करें तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिनाके उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशामें रखके बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो उस प्रथम प्रधान होम को करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब साकल्य सिद्ध कर रक्खे उसमें से प्रथम घी का चमसा भर के—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इस मन्त्र से १ आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्रमें बालकका जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्रके देवता के नाम से ४ (चार) आहुति देनी अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोलके ४ (चार) घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तोः—

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओं अश्विन्यै स्वाहा। ओं अश्विभ्यां स्वाहा * ॥ गोभि० प्र० २। खं० ८। सू० ९। १२॥

※ तिथिदेवताः—१—ब्रह्मन्। २—त्वष्टृ। ३—विष्णु। ४—यम। ५—सोम। ६—कुमार। ७—मुनि। ८—वसु। ९—शिव। १० धर्म। ११—रुद्र। १२—वायु। १३—काम। १४—अनन्त। १५—विश्वेदेव। १६ पितर।

नक्षत्रदेवताः—अश्विनी—अश्वी। भरणी—यम। कृत्तिका—अग्नि। रोहिणी—प्रजापति। मृगशीर्ष सोम। आर्द्रा—रुद्र। पुनर्वसु—अदिति। पुष्य—बृहस्पति। आश्लेषा—सर्प। मघा—पितृ। पूर्वा-

तत्पश्चात् पृष्ठ २१ में लिखो हुई स्विष्टकृत मन्त्रसे एक आहुति और पृष्ठ २८में लिखे प्रमाणे ४ (चार) व्याहृति आहुति दोनों मिलके ५ आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसनपर बैठे और पिता बालकके नासिका द्वारसे बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याँ सुवीरो वीरैः सुपोषः सुपोषैः ॥ यजु० अ० ७ । मं० २९ ॥

तू कौन है, कौनसा है, किसका पुत्र है, तेरा नाम क्या है ? आगे इसीका उत्तर दिया है कि तू वही है जिसका हमने अभी नाम रखा है और जिसको दूध आदि अमृतसे तृप्त किया है। पिता कहता है कि हे ईश्वर, मैं पुत्रोंसे सुपुत्रवान्, वीर सन्तानोंसे वीर-वान् और पुष्टिकारक अन्नादिसे सुपुष्ट हो जाऊँ ॥

ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १४ ॥

इसका अर्थ पीछे किया जा चुका है । देखो पृष्ट ५८

जो यह "असौ" पद है इसके पीछे बालकका ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षरका वा चार अक्षरका घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाममें अवश्य आवें ❋ । जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो

फाल्गुनी—भग । उत्तराफाल्गुनी—अर्यमन् । हस्त—सवितृ । चित्रा—त्वष्टृ । स्वाति—वायु । विशाखा—इन्द्राग्नी । अनुराधा—मित्र । ज्येष्ठा—इन्द्र । मूल—निर्ऋति । पूर्वाषाढ़ा—अप् । उत्तराषाढ़ा—विश्वेदेव । श्रवण—विष्णु । धनिष्ठा—वसु । शतभिषज्—वरुण । पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद । उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य । रेवती—पूषन् ॥

❋ ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और हरएक ऊष्मा, इतने अक्षर नाममें होने चाहियें और स्वरोंमेंसे कोई भी स्वर हो । जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भव, भवनाथ नागदेव, रुद्रदत्त, हरिदेव,) इत्यादि पुरुषोंका समाक्षर नाम रखना चाहिये तथा स्त्रियोंका विषमाक्षर नाम रखे अन्त्यमें दीर्घस्वर और तद्धितान्त भी होवे; जैसे [श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रीड़ा] इत्यादि परन्तु स्त्रियोंके इस प्रकारके नाम कभी न रक्खें उसमें प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्] ॥ १ ॥ मनुस्मृतौ । [ऋक्ष] रोहिणी, रेवती इत्यादि, [वृक्ष] चम्पा, तुलसी इत्यादि, [नदी] गङ्गा यमुना, सरस्वती इत्यादि, [अन्त्य] चांडाली इत्यादि, [पर्वत] विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि, [पक्षी] कोकिला, हंसा इत्यादि [अहि] सर्पिणी, नागी इत्यादि. [प्रेष्य] दासी, किङ्करी इत्यादि, [भयंकर] भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ।

देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन या पांच अक्षरका नाम रक्खे। श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामोंको प्रसिद्ध बोलके पुनः "असौ" पदके स्थानमें बालकका नाम धरके पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना।

ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु असौ॥ मं० ब्रा० १। ५। १५॥

इस मन्त्र द्वारा बालकके उत्तरोत्तर दीर्घायु और बलवान होनेकी अभिलाषा प्रकट की गयी है। इसका विशेष अर्थ जातकर्म संस्कारके प्रकरणमें लिख चुके हैं। देखो पृष्ठ ५८।

इन मन्त्रोंसे बालकको जैसा जातकर्ममें लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे, इस प्रमाणे बालकका नाम रखके संस्कारमें आये हुए मनुष्योंको वह नाम सुनाके पृष्ठ २७—२८ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करे तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्योंको आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ३—४ में लिखे प्रमाणे परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थनोपासना करके बालकको आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः।"

हे बालक! तू आयुष्मान् विद्यावान् धर्मात्मा यशस्वी पुरुषार्थी प्रतापी परोपकारी श्रीमान् हो॥

इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः॥



अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ।

निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं कि जो बालकको घरसे जहां वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है उसका समय जब अच्छा देखे तभी बालकको बाहर घुमावें अथवा चौथे मासमें तो अवश्य भ्रमण करावें । इसमें प्रमाण :—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥ पार० कां० १ । कं० १७ ॥

चौथे मासमें निष्क्रमण-संस्कार करे, "तच्चक्षु"—रित्यादि मन्त्र द्वारा सूर्यको दिखलाकर ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्रका वचन है ॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम् ॥ गोभिल० । प्र० । खं० ८ । सू० १ ॥

जन्मसे लेकर जो तीसरा शुक्लपक्ष पड़े उसकी तृतीयाके दिन निष्क्रमण संस्कार करे ।

यह पारस्करगृह्यसूत्रमें भी है ॥

अर्थः—निष्क्रमण संस्कारके कालके दो भेद हैं एक बालकके जन्मके पश्चात् तीसरे शुक्लपक्षकी तृतीया और दूसरा चौथे महीनेमें जिस तिथिमें बालकका जन्म हुआ हो उस तिथिमें यह संस्कार करे।

उस संस्कारके दिन प्रातःकाल सूर्योदयके पश्चात् बालकको शुद्ध जलसे स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालकको यज्ञशालामें बालककी माता ले आके पतिके दक्षिण पार्श्वमें होकर पतिके सामने आकर बालकका मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रखके पतिके हाथमें देवे पुनः पतिके पीछेकी ओर घूमके बायें पार्श्वमें पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे ।

ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १० ॥

ओं यत्पृथिव्याममृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्याह नाम माहं पौत्रमघं रिषम् ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । ११ ॥

ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १२ ॥*

---

*इन तीनों मन्त्रोंके अर्थ के लिये देखो पृष्ठ ५७-५८ ।

इन तीन मन्त्रोंसे परमेश्वरकी आराधना करके पृष्ठ ३—२८ में लिखे प्रमाणे परमेश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्ति-प्रकरण आदि सामान्यप्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्रको देखके इन निम्नलिखित तीन मन्त्रोंसे पुत्रके शिरको स्पर्श करे :—

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ पार० कां० १ । कं० १८ । सू० २ ॥

ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ पार० कां० १ । कं० १८ । सू० ३ ॥

गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि। सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥३॥ पार० कां० १ । कं १८ । सू० ४ ॥(१)

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपे:--

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१॥ ऋ० मं० ३ । सू०३६ । मं०१०॥(२)

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥२॥ ऋ०मं० २ । सू०२१ । मंत्र ६ ॥(३)

इस मन्त्रको वाम कानमें जपके पत्नीकी गोदमें उत्तर दिशामें शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालकको देवे और मौन करके स्त्रीके शिरका स्पर्श करे तत्पश्चात् आनन्द पूर्वक उठके बालकको सूर्यका दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्रको वहां बोले :—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥ य०३६ । मं०२४ ॥(४)

इस मन्त्रको बोलके थोड़ासा शुद्ध वायुमें भ्रमण कराके यज्ञशालामें ला सब लोग :-

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ।

इस वचनको बोलके आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् बालकके माता और पिता संस्कारमें आये हुए स्त्रियों और पुरुषोंका यथायोग्य सत्कार करके विदा करें। तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालककी माता लड़केको शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओरसे आगे आके पिताके हाथमें बालकको उत्तरकी ओर शिर और दक्षिणकी ओर पग करके

(१) इन तीनों मन्त्रोंके भावार्थके लिये देखो पृष्ठ ५६।

(२) अर्थके लिये देखो पृष्ठ ५७।

(३) अर्थके लिये देखो पृष्ठ ५६-५७।

(४) अर्थके लिये देखो पृष्ठ १३।

देवे और बालककी माता दाहिनी ओरसे लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भरके चन्द्रमाके सन्मुख खड़ी रह के :—

ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्। तदहं विद्वांस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघं रुदम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १३ ॥ *

इस मन्त्रसे परमात्माकी स्तुति करके जलको पृथिवी पर छोड़ देवे तत्पश्चात् बालक की माता पुन: पतिके पृष्ठ की ओरसे पतिके दाहिने पार्श्वसे सन्मुख आके पतिसे पुत्रको लेके पुन: पतिके पीछे होकर बांईं ओर आ बालकका उत्तरकी ओर शिर दक्षिणकी ओर पग रखके खड़ी रहे और बालकका पिता जलकी अञ्जलि भर (ओं यददश्चन्द्र०) इसी मन्त्र से परमेश्वरकी प्रार्थना करके जलको पृथिवी पर छोड़के दोनों प्रसन्न होकर घरमें आवें ॥

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥



* इस मन्त्रके अर्थके लिये देखो पृष्ठ ५८

अथान्नप्राशनविधिं वक्ष्यामः



अन्नप्राशन संस्कार तभी करे जब बालककी शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे। इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्रका प्रमाण—

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥ १ ॥ आश्व० अ० १। कं० १६। सू० १ ॥

घृतौदनं तेजस्कामः ॥ २ ॥ आश्व० अ० १। कं० १६। सू० ४ ॥

दधिमधुघृतमिश्रितमन्नँ प्राशयेत् ॥३॥ आश्व० अ० १। कं० १६। सू० ५ ॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादिमें भी है ॥

छठे महीने बालकको अन्नप्राशन करावे। जिसको तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही सहत और घृत तीनों भातके साथ मिलाके निम्नलिखित विधिसे अन्नप्राशन कराबे अर्थात् पूर्वोक्त पृष्ठ ३–२८ में कहे हुए संपूर्ण विधिको करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसी दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे ॥

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। ओं अपानाय त्वा०। ओं चक्षुषे त्वा०। ओं श्रोत्राय त्वा०। ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥

प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र और इष्ट कार्यको सिद्ध करनेवाला अग्नि, इन सबके लिये मैं प्रीतिपूर्वक इस अन्नको धोता हूं, इतना ही इन पांचों मंत्र-वाक्योंका शब्दार्थ है।

इन पांच मन्त्रोंका यही अभिप्राय है कि चावलोंको धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भातमें यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पक जाव तब थोड़े ठण्डे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। ओम् अपानाय त्वा०। ओं चक्षुषे त्वा०। ओं श्रोत्राय त्वा०। ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥ ५ ॥ आश्व० अ० १। कं० १०। सू० ६-७ ॥

प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र और इष्ट कार्यके साधक अग्निके लिये मैं प्रीति पूर्वक रखता हूं।

इन पांच मन्त्रोंसे कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजोंको पात्रमें पृथक् २ देके पृष्ठ २०—२१ में लिखे प्रमाण अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्य-

भागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) मिलके (आठ) घृत की आहुति देके पुनः उस पकाये हुए भातकी अहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रोंसे देवे ॥

ओं देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा । इदं वाचे—इदन्न मम ॥ १ ॥ ऋ० मं० ८ । सू० १०० । मंत्र ११ ॥

विद्वानोंने दिव्य-गुण-सम्पन्न वाणीको उत्पन्न किया, परन्तु अनेक प्रकारके अज्ञानी प्राणी उसको अनेक प्रकार बोलते हैं। वह वाणी हमको, अन्न और बल देने वाली गौके समान, मधुर और उचित रूपमें परिष्कृत होकर प्राप्त हो ॥ १ ॥

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवां ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयं स्वाहा ॥ इदं वाचे वाजाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ य० अ० १८ । मं० ३३ ॥

आज अन्न हमारे लिये दान-शक्तिको उत्पन्न करता है। अनुकूल ऋतुओं सहित अन्न ही विद्वानोंको समर्थ बनाता है। अन्न मेरे सब पुत्रों आदिको वीर बनावे। मैं अन्नका स्वामी होकर सब दिशाओंको विजय करनेमें समर्थ होऊं ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रोंसे दो आहुति देवें तत्पश्चात् उसी भातमें और घृत डालके—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा ॥ इदं प्राणाय—इदन्न मम ॥ १ ॥

मैं प्राण-वायुसे अन्नका उपभोग करूं ॥ १ ॥

ओं अपानेन गन्धानमशीय स्वाहा ॥ इदमपानाय इदन्न मम ॥ २ ॥

मैं अपान-वायुसे गन्धका उपभोग करूं ॥ १ ॥

ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा ॥ इदं चक्षुषे—इदन्न मम ॥ ३ ॥

मैं आंखसे रूपोंका उपभोग करूं ॥ ३ ॥

ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा ॥ इदं श्रोत्राय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ पार० कां० १ । कं० १९ ॥

मैं कानसे अपने यशका श्रवण करूं ॥ ४ ॥

इन मन्त्रोंसे चार आहुति देके (ओं यद्स्य कर्मणो०) पृष्ठ २४ में लि० स्विष्टकृत् आहुति एक देवे तत्पश्चात् पृष्ठ २३ में लि० व्याहृति आहुति ४ (चार) पृष्ठ २५-२६ में लिखे (ओं त्वन्नो०) इत्यादिसे ८ (आठ) आज्याहुति मिलके १२ (बारह) आहुति देवे। उसके पीछे आहुतिसे बचे हुए भातमें दही मधु और उसमें घी यथायोग्य किंचित् मिलाके और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़ेसे मिलाके बालकके रुचि प्रमाणे—

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ १ ॥ य० अ० ११। मं० ८३ ॥

हे अन्नपति परमात्मन, हमें आप नीरोग और बलकारक अन्नको दीजिये। आप अन्नका दान करने वालेकी और भी समृद्धि कीजिये और हमारे पशुओं आदिके लिये भी बलकारक अन्नको दीजिये ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा २ पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धो के पृष्ठ २७-२८ में लि० महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः ॥

हे बालक, तू अन्नका स्वामी होकर अन्नका उपभोग करता हुआ फलता फूलता रह ॥

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषोंका सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सब को प्रसन्नतापूर्वक विदा करें ॥

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥



अथ चूडाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है जिसको केशच्छेदन संस्कार भी कहते हैं इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा है:—

तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १ ॥

उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति ॥ २ ॥ आश्व० अ० १। कं० १७॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है ॥

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम् ॥ पार० कां० २। कं० १। सू० १ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है। यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना। उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में जिस दिन आनन्द मङ्गल हो उस दिन यह संस्कार करे। विधिः—

आरम्भ में पृ० ३-२८ में लिखित विधि करके चार शरावे ले एक में चावल, दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे, धर के पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे "ओं अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे "ओं देव सवितः प्रसुव०" इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के पूर्व पृष्ठ २०-२१ में लिखित अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उस पर लक्ष्य देकर पृष्ठ २२-२३ में आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ २२-२३ में लि० आठ आज्याहुति सब मिल के १६ (सोलह) आहुति देके पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०" इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ और स्विष्टकृदग्नि मन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे, इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देख के:—

ओं आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥ अथर्व कां० ६। सू० ६८। मं०१॥

यह सविता (मुण्डनमें समर्थ) नायी उसतरे सहित यहां आया है। हे वायो, (नायी) तुम गरम जल सहित यहां आओ ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठभाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्ढा जल दोनों पात्रों में लेके "उष्णेन वाय उदकेनेधि। पार० कां० २। कं० १।" इस मन्त्र को बोल के दोनों पात्रों का जल एक पात्र में मिला देवे पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई ले के—

ओं अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु सचोतसः। चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ १॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८। मं० २॥

अखण्डित उसतरा बालोंको काटे। शुद्ध पानी इस बालकके केशोंको भिगो दें। प्रजाओंका रक्षक परमात्मा दीर्घ जीवनकी और ज्ञानकी प्राप्तिके लिये इस बालकके रोगोंकी निवृत्ति करे॥ १॥

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु। ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥ २॥ पारस्कर० कां० २। कं० १। सू० ६॥

हे बालक, दीर्घायु और कांतिकी प्राप्तिके लिये, ईश्वर द्वारा उत्पन्न किये गये ये दिव्य-गुण-युक्त जल तेरे शरीरको भिगो दें॥ २॥

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेर के केशों को भिगोवे तत्पश्चात् कंघा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे अर्थात् विखरे न रहें तत्पश्चात् "ओं ओषधे त्रायस्व एनं मैनं हिंसीः॥ य० अ० ४। मं० १" (१) इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबाके "ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि। मं० ब्रा० १। ६। ४॥" (२) इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के---

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः॥ य० अ० ३। मं० ६३॥

हे उसतरे तू कल्याणकारी है और अच्छे लोहेका बना हुआ है। तुझे नमस्कार हो। तू इस बालकको हानि मत पहुंचाना॥

इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे तत्पश्चात्—

ओं स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः॥ य० अ० ४। मन्त्र १॥

हे लोहे, इस बालकको हानि मत पहुंचा॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय य० अ० ३। मन्त्र ६३॥

मैं आयु, अन्नके भोग, सन्तानकी वृद्धि, धनों की पुष्टि, सुसन्तानकी प्राप्ति और बलके लिये यह मुण्डन-क्रिया करता हूं॥

इन दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप लेजाके—

(१) हे कुशाओ, तुम इस बालककी रक्षा करो। इस को हानि मत पहुंचाओ॥
(२) हे उसतरे तू विष्णु (परमात्मा) की डाढ है, अर्थात् तू खब तेज है॥

ओं येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८। मं० ३॥

होशियार नायी जिस उस्तरेसे शान्ति-गुण-युक्त राजा तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंका मुण्डन करते हैं, हे संस्कारकर्ता ब्राह्मणो, तुम उसीसे इस बालक का सिर मुण्डवाओ, अर्थात् मुण्डनके लिये सबसे उत्तम नायी और उस्तरेको चुनना चाहिये। यह बालक गाय, घोड़े आदि पशुओं तथा सन्तानसे युक्त हो॥ १॥

इस मन्त्र को बोल के कुशसहित उन केशों को काटे * और वे कटे हुए केश और दर्भ शमीवृक्ष के पत्र सहित अर्थात् यहां शमीवृक्ष के पत्र भी प्रथम से रखने चाहियें उन सब को लड़के का पिता और लड़के की मां एक शरावा में रक्खे और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो उसको गोबर से उठा के शरावा में अथवा उसके पास रक्खे तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥ आश्व० अ० १। कं० १७। मं० १२॥

जिस सामर्थ्य से परमात्माने वायु, अग्नि, बिजली तथा अन्य पदार्थोंकी स्थिति की हुई है, उसी सामर्थ्य से, हे बालक, मैं तेरी जीवन-वृद्धि, सुकीर्ति और कल्याणके लिये तेरा मुण्डन करता हूं॥ २॥ [यह अर्थ स्वामी दयानन्द-कृत है]।

इस मन्त्र से दूसरी वार केश का समूह दूसरी ओर का काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च राज्यं ज्योक् च पश्याति सूर्यम्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥ आश्व० अ० १। कं० १७। मं० १२॥

जिस ईश्वर-प्रदत्त सामर्थ्यसे प्राणि-मात्र रात्रि और दिनमें स्थित पदार्थोंको और सूर्यलोकको देखते हैं, उसी सामर्थ्य से, हे बालक, मैं तेरी जीवन वृद्धि सुकीर्ति और स्वस्तिके लिये तेरा मुण्डन करता हूं॥ ३॥ [इसका आशय यह प्रतीत होता है कि मुण्डन भली भांति देख भालकर करे॥]

इस मन्त्र से तीसरी वार उसी प्रकार केशसमूह को काट के उपरि उक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०" "ओं येन धाता०" "ओं येन भूयश्च०" और—

ओं येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे

जिस सामर्थ्य से तेजस्वी परमात्माने वायु, अग्नि और बिजलीको धारण किया हुआ है, उसी ईश्वर-प्रदत्त सामर्थ्य से, हे बालक तेरी जीविका, जी-

* केशछेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्तिसे पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटे तो भी ठीक है॥

जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय ॥ साम मंत्र ब्राह्मण । १ । ६ । ७ ॥

वन और दीर्घायु के लिये मैं तेरा मुण्डन करता हूं ॥ ४ ॥

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोल के चौथी वार इसी प्रकार केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बांई ओर के केश काटने का विधि करे तत्पश्चात् उसके पीछे आगे के केश काटे परन्तु पांचवी वार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥१॥ पार० कां० २ । कं० १ । सू० १६ ॥

जिस सामर्थ्य से वायु द्यु लोक और सूर्य लोक में प्रलय-काल-पर्यन्त भ्रमण करता रहता है, उसी ईश्वरी सामार्थ्य से, हे बालक, मैं तेरी जीविका, जीवन, सुकीर्ति और स्वस्तिके लिये तेरा मुण्डन करता हूं ॥ ५ ॥

यह मन्त्र बोलकर केश छेदन करे। तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥ य० अ० ३ । मं० ६२ ॥

इसका अर्थ पहिले किया जा चुका है। देखो पृष्ठ ५७ ॥

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक वार काट के इसी (ओं त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालकके शिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु । शुभं मुखं मा न आयुः प्रमोषीः ॥ अथर्व० कां० ८ । सू० २ । मन्त्र १७ ॥

हे केशोंके काटनेवाले नायी, तू जिस चमकते हुए तेज उसतरेसे केश और डाढ़ी मूंछ काटता है, उससे इस बालकका मुख सुन्दर बना दे। इसकी आयु का क्षय न हो ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोलके नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज कराके नापित से बालक का पिता कहे कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर, कहीं छुरा न लगने पावे इतनी कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को लेजा, उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठाके जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक वार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी वार के केश रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिनमें प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुण्डन किये हुए

सब केश दर्भ शमीपत्र और गोवर नाई को देवे, यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई, केश दर्भ शमीपत्र और गोवर को जङ्गल में लेजा गढ़ा खोद के उसमें सब डाल ऊपर से मट्टी से दाव देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाव के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे, ऐसा नापित से कह दे अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उससे उक्त प्रकार करा लेवे। क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे के पृष्ठ २७-२८ में सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥ हे बालक, तू सौ बरस तक फलता फूलता हुआ जो।

इस मन्त्र को बोलके बालकको आशीर्वाद देके अपने २ घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें ॥

इतिचूडाकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥



अथ कर्णवेधसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ।



अत्र प्रमाणम्*—कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥ १ ॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है। बालक के कर्ण वा नासिका के वेधका समय जन्म से तीसरे वा पांचवें वर्षका उचित है। जो दिन कर्ण वा नासिकाके वेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालङ्कार धारण करा के बालक की माता यज्ञशाला में लावे। पृष्ठ ३-२८ तक में लिखा हुआ सब विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धर के—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ ऋ० म० १। सू० ८९। मंत्र ८॥

हे यजनीय विद्वानो, हम कानोंसे अच्छी बातें सुनें, आंखोंसे अच्छा देखें और दृढ अंगों वाले शरीर सहित हमारे लिये जितनी आयु नियत है उसका पूरा उपभोग करें॥ १॥

इस मन्त्रको पढ़ के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जाननेवाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके। पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

---

* इस संस्कारका विधान कात्यायन गृह्यसूत्रके सिवा किसी गृह्यसूत्रमें नहीं पाया जाता। और कात्यायन-गृह्यसूत्रमें भी इसका प्रयोजन स्पष्ट रूपमें नहीं लिखा है। परन्तु सुश्रुत आदि वैद्यक-ग्रन्थोंको देखनेसे पता लगता है कि कान बींधनेके रक्षा और शृङ्गार ये दो प्रयोजन हैं। नाकका बींधना तो केवल शृङ्गारके ही लिये है, दूसरा उसका कुछ प्रयोजन नहीं। और क्योंकि आज कल नासिकामें आभूषण पहिनना, सभ्य-समाजमें शृङ्गारका भी चिह्न नहीं समझा जाता, इस कारण नाकका बींधना अनावश्यक है। रक्षाका अभिप्राय है, शरीरकी रोगोंसे रक्षा। सुश्रुत (चिकित्सत स्थान अध्याय १९) में लिखा है कि कनपटीके ऊपर नाड़ीके जोड़को बचाकर कान बींधनेसे अन्त्रवृद्धि और अण्डवृद्धि रोगों की निवृत्ति होती है। यही कारण है कि स्वामीजीने लिखा है कि "चरक सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थोंके जानने वाले सद्वैद्यके हाथसे कर्णवेध करावे कि जो नाड़ी आदिको बचाकर वेध कर सकें।" नाड़ी आदि से सर्वथा अनजान मामूली सुनारों द्वारा कान बींधनेकी जो रीति आजकल चली हुई है वह अच्छी नहीं है।

वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती॥ ऋ० मं० ६। सू० ७५। मंत्र ३॥

युद्धमें शत्रु-समूहके पार ले जाने वाली, धनुषमें लगी हुई यह प्रत्यंचा [डोरी] कुछ बोलती हुई सी धनुर्धारीके कानके समीप आती है और प्रिय पतिको आलिंगन करती हुई स्त्रीके समान कुछ अव्यक्त शब्द करती है॥२॥

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वामकर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी औषधि उस पर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे होजावें॥

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः॥



अथोपनयन*संस्कारविधिं वक्ष्यामः



अत्र प्रमाणानि। अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥ ५ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥६॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार पारस्करादि गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है ॥

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से ८ (आठवें) वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ (सोलह) क्षत्रिय के २२ (बाईस) और वैश्य के बालक को २४ (चौबीस) से पूर्व २ यज्ञोपवीत चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें ॥

श्लोकः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ १ ॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठ-बुद्धि और शीघ्र समर्थ पढ़नेवाले होते हैं। जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके ॥

यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है ॥

अर्थः—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इसका प्रातःकाल ही समय है ॥

---

* उप नाम समीप नयन अर्थात् प्राप्त करना व होना।

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥ यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालकको कराना चाहिये। उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेक बार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावें और (आमिक्षा) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखरड कहते हैं वैसी जो दही चौगुना दूध एकगुना तथा यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छानकर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का पा के व्रत करे अर्थात् जब जब लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खा० ॥

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उसके पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवे और उस दिन पृष्ठ ३-२८ वें तक सब कुण्ड के समीप सामग्री धर प्रातःकाल बालक का क्षौर करा शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और पृष्ठ १६ में लि० ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने २ आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें॥

पश्चात् कार्य्यकर्त्ता बालक के मुख से:—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि ॥ पार० कां० २। कं० २॥ मं० ब्रा० १। ६। १६॥

मैं ब्रह्मचर्यको प्राप्त होऊं, मैं ब्रह्मचारी बनूं।

ये वचन बुलवा के ॐ आचार्य्यः—

ओ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥ १॥ पार० कां० १। कं० २। सू० १०॥

जिस प्रयोजनसे बड़े बड़े आचार्य अपने योग्य शिष्योंको स्वास्थ्य-कारी वस्त्र पहिनाया करते थे, उसी प्रयोजनसे मैं भी तुझको यह वस्त्र स्वास्थ्य, दीर्घायु, बल और तेजके लिये पहिनाता हूं॥ १॥

ॐ आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा छल कपट रहित, अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन और धन से सब को सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सबका हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे।

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे। पश्चात् बालक आचार्य्य के सम्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ १ ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ २ ॥ पार० कां०२। कं० २ ॥

यज्ञोपवीत परम पवित्र है, पहिलेसे ईश्वरने इसकी रचना की है। यह आयु-वर्द्धक, मुख्य, और शुद्ध है। यह तुमको बल और तेजके देने वाला हो ॥ १ ॥

हे यज्ञसूत्र, तू यज्ञोपवीत है और हे बालक, तुझे इस यज्ञोपवीत अर्थात् ब्रह्मचर्यके व्रतसे बांधता हूं ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण का पाठ करके समिदाधान, अग्न्याधान कर (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०)इत्यादि पूर्वोक्त चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका पश्चात् आज्याहुति करने का आरम्भ करना ॥

वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष्य में धर चमसा में आज्यस्थाली से घी ले, आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) तथा पृष्ठ २३ में आज्याहुति ८ तीनों मिल के १६ (सोलह) घृत की आहुति देके बालक के हाथ से प्रधान होम जो विशेष शाकल्य बनाया हो उस की आहुतियां निम्नलिखित मन्त्रों से दिलानी, (ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०) पृष्ठ २४ में ४ (चार) आज्याहुति देवे। तत्पश्चात्—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ मं० ब्रा० १। ६। ९ ॥

हे व्रतोंके स्वामी अग्ने, मैं जो यह व्रत लेने लगा हूं वह तुझे बतलाता हूं। तेरी कृपासे मैं इसका पालन कर सकूं। मैं इस व्रतसे उन्नतिको प्राप्त होऊं। मैं झूठको छोड़कर सत्यका ग्रहण करता हूं ॥ १ ॥

ओं वायो व्रतपते० * स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १। ६। १० ॥

हे व्रतोंके स्वामी वायो, इत्यादि शेष पहिले मन्त्रके समान जानो ॥ २ ॥

* इसके आगे 'व्रतं चरिष्यामि' इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये ॥

ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १। ६। ११॥

हे व्रतोंके स्वामी सूर्य० ॥ ३ ॥

ओं चन्द्र व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ४ ॥ मं० ब्रा० १। ६। १२॥

हे व्रतोंके स्वामी इन्द्र ॥ ४ ॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये इदन्न मम ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १। ६। १३॥

हे व्रतोंमें सब व्रतोंके स्वामी० ॥ ५ ॥ अभिप्राय यह है कि अग्नि, वायु, सूर्यादि सब की व्रत-पालनमें मुझे अनुकूलता प्राप्त हो ॥

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी। उसके पीछे पृष्ठ २४ में व्याहृति आहुति ४ (चार) और स्विष्टकृत आहुति १ (एक) और प्राजापत्याहुति १ (एक) ये सब मिल के छः घृतकी आहुति देनी, सब मिलके १५ (पन्द्रह) आहुति बालकके हाथसे दिलानी उसके पश्चात् आचार्य्य यज्ञकुण्डके उत्तरकी ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्यके सम्मुख पश्चिममें मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य्य बालककी ओर देखके :—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन। अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १। ६। १४।

हमारा आज इस नवीन आगन्तुक ब्रह्मचारीके साथ संगम होता है। इसकी संगति अच्छे मनुष्यों के साथ हो। हम निर्विघ्न व्रतों पर आचरण करते रहें और इस बालकका कल्याण हो ॥ १ ॥

इस मन्त्रका जप करे।

माणवकवाक्यम्—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व।" मं० ब्रा० १। ६। १६ ॥

बालक बोले—मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया है, मुझे यज्ञोपवीत दीजिये।

आचार्योक्तिः—"को नामासि" ॥

आचार्य पूछे—तेरा क्या नाम है ?

बालकोक्तिः—"एतन्नामास्मि" ॥ मं० ब्रा० १। ६। १॥

बालक कहे—मैं इस नाम वाला हूं।

तत्पश्चात्

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ । मन्त्र १ ॥

हे जलो, तुम सुख देने वाले हो, तुम हमारे लिये अन्नका धारण करो (अन्न उपजाओ) और हमें दीर्घ रमणीय दृष्टि-शक्ति दो ॥ १ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ऋ०मं० १० । सू० ९ । मन्त्र २ ॥

तुम्हारा जो कल्याणकारी रस है उसे हमको ऐसे प्रदान करो जैसे माता अपने बच्चेको दूध पिलाती है ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ ॥ मन्त्र ३ ॥

तुम जिस अन्नकी उत्पत्ति और रक्षाके लिये वर्षा आदि रूपोंमें दिखलाई पड़ते हो हम उसीको पानेके लिये तुम्हारे पास आते हैं। तुम हमारे लिये वह अन्न उपजाओ ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रोंको पढ़के वटुककी दक्षिण हस्तांजलि शुद्धोदकसे भरनी तत्पश्चात् आचार्य्य अपनी हस्ताञ्जलि भरके :—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥ ऋ०मं०५ । सू०८२ । मंत्र १॥

हम सृष्टि-कर्त्ता परमात्माके उस सर्वपोषक श्रेष्ठ भोजन (अन्न) को प्राप्त करें और हम प्रचुर ऐश्वर्य-शाली हों ॥ १ ॥

इस मन्त्रको पढ़के आचार्य अपनी अञ्जलिका जल बालककी अञ्जलिमें छोड़के बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठसहित पकड़के :—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ+ ॥ १ ॥ य० अ० ५ । मं० २६ ॥

हे बालक, सृष्टि-कर्त्ता परमात्माकी इस सृष्टिमें मैं तेरे हाथको अश्वि-देवोंके बाहुओंसे और पूषा के हाथोंसे ग्रहण करता हूं। अर्थात् जैसे ये देव सृष्टिको भला करते हैं ऐसे ही मैं तेरी रक्षा आदि करूंगा ॥

इस मन्त्रको पढ़के बालककी हस्ताञ्जलिका जल नीचे पात्रमें छुड़ा देना। इसी प्रकार दूसरी वार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर बालककी अञ्जलिमें अपनी अञ्जलि का जल भरके अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़के :—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ ॥ १ ॥ मानवगृह्य० १ । २ । ५ ॥

हे बालक, तेरे हाथको सृष्टिकर्त्ता ईश्वरने पकड़ा है ॥

इस मन्त्रसे पात्र में छुड़वा दे। पुनः इसी प्रकार तीसरी वार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जलि में भर अंगुष्ठसहित हाथ पकड़:—

+असौ इस पदके स्थानमें बालकका सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये ॥

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ ॥ मं० ब्रा० १।६।१५॥

हे बालक, तेरा आचार्य अग्नि है।

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्यः—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मा मृत ॥ १ ॥ आश्व० । अ० १ । कं० २० । ६ ॥

हे सृष्टि-कर्त्ता परमात्मन्, यह ब्रह्मचारी तेरा है, तू इसकी रक्षा कर। इसकी मृत्यु न हो॥

इस एक और पृष्ठ ६७ लि० (तच्चक्षुर्देवहितम्) इस दूसरे मन्त्रको पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालक सहित आचार्य सभामण्डप में आ यज्ञकुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के:—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः। ऋ० मं० ३। सू० ८ ॥ मन्त्र ४ का पूर्वार्ध ॥

ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, × असौ ॥ १ ॥ साम० मं० ब्रा० २।६।१६॥

यह युवक अच्छे वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण करके आया है। यह ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करता हुआ लोगोंके कल्याणके लिये होता है। हे ब्रह्मचारी, तुम सूर्यकी तरह तेजस्वी और परोपकारी बनो ॥ १ ॥

इस मन्त्रको पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सम्मुख बैठे पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि, अमुम् ॥१॥ मं० ब्रा० १।६।२० ॥

हे नाभि, तू प्राणोंका केन्द्र है, तू नीचे मत डिग। हे संसारका अन्त करने वाले परमात्मन्, मैं इस बालकको रक्षार्थ तुझे सौंपता हूं ॥ १ ॥

इस मन्त्रको बोलने के पश्चात्—

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १।६।२१ ॥

हे वायु के प्रेरक परमात्मन्, मैं इस ब्रह्मचारी को तुझे सौंपता हूं ॥ २ ॥

इस मन्त्रसे उदर पर और:—

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ ३ ॥ मं० ब्रा०१।६।२२ ॥

हे ज्वलनके कर्ता परमात्मन्, मैं इस ब्रह्मचारी को तुझे सौंपता हूं ॥ ३ ॥

×असौ और अमु इन दोनों पदोंके स्थानमें सर्वत्र बालकका नामोच्चारण करना चाहिये ॥

इस मन्त्रसे हृदय—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि असौ ॥४॥ मं० ब्रा० १ ।६ । २३ ॥	हे ब्रह्मचारिन्, मैं तुझे प्रजाओंके पालक परमात्माके सिपुर्द करता हूं ॥ ४ ॥

इस मन्त्रको बोल के दक्षिण स्कन्ध और:—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥५॥ मं० ब्रा० १ । ६ ।२४॥	हे ब्रह्मचारिन्, मैं तुझे सृष्टि-कर्ता परमेश्वरके सपुर्द करता हूं ॥ ५ ॥

इस मन्त्रको बोल के वाम हाथ से वाएं स्कन्धा पर स्पर्श करके बालक के हृदय पर हाथ धरके:—

ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥६॥ ऋ० मं० ३ । सू० ८ । मं० ४ का उत्तरार्ध ॥	उस (पूर्व-निर्दिष्ट) ब्रह्मचारी को धीर, बुद्धिमान्, दिव्य-गुणवान विद्वान् उन्नति-पथपर ले जाते हैं ॥ ६ ॥

इस मन्त्रको बोल के आचार्य सम्मुख रहकर बालक के दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रखके:—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥ सू० १६ ॥

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य बालक ! तेरे हृदय को मैं अपने आधीन करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहै और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे । यह प्रतिज्ञा करावे इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य ! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहै आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिये आप को सदा नियुक्त रखे । इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्ति:—

को नामाऽसि ॥	तेरा नाम क्या है ?
बालकोक्ति:—अहम्भोः ॥	मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे ।

आचार्य:—

कस्य ब्रह्मचार्य्यसि ॥ तू किसका ब्रह्मचारी है ।

ब्रह्मचारी :—

भवतः ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥ आपका ।

आचार्य बालकको रक्षाके लिये:—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्त-वाहमाचार्यस्तव (१)असौ ॥ पार० कां २ । कं० २ ॥

तू इन्द्रका ब्रह्मचारी है। तेरा आचार्य अग्नि है। तेरा आचार्य मैं हूं ॥ अर्थात् तेरा मुख्य आचार्य तो परमात्मा है परन्तु उसके प्रतिनिधि-रूपमें मैं तेरा आचार्य हूं ॥

इस मन्त्रको बोले। तत्पश्चात्—

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥१॥ मानवगृह्य०१।२२।५ ॥

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥ पार०कां०२।मं०२॥

तू किसका ब्रह्मचारी है ? प्राणका । तेरा उपनयन किसने किया है ? तुझे किसके सपुर्द करूँ ? मैं तुझे प्रजाओंके पालक और सृष्टिके रचयिता परमात्मा, जल, ओषधि, द्युलोक व पृथिवी लोक और सब भौतिक शक्तियोंके सपुर्द करता हूं कि वे सब तेरा भला करें।

इन मन्त्रोंको बोल बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्याके लिये यत्नवान् हो ।

यह उपनयन संस्कार पूरे हुए पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य का हो तो उसी दिन करना और जो दूसरे दिन का विचार हो तो पृष्ठ २७-२८ में लिखे महावामदेव्यगान करके संस्कार में आई हुई स्त्रियों का बालक को माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करें और माता पिता आचार्य सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिलके:—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः ।

तू फलता फूलता सौ वर्ष तक जी और आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी हो ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने २ घर को सिधारें ॥

इत्युपनयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

(१) असौ इस पदके स्थानमें सर्वत्र बालकका नामोच्चारण करना चाहिये।

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते ।

वेदारम्भ उसको कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग (१) चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ॥

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ॥

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे । तत्पश्चात् पृष्ठ ३-१५ तक में ईश्वरस्तुति [२] प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण करके पृष्ठ २०-२१ में (भूर्भुवः स्वः०) इस मन्त्र से अग्न्याधान पृष्ठ २१ में (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान, पृष्ठ २२ में (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और (ओं देव सवितः०) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के पृष्ठ २१ में (उद्बुध्यस्वाग्ने०) इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करके प्रदीप्त समिधा पर पृष्ठ २३ में आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २५-२६ में आज्याहुति आठ मिलके १६ (सोलह) आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान [३] होमाहुति दिला के पश्चात् पृष्ठ २३ में व्याहृति आहुति ४ (चार) और स्विष्टकृत् आहुति १ (एक) प्राजापत्याहुति १ (एक) मिलकर छः आज्याहुति बालकके हाथ से दिलानी तत्पश्चात्—

---

(१) (अङ्ग) शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष । (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त । [उपवेद] आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । [ब्राह्मण] ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ । [वेद] ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सबको क्रमसे पढ़े ।

[२] जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे उसको पुनः वेदारम्भके आदिमें ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना और शान्तिप्रकरण करना आवश्यक नहीं ॥

[३] प्रधान होम उसको कहते हैं जो संस्कार मुख्य करके किया जाता है ॥

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० कां० २। कं० ४ ॥ सू० १-२ ॥

हे अग्ने, तू सुकीर्त्ति वाला है, मुझे भी सुकीर्ति-वान् बना। हे यशस्वी अग्ने, जैसे तू यशस्वी है ऐसे ही मुझे भी सत्कीर्ति और उत्तम यशसे युक्त कर। हे अग्ने, जैसे तू विद्वानोंके यज्ञका कोश-रक्षक (कोषाध्यक्ष) है ऐसे ही मैं भी मनुष्योंके लिये ज्ञानके भण्डार वेद-रूपी कोशका रक्षक बनूं ॥ १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना। तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके पृष्ठ २२ में लि० प्र० "अदितेनुमन्यस्व" इत्यादि ४ (चार) मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जल सिञ्चन करके बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में ले—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥ १ ॥ पार० कां० २। कं० ४। सू० ३ ॥

बड़े और ज्ञानदाता अग्निके लिये मैं यह समिधा लाया हूं। हे अग्ने, तू जैसे समिधासे बढता फलता फूलता है ऐसे ही मैं आयु, बुद्धि बल, सन्तान, पशु, और ब्रह्मवर्चससे बढ़ूं व फलूं फूलूं। मेरा आचार्य जीवित पुत्रवान हो। मैं मेधावी (बुद्धिमान), अपने आचार्यादि गुरुओंका तिरस्कार न करने वाला, यशस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी और यथातृप्ति अन्नका खाने वाला बनूं ॥ १ ॥

समिधा वेदिस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देना। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े पुनः "ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से वेदिस्थ-अग्नि को इकट्ठा करके पृष्ठ २२ में लि० प्र० "ओं अदितेनुमन्यस्व: ०" इत्यादि चार मन्त्रोंसे कुण्ड के सब ओर जल सेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ासा तपा के हाथ में जल लगा:—

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥१॥
ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥ ३ ॥

हे अग्ने, तू शरीरका रक्षक है, मेरे शरीरकी रक्षा कर ॥ १ ॥ हे अग्ने, तू आयुको देने वाला है, मुझे आयु दे ॥ २ ॥ हे अग्ने तू वर्चस (तेज व बल) को देने वाला है, मुझे वर्चस दे ॥ ३ ॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ ४॥
हे अग्ने, मेरे शरीरमें जो कमी हो उसे तू पूरा कर ॥ ४ ॥

ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु ॥ ५ ॥
मुझे जगतका स्रष्टा परमात्मा मेधा (बुद्धि) देवे ॥ ५ ॥

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥ ६ ॥
मुझे ज्ञानकी अधिष्ठाती देवी मेधा देवे ॥ ६ ॥

ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७ ॥ पार० कां० २ । कं० ४ ॥
मुझे सुन्दर अलङ्कार धारण करने वाले अश्विन् देव मेधा देवें ॥ ७ ॥

जल स्पर्श करके इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर मुख स्पर्श करना तत्पश्चात् बालक—

ओं वाङ् म आप्यायताम् ॥
मेरी वाणीकी उन्नति हो।

इस मन्त्रसे मुख,

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥
मेरे प्राणोंकी [श्वास-शक्ति] की उन्नति हो।

इस मन्त्रसे नासिका द्वार,

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥
मेरी आंखोंकी उन्नति हो।

इस मन्त्रसे दोनों नेत्र,

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥
मेरे कानोंकी उन्नत्ति हो।

इस मन्त्रसे दोनों कान,

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥
मेरे यश और बलकी वृद्धि हो।

इस मन्त्रसे दोनों बाहुओंको स्पर्श करे ॥

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥ आश्व० अ० १ । कं० २१ । सू० ४ ॥

अग्नि मुझमें मेधा, प्रजा [सन्तान] और तेजका आधान करे। इन्द्र मुझमें मेधा प्रजा और इन्द्रियका आधान करे। सूर्य मुझमें मेधा प्रजा और तेजका आधान करे। हे अग्ने तेरा जो तेज है मैं उससे तेजस्वी बनूं। हे अग्ने, तेरा जो वर्चस है मैं उससे वर्चस्वी बनूं। हे अग्ने, तेरी जो पदार्थोंको हरण करनेकी [ले जानेकी] शक्ति है मैं उससे हरण-शक्ति-सम्पन्न होऊं॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके, जानुको भूमिमें टेकके, पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालकके सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठ—

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीं भो अनुब्रूहि ॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महा-व्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रख के अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ॥

प्रथम वार ।

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक २ पद का प्रथम वार शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

एक २ पद से यथावत् धीरे २ उच्चारण करवा के, तीसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

धीरे २ इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखकी प्राप्ति करानेहारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेहारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये । इस प्रकार अर्थ सुनाये, पश्चात्—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥१॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

इसका अर्थ श्री स्वामीजी ने उपनयनके प्रकरणमें किया है। देखो पृष्ठ ८९ ।

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके--

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥१॥ मं० ब्रा० १। १। २७॥ पार० कां० २। कं० २॥

यह मेखला दुष्टोंके बुरे शब्दोंको दूर हटाती हुई, वर्णको शुद्ध करती हुई तथा प्राण और अपानके बलको बढाती हुई सौभाग्यवती बहिनके समान मुझे प्राप्त हुई है ॥

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना के रक्खी हुई मेखला ※ को बालक के कटि में बांध के---

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ १॥ ऋ० मं० ३। सू० ८। मंत्र ४॥

यह मन्त्र भी उपनयन संस्कार प्रकरणमें आ चुका है॥ वहां उसका अर्थ पृष्ठ ८४ और पृष्ठ ८५ में देख लेना चाहिये।

इस मन्त्रको बोल के दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उनमें से एक कौपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपवस्त्र बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड + हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़---

ओं यो मे दंडः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ १॥ पार० कां० २। कं० २॥

जो दण्ड मुझे आकाशसे आज भूमिमें प्राप्त हुआ है उसे मैं आयु, वेद और ब्रह्मवर्चसकी प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूं॥

※ ब्राह्मणों को मूञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुषसंज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये।

+ ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक दण्ड प्रमाण है और वे दण्ड चिकने सूधे हों, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों और एक २ मृगचर्म उनके बैठनेके लिये एक २ जलपात्र, एक२ उपपात्र और एक २ आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये।

इस मन्त्रको बोलके बालक आचार्यके हाथसे दण्ड ले लेवे, तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रमका साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ* ॥ १ ॥ अपोऽशान ॥ २॥ कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥६॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥९॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥१२॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वा वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥१८॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥ नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥ २२ ॥ मं० ब्रा० १। ६। २६ ॥

अर्थः—तू आजसे ब्रह्मचारी है ॥१॥ नित्य सन्ध्योपासन और भोजनके पूर्व शुद्ध जलका आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मोंको छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिनमें शयन कभी मत कर ॥ ४ ॥ आचार्यके आधीन रहके नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़नेमें पुरुषार्थ किया कर ॥ ५ ॥ एक २ साङ्गोपाङ्ग वेदके लिये बारह २ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जबतक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें तबतक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्यके आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करनेका उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर ॥७॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥ ८ ॥ आठ × प्रकार के मैथुनको छोड़ देना ॥ ९ ॥ भूमि में शयन करना पलंग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥ कौशीलव अर्थात् गाना बजाना तथा नृत्य

* असौ इस पदके स्थानमें ब्रह्मचारीका नाम सर्वत्र उच्चारण करे ।

× स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है ॥

आदि निन्दित कर्म गन्ध और अंजन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोकका ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥ क्षौर मत करा ॥ १४ ॥ मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥ गाँव में निवास और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशंका के विना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर ॥ १८ ॥ तैलादि से अंगमर्दन, उबटना, अति खट्टा इमली आदि, अति तीखा लाल मिर्चो आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥ नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्याग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥ सुशील, थोड़े बोलनेवाला, सभामें बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करनेके और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता, पिता, बहिन, भाई, मांमा मौसी, चाची आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करें उनसे भिक्षा × मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी तत्पश्चात् आचार्य उसमेंसे कुछ थोड़ा-सा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को देदेवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े। तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठाके पृष्ठ २७-२८ में लिखे वामदेव्यगान को करना तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रम संस्कारमें लिखा सन्ध्योपासन आचार्य बालक के हाथ से करावें और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ १६ में लि० भात बना उसमें घी डाल पात्र

× ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवति भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवति ददातु" वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवति" ऐसा वाक्य बोले ॥

में रख पृष्ठ २०-२१ में लि० समिदाधान कर पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) दोनों मिल के ८ (आठ) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा हो के पृष्ठ ८८ में "ओं अग्ने सुश्रवः०" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे। तत्पश्चात् बालक बैठके यज्ञकुण्ड की अग्नि से अपना हाथ तपा, पृष्ठ ८८-८६ में पूर्ववत् मुखका स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करना। तत्पश्चात् पृष्ठ १६ में लि० प्र० बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उसमें घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥ इदं सदसस्पतये इदन्न मम॥ १॥ य० अ० ३२। मं० १३॥

जीवात्माके मित्र, अभिलषणीय; अद्भुत और विश्व संसारके स्वामी ईश्वरसे मैं योग्य उपभोग और मेधाकी याचना करता हूँ।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ इदं सवित्रे इदन्न मम॥२॥ यजु०अ०२२। मं०६॥

अर्थ के लिये देखो पृष्ठ ६०।

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा॥ इदं ऋषिभ्यः इदन्न मम॥ ३॥ आश्व० अ० १। कं० २२। सू० १४॥

इन तीन मन्त्रोंसे तीन और पृष्ठ २४ में लि० (ओंयदस्य कर्मणो०) इस मन्त्रसे चौथी आहुति देवे तत्पश्चात् पृष्ठ २४ में लि० व्याहृति आहुति ४ (चार) पृष्ठ २५-२६ में (ओं त्वन्नो०) इन ८ (आठ) मन्त्रों से आज्याहुति ८ (आठ) मिल के १२ (बारह) आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २७-२८ में लि० वामदेव्य गान आचार्य के साथ करके:—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये॥

मैं इस गोत्रमें उत्पन्न हुआ-हुआ आपको प्रणाम करता हूँ।

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य्य का वन्दन करे और आचार्य्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य॥

हे सौम्य, तू जीता रह और विद्याको प्राप्त कर।

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठके करें तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन

करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनको यथायोग्य भोजन करा तत्पश्चात् स्त्रि-यों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जन बालक को निम्न-लिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

हे बालक, तू ईश्वरकी कृपासे विद्वान् बलवान वीर्यवान्, नीरोग और कुशलवान् हो और सब विद्यायें पढ़के फिर हमसे मिलनेको आ।

ऐसा आशीर्वाद देके अपने २ घर को चले जायें। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ (तीन) दिन तक भूमि में शयन प्रातःसायं पृ० ८८ में लि० (ओमग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ २० में लि० मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति०) इत्यादि पृष्ठ ६४ में लि० ४ (चार) स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और ३ (तीन) दिन तक क्षार लवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करनेके समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥१॥ अथर्व०काण्ड ११। सूक्त ५। मन्त्र ३ ॥

इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति। ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥ अथर्व० कां० ११। सू० ५ । मं० ४ ॥

ब्रह्मचार्य्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० ११। सू० ५ । मं० ६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ४ ॥ अथर्व०कां० ११ । सू० ५ । मं १७ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ ५ ॥ अथर्व० कां०११ । सू० ५। मं० १८ का पूर्वार्ध ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः। प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥६॥ अथर्व०कां०११ । सू०५ । मं०२४॥

संक्षेप से भावार्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रख के ३ (तीन) रात्रि

पर्य्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उसके आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्या स्थापन करने के लिये उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उसको देखने के लिये सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर बडा मान्य करते हैं ॥ १ ॥

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होमकर ब्रह्मचर्य के व्रत का नियमपूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है वह जानो पृथिवी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सब का पालन करता है क्योंकि वह समिदाधान मेखलादि चिह्नों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ॥ २ ॥

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित होके (दीर्घश्मश्रु:)४० (चालिस) वर्ष तक डाढ़ी मूंछ आदि पंचकेशों का धारण करनेवाला ब्रह्मचारी होता है वह पूर्ण समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तम समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है वह सब लोगों का संग्रह करके वारंवार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

वही राजा उत्तम होता है जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित सुशील जितेन्द्रिय होकर राज्य को विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता है जो यथावत् ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्याओं को पढ़ाता है ॥ ४ ॥

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो के अपने सदृश कन्या से विवाह करें वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्यसे पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवती हो अपने तुल्य पूर्ण युवावस्थावाले पतिको प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदोंका शब्द, अर्थ और सम्बन्धके ज्ञान पूर्वक धारण करता है तभी प्रकाशमान होता उसमें सम्पूर्ण दिव्यगुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घ जीवन दुःख क्लेशोंका नाश, सम्पूर्ण विद्याओंमें व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रज्ञाको धारण करके सब मनुष्योंके हितके लिये सब विद्याओंका प्रकाश करता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यकालः ।

इसमें छन्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठकके सोलहवें खण्डका प्रमाण :—

मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद ॥ १ ॥ पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशतिवर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ २ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३ ॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वं रोदयन्ति ॥ ४ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनं सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहम्प्राणानां रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ५ ॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदं सर्वमाददते ॥ ६ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥७॥

अर्थः—जो बालक को ५ (पांच) वर्ष की आयु तक माता, पांच से ८ (आठ) तक पिता, ८ (आठ) से ४८ (अड़तालीस) ४४ (चवालीस) ४० (चालीस) ३६ (छत्तीस) ३० (तीस) तक अथवा २५ (पच्चीस) वर्ष तक और कन्या को ८ (आठ) से २४ (चौवीस) २२ (बाईस) २० (वीस) १८ (अठारह) अथवा १६ (सोलह) वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष वा स्त्री विद्यावान् होकर धर्मार्थ काम मोक्ष के व्यवहारों में अतिचतुर होते हैं ॥ १ ॥ यह मनुष्य देह यज्ञ है अर्थात् अच्छे प्रकार उसको आयु बल आदि से संपन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि २४ (चौवीस) वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और १६ (सोलह) वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण जैसे २४ (चौबीस) अक्षर का गायत्री छन्द होता है वैसे करे वह प्रातःसवन कहाता है जिससे इस मनुष्य-देहके मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं जो बलवान् होकर सब शुभ गुणों को शरीर आत्मा और मन के बाच में वास कराते हैं ॥ २ ॥ जो कोई इस २५ (पच्चीस) वर्ष

के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह वा विषयभोग करने का उपदेश करे उसको वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि देख, यदि मेरे प्राण मन और इन्द्रिय २५ (पच्चीस) वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जो कि आगे ४४ (चवालीस) वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है उसको पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है इसलिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूं कि जो इस शरीर प्राण अन्तःकरण और आत्मा के संयोगरूप सब शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के साधन करनेवाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य-देह धारण के फल से विमुख रहूं और सब आश्रमों के मूल सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सब के मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महा दुःखसागर में कभी डूबूं किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोगरहित होता है इसलिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूंगा ॥ ३ ॥ और जो ४४ (चवालीस) वर्ष तक अर्थात् जैसा ४४ (चवालीस) अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिसके आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह सब दुष्ट कर्म करनेवालों को सदा रुलाता रहता है ॥ ४ ॥ यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता और विषयसम्बन्धी भी अधिक आनन्द होता है वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता क्योंकि सांसारिक व्यवहार विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्म-चारी ही प्राप्त होता है अन्य कोई नहीं इसलिये मैं इस सर्वोत्तम सुख प्राप्ति के साधन ब्रह्म-चर्य का लोप न करके विद्वान् बलवान् आयुष्मान् धर्मात्मा हो के सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊंगा। तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं और अपने कुल को नष्ट भ्रष्ट कभी न करूंगा ॥ ५ ॥ अब ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त जैसा कि ४८ (अड़तालीस) अक्षर का जगती छन्द होता है वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पूर्ण बल, पूर्ण प्रज्ञा, पूर्ण शुभ गुण, कर्म स्वभावयुक्त सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि अरे! छोकरों के छोकरे मुझ से दूर रहो तुम्हारे दुर्गन्धरूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूं मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूंगा इसको पूर्ण करके सर्व रोगों से रहित सर्वविद्यादि शुभ गुण, कर्म, स्वभाव सहित होऊंगा इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ा के विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूं ॥ ७ ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । तत्रा-षोडशाद् वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतस्सम्पूर्णता । ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

यह धन्वन्तरिजी कृत सुश्रुतग्रन्थका प्रमाण है ।

अर्थ—इस मनुष्य-देहको ४ अवस्था हैं—एक वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी संपूर्णता, चौथी किञ्चित्परिहाणि करनेहारी अवस्था है । इनमें १६ (सोलहवें) वर्ष आरम्भ २५ (पच्चीसवें) वर्षमें पूर्तिवाली वृद्धिकी अवस्था है । जो कोई इस वृद्धिकी अवस्थामें वीर्यादि धातुओंका नाश करेगा वह कुल्हाड़ेसे काटे वृक्ष वा डंडेसे फूटे घड़ेके सामान अपने सर्वस्वका नाश करके पश्चात्ताप करेगा, पुनः उसके हाथमें सुधार कुछ भी न रहेगा और दूसरी जो युवास्था उसका आरम्भ २५ (पच्चीसवें) वर्षसे और पूर्त्ति ४० (चालीस) वर्षमें होती है जो कोई इसको यथावत संरक्षित न कर रक्खेगा वह अपनी भाग्यशालिता को नष्ट कर देवेगा और तीसरी पूर्ण युवावस्था ४० (चालीसवें) वर्षमें होती है जो कोई ब्रह्मचारी होकर पुनः ऋतुगामी परस्त्रीत्यागी एकस्त्रीव्रत गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा वह भी बना बनाया धूलमें मिल जायगा और चौथी ४० (चालीसवें) वर्षसे यथावत् निर्वीर्य न हो तावत् किञ्चित् हानिरूप अवस्था है यदि किञ्चित् हानिके बदले वीर्य्यकी अधिक हानि करेगा वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगोंसे पीड़ित हो जायगा और जो इन चारों अवस्थाओंको यथोक्त सुरक्षित रक्खेगा सर्वदा आनन्दित होकर सब संसारको सुखी कर सकेगा ॥

अब इसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि स्त्री और पुरुषके शरीरमें पूर्वोक्त चारों अवस्थाओंका एकसा समय नहीं है किन्तु जितना सामर्थ्य २५ (पच्चीसवें) वर्षमें पुरुषके शरीरमें होता है उतना सामर्थ्य स्त्रीके शरीरमें १६ (सोलहवें) वर्षमें हो जाता है यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ (पच्चीस) वर्षका पुरुष और १६ (सोलह) वर्षकी स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं इस कारण इस अवस्थामें जो विवाह करना वह अधम विवाह है और जो १७ (सत्रहवें) वर्षकी स्त्री और ३० (तीस) वर्षका पुरुष १८ (अठारह) वर्षकी स्त्री और छत्तीस वर्षका पुरुष १९ (उन्नीस) वर्षकी स्त्री ३८ (अड़तीस) वर्षका पुरुष विवाह करे तो इसको मध्यम समय जानो और जो २० (बीस) २१ (इक्कीस) २२ (बाईस) वा २४ (चौबीस) वर्षकी स्त्री ४० (चालीस) ४२ (बया-

लीस) ४६ (छयालीस) और ४८ (अड़तालीस) वर्षका पुरुष होकर विवाह करे वह सर्वोत्तम है। हे ब्रह्मचारिन्! इन वाक्योंको तू ध्यानमें रख जो कि तुझको आगेके आश्रमोंमें काम आवेंगे जो मनुष्य अपने सन्तान कुल सम्बन्धी और देशकी उन्नति करना चाहें वे इन पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातोंका यथावत् आचरण करें॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता॥ १॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥ २॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ॥ ३॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ ४॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥ ५॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥ ६॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्॥ ७॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ ८॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ ९॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥ १०॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥ ११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।

यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः ॥ १२ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १३ ॥
संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १४ ॥
वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ १५ ॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १६ ॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ १८ ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ १९ ॥ मनु० द्वि० अ० श्लोक ९०—९२, ९८, ९३, ९७, १००, १२१, १५३, १५४, १५६, १५७, १६२, १६६, १६८, २१८, २३८—२४० ॥

अर्थ :—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्रका मार्ग), हाथ, पग, वाणी ये दश (१०) इन्द्रिय इस शरीरमें हैं ॥ १ ॥ इसमें कर्ण आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं ॥ २ ॥ ग्यारहवां इन्द्रिय मन है वह अपने स्मृति आदि गुणोंसे दोनों प्रकारके इन्द्रियसे सम्बन्ध करता है कि जिस मनके जीतनेमें ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ जैसे सारथि घोड़ेको कुपथमें नहीं जाने देता वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करने वाले विषयोंमें जाते हुए इन्द्रियके रोकनेमें सदा प्रयत्न किया करे ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी इन्द्रियोंके साथ मन लगानेसे निःसन्देह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त दश इन्द्रियोंको वशमें करके ही पश्चात् सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिसका ब्राह्मणपन (सम्मान नहीं चाहना वा इन्द्रियोंको वशमें रखना आदि) बिगड़ा वा जिसका विशेष प्रभाव (वर्णाश्रमके गुण कर्म) बिगड़े हैं उस पुरुषके वेद पढ़ना, त्याग अर्थात् संन्यास लेना, यज्ञ (अग्निहोत्रादि) करना, नियम (ब्रह्मचर्याश्रम आदि) करना, तप (निन्दा, स्तुति और हानि, लाभ आदि द्वन्द्वका सहन) करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि अपने नियम धर्मोंको यथावत् पालन करके सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियोंको वशमें कर और

आत्माके साथ मनको संयुक्त करके योगाभ्याससे शरीरको किञ्चित् २ पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनोंको सिद्ध करे ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् ब्रह्मचारीको चाहिये कि यमोंका सेवन नित्य करे केवल नियमोंका नहीं क्योंकि यमों (१)को न करता हुआ और केवल नियमों (२)का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्यसे पतित हो जाता है इसलिये यमसेवनपूर्वक नियम-सेवन नित्य किया करे ॥८॥ अभिवादन करनेका जिसका स्वभाव और विद्या वा अवस्थामें वृद्ध पुरुषोंका जो नित्य सेवन करता है उसकी अवस्था, विद्या कीर्त्ति और बल इन चारोंको नित्य उन्नति हुआ करती है इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि आचार्य, माता, पिता, अतिथि, महात्मा आदि अपने बड़ोंको नित्य नमस्कार और सेवन किया करे ॥ ९ ॥ अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा, वह निश्चय करके बालक होता और जो मन्त्रद अर्थात् दूसरेको विचार देनेवाला विद्या पढ़ा विद्या विचारमें निपुण है वह पिता-स्थानीय होता है क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषोंने अज्ञ जनको बालक कहा और मन्त्रदको पिता ही कहा है इससे प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर ज्ञानवान् विद्यावान् अवश्य होना चाहिये ॥ १० ॥ धर्मवेत्ता ऋषिजनोंने न वर्षों, न पके केशों वा झूलते हुए अङ्गों, न धन और न बन्धुजनोंसे बड़प्पन माना किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वादविवादमें उत्तर देनेवाला अर्थात् वक्ता हो वह बड़ा है इससे ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्यावान् होना चाहिये जिससे कि संसारमें बड़प्पन प्रतिष्ठा पावें और दूसरोंको उत्तर देनेमें अति निपुण हों ॥ ११ ॥ उस कारणसे वृद्ध नहीं होता कि जिससे इसका शिर झूल जाय, केश पक जावें किन्तु जो ज्वान भी पढ़ा हुआ विद्वान् है उसको विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है इससे ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १२ ॥ जैसे काठका कठपुतला हाथी वा जैसे चमड़ेका बनाया हुआ मृग हो वैसे विना पढ़ा हुआ विप्र अर्थात् ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन होता है उक्त वे हाथी मृग और विप्र तीनों नाममात्र धारण करते हैं इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १३ ॥ ब्राह्मण विषके समान उत्तम मानसे नित्य उदासीनता रक्खे और अमृतके समान अप-मानकी आकांक्षा सर्वदा करे अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके लिये भिक्षामात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे ॥ १४ ॥ द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादिकोंमें उत्तम सज्जन पुरुष

(१) अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

निर्वैरता, सत्य बोलना, चोरीत्याग, वीर्यरक्षा और विषयभोगसे घृणा ये ५ यम हैं ॥

(२) शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

शौच, सन्तोष, तप (हानि लाभ आदि द्वन्द्वका सहना), स्वाध्याय (वेदका पढ़ना), ईश्वरप्रणि-धान (सर्वस्व ईश्वरार्पण) ये पांच नियम कहाते हैं ।

सर्वकाल तपश्चर्या करता हुआ वेद हीका अभ्यास करे जिस कारण ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जनको वेदाभ्यास करना इस संसारमें परमतप कहा है इससे ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर अवश्य वेदविद्याध्ययन करे ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेदको न पढकर अन्य शास्त्रमें श्रम करता है वह जीवता ही अपने वंशके सहित शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है इससे ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर वेदविद्या अवश्य पढ़े ॥ १६ ॥ जैसे फावड़ासे खोदता हुआ मनुष्य जलको प्राप्त होता है वैसे गुरुकी सेवा करनेवाला पुरुष गुरुजनोंने जो पाई हुई विद्या है उसको प्राप्त होता है इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर गुरुजनकी सेवा कर उनसे सुने और वेद पढ़े ॥१७॥ उत्तम विद्याकी श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपनेसे न्यूनसे भी विद्या पावे तो ग्रहण करे। नीच जातिसे भी उत्तम धर्मका ग्रहण करे, और निन्द्य कुलसे भी स्त्रियोंमें उत्तम स्त्रीजनका ग्रहण करे, यह नीति है, इससे गृहस्थाश्रमसे पूर्व २ ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर कहीं न कहींसे उत्तम विद्या पढ़े, उत्तम धर्म सीखे और ब्रह्मचर्यके अनन्तर गृहाश्रममें उत्तम स्त्रीसे विवाह करे ॥ १८ ॥ क्योंकि विषसे भी अमृतका ग्रहण करना, बालकसे भी उत्तम वचनको लेना और नाना प्रकारके शिल्प काम सबसे अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिये इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर देश २ पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे ॥ १९ ॥

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। एके चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्॥ तैत्तिरीयारण्य० प्रपा० ७। अनु० ११॥

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो ब्रह्म भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ॥ २ ॥ तैत्तिरीयारण्य० प्रपा० १०। अनु० ८॥

अर्थः—हे शिष्य ! जो अनिन्दित पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण रहित न्यायधर्माचरण सहित कर्म हैं उन्हीं का सेवन तू किया करना इनसे विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना। हे शिष्य ! जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्मयुक्त उत्तम कर्म हैं उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं उनही के समीप बैठना संग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर ॥ १ ॥ हे शिष्य ! यथार्थ का ग्रहण, सत्य मानना, सत्य बोलना, वेदादि सत्य शास्त्रों का सुनना, अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना, श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, क्रोधादि के त्याग से शान्त रहना, विद्या आदि शुभ गुणों का दान कर-

ना, अग्निहोत्रादि और विद्वानों का सङ्ग करना जितने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोकों में पदार्थ हैं उनका यथाशक्ति ज्ञान करना और योगाभ्यास, प्राणायाम, एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना करना, ये सब कर्म करना ही तप कहाता है ॥ २ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्या० । दमश्च स्वाध्या० । शमश्च स्वाध्या० । अग्नयश्च स्वाध्या० । अग्निहोत्रं च स्वाध्या० । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ ३ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ९ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन्! तू सत्य धारण कर, पढ़ और पढ़ाया कर। सत्योपदेश करना कभी मत छोड़, सदा सत्य बोल, पढ़ और पढ़ाया कर। हर्ष शोकादि छोड़ प्राणायाम योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर। अपनी इन्द्रियों को बुरे कामों से हटा, अच्छे कामों में चला, विद्या का ग्रहण कर और कराया कर। अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा, न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और कराया कर, तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर। अग्निविद्या के सेवनपूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर। अग्निहोत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर, सत्यवादी होना तप (है) (यह) सत्यवचा, राथीतर आचार्य (का), न्यायाचरण में कष्ट सहना तप (है) [यह] तपोनित्य, पौरुशिष्टि आचार्य [का], और धर्म में चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है यह नाको मौद्गल्य आचार्य का मत है और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप है ऐसा तू जान ॥ ३ ॥ इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक को पिता करे।

तत्पश्चात् घर को छोड़ गुरुकुल में जावें। यदि पुत्र हो तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें। यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकोंको और कन्याओंको स्त्री, पाणिनि मुनि कृत वर्णोच्चारणशिक्षा १ [एक] महीनेके भीतर पढ़ा देवें। पुनः पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायीका पाठ पदच्छेद अर्थसहित ८ (आठ) महीने में अथवा १ (एक) वर्ष में पढ़ाकर, धातुपाठ और दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी पुनः पाणिनि मुनि कृत लिङ्गानुशासन और उणादि, गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थ ण्वुल् और तृच् प्रत्यायाद्यन्त सुबन्तरूप ६ (छः) महीनेके भीतर सधवा देवें। पुनः दूसरी वार अष्टाध्यायी पदार्थोक्ति, समास, शंकासमाधान, उत्सर्ग, अपवाद ❋ अन्वयपूर्वक पढ़ावें और संस्कृतभाषणका भी अभ्यास कराते जायं, ८ महीने के भीतर इतना पढ़ना पढ़ाना चाहिये ॥

तत्पश्चात् पतंजलि मुनि कृत महाभाष्य, जिसमें वर्णोच्चारणशिक्षा, अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिगण, लिङ्गानुशासन, इन ६ (छः) ग्रन्थों की व्याख्या यथावत् लिखी है डेढ़ वर्ष में अर्थात् १८ (अठारह) महीने में इसको पढ़ना पढ़ाना। इस प्रकार शिक्षा और व्याकरण शास्त्र को ३ (तीन) वर्ष ५ (पांच) महीने वा नौ महीने अथवा ४ (चार) वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृत विद्याके मर्मस्थलों को समझने के योग्य होवे। तत्पश्चात् यास्क मुनि कृत निघण्टु, निरुक्त तथा कात्यायनादि मुनि कृत कोश १॥ [डेढ] वर्षके भीतर पढ के, अव्ययार्थ, आप्तमुनिकृत वाच्यवाचकसम्बन्ध रूप (१) यौगिक योग-रूढि और रूढि तीन प्रकारके शब्दोंके अर्थ यथावत् जानें। तत्पश्चात् पिङ्गलाचार्यकृत पिङ्गलसूत्र छन्दोग्रन्थ भाष्यसहित ३ [तीन] महीने में पढ़े और ३ [तीन] महीने में श्लोकादिरचनाविद्याको सीखे। पुनः यास्कमुनिकृत काव्यालंकारसूत्र वात्स्यायन मुनि कृत भाष्यसहित, आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यार्थ, अन्वयसहित पढ़ के इसी के साथ मनुस्मृति, विदुरनीति और किसी प्रकरण में के १० सर्ग वाल्मीकीय रामायणके ये सब १ (एक) वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें। तथा १ [एक] वर्ष में सूर्यसिद्धान्तादि मेंसे कोई १ (एक) सिद्धान्तसे गणितविद्या जिसमें बीजगणित, रेखागणित और पाटी-गणित जिसको अङ्कगणित भी कहते हैं पढ़ें और पढ़ावें। निघण्टुसे लेके ज्योतिष् पर्यन्त वेदाङ्गोंको चार वर्षके भीतर पढ़ें। तत्पश्चात् जैमिनिमुनिकृत सूत्र पूर्वमीमांसाको व्यास-मुनिकृत व्याख्यासहित, कणादमुनिकृत वैशेषिकसूत्ररूप शास्त्रको गोतममुनिकृत प्रशस्त-पादभाष्यसहित, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित गोतममुनिकृत सूत्ररूप न्यायशास्त्र, व्या-समुनिकृत भाष्यसहित पतञ्जलिमुनिकृत योगसूत्र योगशास्त्र, भागुरिमुनिकृत भाष्ययुक्त कपिलाचार्य्यकृत सूत्रस्वरूप सांख्यशास्त्र, जैमिनि वा बौद्धायन आदि मुनिकृत व्याख्या-सहित व्यासमुनिकृत शारीरिकसूत्र तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० (दश) उपनिषद् (व्यासादिमुनिकृत व्याख्या-सहित वेदान्तशास्त्र) इन ६ (छः) शास्त्रोंको २ (दो) वर्षके भीतर पढ़ लेवें। तत्पश्चात् बह्वृच, ऐतरेय, ऋग्वेदका ब्राह्मण, आश्वलायन कृत श्रौत तथा गृह्यसूत्र (२) और कल्पसूत्र पदक्रम और व्याकरणादिके सहायसे छन्दः, स्वर, पदार्थ, भावार्थ सहित ऋग्वेदका पठन ३ वर्षके भीतर करे, इसी प्रकार यजुर्वेदका शतपथ ब्राह्मण और पदादिके सहित २ [दो] वर्ष, तथा सामब्राह्मण और पदादि तथा गानसहित सामवेदको २ [दो] वर्ष, तथा

(१) यौगिक—जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे, जैसे पाचक याजकादि। योगरूढ़ि जैसे पङ्कजादि। रूढि, जैसे धन, वन इत्यादि॥

(२) जो ब्राह्मण वा सूत्र वेदविरुद्ध हिंसापरक हो उसका प्रमाण न करना॥

गोपथब्राह्मण और पदादिके सहित अथर्ववेद २ [दो] वर्षके भीतर पढ़ें। सब मिलके ९ (नौ) वर्षोंके भीतर ४ (चारों) वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। पुनः ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद जिसको वैद्यकशास्त्र कहते हैं, जिसमें धन्वन्तरिजीकृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि ऋषिकृत चरक आदि आर्ष ग्रन्थ हैं, इनको ३ (तीन) वर्षके भीतर पढ़ें। जैसे सुश्रुतमें शस्त्र लिखे हैं बनाकर शरीरके सब अवयवोंको चीरके देखें, तथा जो उसमें शारीरिकादि विद्या लिखी हैं साक्षात् करें।

तत्पश्चात् यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद जिसको शस्त्रास्त्र विद्या कहते हैं जिसमें अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं, जो इस समय बहुधा नहीं मिलते ३ (तीन) वर्षमें पढ़ें और पढ़ावें। पुनः सामवेदका उपवेद गान्धर्ववेद, जिसमें नारदसंहितादि ग्रन्थ हैं, उनको पढ़के स्वर, राग, रागिणी, समय, वादित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना आदिका अभ्यास यथावत् ३ (तीन) वर्षके भीतर करे।

तत्पश्चात् अथर्ववेदका उपवेद अर्थवेद जिसको शिल्पशास्त्र कहते हैं, जिसमें विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं, उनको ६ (छः) वर्ष के भीतर पढ़के विमान, तार, भूगर्भादि विद्याओंको साक्षात् करें। ये शिक्षा से लेके आयुर्वेद तक १४ [चौदह] विद्याओंको ३१ [इकत्तीस] वर्षोंमें पढके महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत्के कल्याण और उन्नति करनेमें सदा प्रयत्न किया करें॥

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः समाप्तः॥



अथ समावर्त्तनसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ।



समावर्त्तनसंस्कार उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्यव्रत साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या उत्तम शिक्षा और पदार्थविज्ञानको पूर्ण रीतिसे प्राप्त होके विवाह विधान पूर्वक गृहाश्रमको ग्रहण करनेके लिये विद्यालय छोड़के घरकी ओर आना । इसमें प्रमाण :—

वेदसमाप्तिं वाचयीत (१) । कल्याणैः सह सम्प्रयोगः (२) ।

स्नातकायोपस्थिताय । राज्ञे च । आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च दधनि मध्वानीय । सर्पिर्वा मध्वलाभे । विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः (३) ॥
यह आश्वलयनगृह्यसूत्र ।

तथा पारस्करगृह्यसूत्र :=

वेदं समाप्य स्नायात् । ब्रह्मचर्यं वाष्टचत्वारिंशकम् (४) । त्रय एव स्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति (५) ॥

जब वेदोंकी समाप्ति हो तब समावर्त्तनसंस्कार करे । सदा पुण्यात्मा पुरुषोंके सब व्यवहारोंमें साझा रक्खें । राजा आचार्य श्वशुर चाचा और मामा आदिका अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घरको आवे तब प्रथम [पाद्यम्] पग धोनेका जल [अर्घ्यम्] मुखप्रक्षालनके लिये जल और आचमनके लिये जल देके शुभासन पर बैठा दहीमें मधु अथवा सहत न मिले तो घी मिलाके एक अच्छे पात्रमें धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्या व्रतस्नातक ये तीन * प्रकारके स्नातक होते हैं इस कारण वेदकी समाप्ति और ४८ [अड़तालीस] वर्षका ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रतस्नान करे ॥

---

(१) अ० १ । कण्डि० २२ । सू० १६ ॥

(२) अ० १ । कण्डि० २३ । सू० २० ॥

(३) अ० १ । कण्डि० २४ । सू० २—७ ॥

(४) कां० २ । कण्डि० ६ । सू० १—२ ॥

(५) कां० २ । कण्डि० ५ । सू० ३२ ॥

* जो केवल विद्याको समाप्त तथा ब्रह्मचर्य व्रतको न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक, जो ब्रह्मचर्य व्रतको समाप्त तथा विद्याको न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनोंको समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रतस्नातक कहाता है ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व०कां०११ ।प्रपा०२४ ।व०१६। मं०२६ ॥

अर्थः—जो ब्रह्मचारी समुद्रके समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्यमें निवास कर महातपको करता हुआ वेदपठन वीर्य्यनिग्रह आचार्यके प्रियाचरणादि कर्मोंको पूरा कर पश्चात् पृ० १०६—११० में लिखे अनुसार स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओंको धरता सुन्दर वर्णयुक्त होके पृथिवीमें अनेक शुभ गुण, कर्म और स्वभावसे प्रकाशमान होता है वही धन्यवादके योग्य है ॥

इसका समय पृ० ६७—६६ तकमें लिखे प्रमाणे जानना। परन्तु जब विद्या, हस्तक्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रमकी इच्छा स्त्री पुरुष करें। विवाहके स्थान दो हैं एक आचार्यका घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानोंमेंसे किसी एक ठिकाने आगे विवाहमें लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कारका विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे।

विधिः—जो शुभ दिन समावर्त्तनका नियत करे उस दिन आचार्य्यके घरमें पृ० १५—१६ में लिखे यज्ञकुण्ड आदि बनाके सब शाकल्य और सामग्री संस्कार दिनसे पूर्व दिनमें जोड़ रक्खे और स्थालीपाक [१] बनाके तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशालामें वेदीके समीप रक्खे पुनः पृ० १६ में लिखे० यथावत् ४ [चारों] दिशाओंमें आसन बिछा बैठ पृ० ३ [तीन] से पृ० १५ तकमें ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त होके ईश्वरके ध्यानमें मग्न होवें तत्पश्चात् पृ० २१ में अग्न्याधान समिदाधान करके पृ० २२ में वेदीके चारों ओर उदकसेचन करके आसनपर पूर्वाभिमुख आचार्य बैठके पृ० २३ में आघारावाज्यभागाहुति ४ [चार] और पृ० २३ में व्याहृति आहुति ४ [चार] और २५—२६ में अष्टाज्याहुति ८ [आठ] और पृ० २४ में० स्विष्टकृत् आहुति १ [एक] और प्राजापत्याहुति १ [एक] ये सब मिलके [अठारह] आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पृ० ८८ मेंसे [ओं अग्ने सुश्रवः०] इस मंत्र से कुण्डका अग्नि कुण्डके मध्यमें इकट्ठा करे तत्पश्चात् पृ० ८८ में० [ओं अग्नये समिध०] इस मन्त्रसे कुण्डमें ३ [तीन] समिधा होम कर पृ० ८८-८६में० [ओं तनूपा०] इत्यादि ७ [सात] मन्त्रोंसे दक्षिण हस्तांजलि आगी पर थोड़ीसी तपा उस जलसे मुख स्पर्श और तत्पश्चात् पृ० २० में० [ओं वाङ्म०] इत्यादि मन्त्रोंसे उक्त प्रमाणे अङ्गस्पर्श कर पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जलसे भरे हुए ८ [आठ] घड़े वेदीके उत्तरभागमें जो पूर्वसे रक्खे हुए हों उनमेंसे :—

[१] जो कि पूर्व पृ० १६ में लिखे प्रमाणे भात आदि बनाकर रक्खा हो।

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूखो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ पार० कां० २ । कं० ६ । सू० ६ ॥

जलोंमें छिपी हुई, शारीरिक कष्ट देने वाली प्राणियोंको नाशक, उत्साह भंग करने वाली, अजीर्ण करने वाली, विविध रोगोंको उत्पन्न करने वाली और शरीरको दूषित करने वाली, अष्ट प्रकारकी जो खराब अग्नियां हैं उनको मैं छोड़ता हूँ और जो रमणीय हितकारी अग्नि है उसको मैं ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़, एक घड़े को ग्रहण करके उस घड़े में से जल ले के:—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ पार० कां० २ । कं० ६ । सू० ६ ।

उस जलसे (अर्थात् जिसको ऊपरोक्त आठ अग्नियोंको मैं त्याग चुका हूँ) धन, यश, वेद-विद्या और ब्रह्मवर्चसकी प्राप्तिके लिये मैं स्नान करता हूँ ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् उपरिकथित (ओं ये अप्स्वन्तर०) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घड़े को ले उसमें से लोटे में जल ले के:—

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशतां सुरान् । येनाक्ष्यवभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥ पार० कां० २ । कं० ६ । सू० १० ॥

जिस जलसे अश्वि-देवों [आयुर्वेदाचार्यों] ने विद्वानोंको सुन्दर बनाया तथा सुखी किया और जिससे उन्होंने आंख जैसे नाजुक अङ्गको धोनेके द्वारा यश प्राप्त किया है, उस जलसे मैं स्नान करता हूँ ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के [ओं ये अप्स्वन्तर०] इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे घड़ों में से ३ [तीन] घड़ों को ले के पृ० ८३ में लिखे हुए [आपो हि ष्ठा०] इन ३ [तीन] मन्त्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना, तत्पश्चात् ८ [आठ] घड़ों में से रहे हुए ३ [तीन] घड़ों को ले के [ओं आपो हि ष्ठा०] इन्हीं ३ [तीन] मन्त्रों को मन में बोल के स्नान करे पुनः—

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १५ ॥

हे वरुण [स्वीकरणीय परमेश्वर], हमारे ऊपर मध्य और नीचेके सब बन्धनोंको काट डालिये। और हे प्रकाशक परमात्मन्, हम तेरे व्रत [नियम] का अपराध-रहित पालन करते हुए अखण्ड सुखको प्राप्त करें ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़े तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सम्मुख खड़ा रह कर:—

ओं उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवायावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायंयावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय॥ पार० कां० २। कं० ६।

हे परमात्मन्, आप उदय होते हुए सूर्यके समान सब प्रकाशोंको अपने प्रकाशसे मन्द कर देने वाले हो, आप ऐश्वर्यके स्वामी होनेके कारण देवोंसे सेवित होकर स्थित हो और प्रातः समय आप गमन-शील उपासकोंसे सेवित होकर स्थित रहते हो, आपकी दशों दिशाओंमें प्रतिष्ठा और पूजा हो रही है, मुझे भी आप ऐसा बनाइये कि सब दिशाओंमें मान प्रतिष्ठा पा सकूं और ज्ञानी होकर सर्वत्र विचरूं। इसी आशयको मन्त्रमें थोड़े भेदसे दो बार दोहराया गया है। एक बार 'प्रातःकाल' की जगह 'दिन' का और 'दशसनि' की जगह 'शतसनि' का अर्थात् सैकड़ों प्रकारके प्राणियोंसे सेवनीय इस भावका प्रयोग किया है और दूसरी जगह 'सायं' कालका समय और 'सहस्रसनि' अर्थात् सहस्रों प्राणियोंसे सेवनीय यह भाव प्रकट किया गया है।

इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान स्तुति करके तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन करा के:—

ओं अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजायमागमत्। स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च॥ पार० कां० २। कं० ६॥

हे दांतो, तुम अन्न खानेके लिये तैयार हो जाओ, यह शुद्ध पानी इसी लिये आया है। यह मेरे मुखको धोकर यश और ऐश्वर्यकी वृद्धिका कारण बनेगा।

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य शरीर पर मल के शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्धयुक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे तत्पश्चात् चक्षु मुख नासिका के छिद्रों का:—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय। पार० कां० २। कं० ६॥

हे परमात्मन्, मेरे प्राण और अपानको तृप्त अथवा पुष्ट कीजिये, मेरी आंखोंको तृप्त अथवा पुष्ट कीजिये, आप मेरे कानोंको तृप्त अथवा पुष्ट कीजियेगा।

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख होके

ओं पितरः शुन्धध्वम्॥ पार० कां० २। कं० ६॥

हे पितरोंके समान माननीय जलो, मुझे शुद्ध करो।

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होके:—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन। सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम्॥ पार० कां० २। कं० ६॥

मैं आंखोंसे खूब तीक्ष्ण-दृष्टि, मुखसे खूब कान्तिमान और कानोंसे अच्छी तरह सुनने वाला बन जाऊं।

इस मन्त्र का जप करके:—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥ पा० कां० २। कं० ६॥

मैं शरीर-रूपी धनके पोषक यह वस्त्र शरीरके आच्छादन तथा रक्षा, यशकी प्राप्ति, और दीर्घायु के लिये धारण करता हूं। मैं पुत्र पौत्रादियों सहित अपने बुढ़ापे पर्यन्त सैकड़ों वर्षका जीवन व्यतीत करूं।

इस मन्त्र से सुन्दर अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण करके:—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्रावृहस्पती। यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्॥ पा० कां० २। कं० ६॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक, इन्द्र और बृहस्पति, मुझे यशका दान करें। मुझे यश और ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो, मैं यशका उपभोग करूं॥

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके:—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधाय कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृण्हामि यशसा च भगेन च॥ पार० कां० २। कं० ६॥

जिन फूलोंको नित्य अग्निहोत्रका रक्षक पुरुष श्रद्धा-पूर्वक भेंटमें देने, बुद्धिकी प्रसन्नता और इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये लाया है, उनको मैं यश और ऐश्वर्यके प्रयोजनसे लेता हूं॥

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके:—

ओं यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि॥ पार० कां० २। कं० ६॥

इन्द्रने अप्सराओं अर्थात् कार्य-कुशल पुरुषोंको जिस व्यापी यशसे अलंकृत किया है, उस यशके साथ गूंथी हुई इन फूलोंकी मालाको मैं धारण करता हूं और इसके द्वारा मैं भी यशका भागी बनूं॥ अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों द्वारा यशका संचय करने वाले पुरुषोंका ही सुन्दर पुष्पोंसे आदर सत्कार संसारमें किया जाता है।

इस मन्त्र से धारण करनी, पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में लेके पृष्ठ ८४ में लि० [युवा सुवासाः०] इस मन्त्र से धारण करे उसके पश्चात् अलङ्कार ले के:—

ओं अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्॥ पार० कां० २। कं ६।

हे अलंकार, तू शोभाको बढाने वाला है, मेरी शोभाको बढा।

इस मन्त्र से धारण करे और:—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि॥ यजु० अ० ४। मं० ३।

हे सुरमे, तू सुन्दर बादलके समान कृष्णवर्ण और आंखकी ज्योतिको बढाने वाला है, मेरी दृष्टि-शक्तिको तीव्र कर॥

इस मन्त्र से आंख में अंजन करना। तत्पश्चात्:—

ओं रोचिष्णुरसि॥ पार० कां० २॥ कं० ६॥

हे दर्पण, तू चमकदार है, (मेरे मुखको सुन्दर बना)॥

इस मन्त्र से दर्पण में मुख अवलोकन करे। तत्पश्चात्—

ओं बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मान्तर्धेहि॥ पार० कां० २। कं० ६॥

हे छाते, तू बृहस्पतिकी छत (आवरण) है, मुझे पापसे ओटमें रख, परंतु तेज और यशसे मुझे आडमें मत रखो॥

इस मन्त्र से छत्र धारण करे पुनः—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्॥ पार० कां० २। कं ६॥

हे जूता, तुम शरीरके आधार हो, सब भूतल पर मेरे पांवोंकी रक्षा करो॥

इस मन्त्र से उपानह् पादवेष्टन पगरखा और जिसको जोड़ा भी कहते हैं धारण करे, तत्पश्चात्:—

ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः॥ पार० कां० २। कं०६॥

हे छड़ी या दण्ड, मेरी सब दुष्ट जीवोंसे रक्षा करो।

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे उसको बड़े मान प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर लाके उनके पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार पृष्ठ १०७-१०८ में लिखे प्र० कर पुनः संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्नपानादि से सत्कारपूर्वक भोजन कराके और वह ब्रह्मचारी और उसके माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला वस्त्र गोदान धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति देके सब के सामने आचार्य के जो कि उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की

कृतज्ञता सब को सुनावे। सुनो भद्रजनो! इस महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है जिसने मुझको पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता इसके बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करता हूं कि जैसे आपने मुझ को उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे और (जैसे आपने मुझको) विद्या दे के आनन्दित किया है वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूंगा और आपके किये उपकार को कभी न भूलूंगा सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ानेहारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सब को सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मोंकी सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ पुरुषार्थी उत्साही करें कि जिससे इस परमात्मा की सृष्टि में उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभावों को करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर करा के सदा आनन्द में रहें॥

इति समावर्त्तनसंस्कारविधिः समाप्तः॥



अथ विवाहसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ।

विवाह उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बलको प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त होके निम्नलिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है । इसमें प्रमाण:—

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे * चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः ॥१॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥२॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥ ५ ॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनकगृह्यसूत्र मे भी है ॥

अर्थः— उत्तरायण शुक्लपक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिये ॥ १ ॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उस का आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नताके दिन स्त्रीका पाणिग्रहण, जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादिसे उत्तम हो, करना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

इसका समय:—पृष्ठ ६७—६६ तकमें जानना चाहिये वधू और वरकी आयु, कुल, वास्तव्यस्थान, शरीर और स्वभावकी परीक्षा अवश्य करें, अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करनेवाले हों । स्त्रीकी आयुसे वरको आयु न्यूनसे न्यून ड्योढ़ी और अधिकसे अधिक दूनी होवे । परस्पर कुलकी परीक्षा भी करनी चाहिये । इसमें प्रमाण:—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।

---

* यह नक्षत्रादिका विचार कल्पनायुक्त है इससे प्रमाण नहीं ।

उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २ ॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ३ ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ५ ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ६ ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ७ ॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ९ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ११ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १२ ॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ १३ ॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ १५ ॥

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १६ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १७ ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ १८ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ १९ ॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २० ॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥ २१ ॥ मनु० अ०३।
श्लोक २, ४—१०, २१, २७—३४, ३९—४२ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्यसे ४ (चार), ३ (तीन), २ (दो) अथवा १ (एक) वेदको यथावत् पढ़, अखण्डित ब्रह्मचर्यका पालन करके गृहाश्रमको धारण करे ॥ १ ॥ यथावत् उत्तम रीतिसे ब्रह्मचर्य और विद्याको ग्रहण कर गुरुकी आज्ञासे स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्णकी उत्तम लक्षणयुक्त स्त्रीसे विवाह करे ॥ २ ॥ जो स्त्री माताकी छः पीढ़ी और पिताके गोत्रकी न हो वही द्विजोंके लिये विवाह करनेमें उत्तम है ॥ ३ ॥ विवाहमें नीचे लिखे हुए दश कुल, चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्यसे कितने ही बड़े हों उन कुलोंकी कन्याके साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥ वे दश कुल ये हैं:—१ एक—जिस कुलमें उत्तम क्रिया न हो। २ दूसरा—जिस कुलमें कोई उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा—जिस कुलमें कोई विद्वान् न हो। ४ चौथा—जिस कुलमें शरीरके ऊपर बड़े २ लोम हों। ५ पांचवां—जिस कुलमें बवासीर हो। ६ छठा—जिस कुलमें क्षय (राजयक्ष्मा) रोग हो। ८ आठवां—जिस कुलमें मृगी रोग हो। ९ नववां—जिस कुलमें श्वेतकुष्ठ और १० दशवां—जिस कुलमें गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलोंकी कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषोंसे विवाह कभी न करे ॥ ५ ॥ पीले वर्णवाली, अधिक अङ्गवाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिसके शरीर पर बड़े २ लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलनेहारी और जिसके पीले बिल्लीके सदृश नेत्र हों ॥ ६ ॥ तथा जिस

कन्याका (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि, (नदी) जिसका गङ्गा, यमुना इत्यादि, (पर्वत) जिसका विन्ध्याचला इत्यादि, (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि, [प्रेष्य] दासी इत्यादि और जिस कन्याका (भीषण) कालिका, चण्डिका इत्यादि नाम हो उससे विवाह न करे ॥ ७ ॥ किन्तु जिसके सुन्दर अङ्ग, उत्तम नाम, हंस और हस्तिनीके सदृश चालवाली, जिसके सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों जिसके सब अङ्ग कोमल हों उस स्त्रीसे विवाह करे ॥ ८ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकारके होते हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्म कन्याके योग्य सुशील विद्वान पुरुषका सत्कार करके कन्या को वस्त्रादिसे अलंकृत करके उत्तम पुरुषको बुला अर्थात् जिसको कन्याने प्रसन्न भी किया हो उसको कन्या देना वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥ १० ॥ विस्तृत यज्ञमें बड़े २ विद्वानों का वरण कर उसमें कर्म करनेवाले विद्वान्को वस्त्र आभूषण आदिसे कन्याको सुशोभित करके देना वह दैव विवाह ॥ ११ ॥ ३ (तीसरा) १ (एक) गाय बैलका जोड़ा अथवा २ (दो) जोड़े ❋ वरसे लेके धर्म पूर्वक कन्या दान करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और ४ (चौथा) कन्या और वर को यज्ञशालामें विधि करके सामने तुम दोनों मिल के गृहाश्रमके कर्मोंको यथावत् करो ऐसा कहकर दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये ४ (चार) विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और ५ (पांचवां) वरकी जातिवालों और कन्याको यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है ॥ १४ ॥ ६ (छठा) वर और कन्याकी इच्छासे दोनों का संयोग होना और अपने मनमें मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह कामसे हुआ गांधर्व विवाह कहाता है ॥ १५ ॥ और ७ (सातवां) हनन छेदन अर्थात् कन्याके रोकने वालोंका विदारण कर क्रोशती, रोती, कम्पती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार हरण करके विवाह करना वह राक्षस विवाह ॥ १६ ॥ और जो सोती, पागल हुई वा नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्याको एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहोंमें नीचसे नीच महानीच दुष्ट अति दुष्ट पैशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन ४ (चार) विवाहोंमें पाणिग्रहण किये हुये स्त्री पुरुषोंसे जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादिविद्यासे तेजस्वी, आप्त पुरुषोंके संमत, अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप, बल, पराक्रम, शुद्धबुद्ध्यादि उत्तम गुणयुक्त, पुण्यकीर्तिमान् और पूर्ण भोगके भोक्ता, अतिशय धर्मात्मा होकर १०० (सौ) वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहोंसे जो

❋ यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृतिमें निषेध किया है और युक्तिविरुद्ध भी है इस लिये कुछ भी न ले देकर दोनोंकी प्रसन्नतासे पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है ॥

वाक़ी रहे ४ (चार) आसुर, गांधर्व. राक्षस और पैशाच, इन चार दुष्ट विवाहोंसे उत्पन्न हुए सन्तान निन्दितकर्मकर्त्ता, मिथ्यावादी, वेदधर्मके द्वेषी, बड़े नीच स्वाभाववाले होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये मनुष्योंको योग्य है कि जिन निन्दित विवाहोंसे नीच प्रजा होती है उन का त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती है उनका वर्त्ताव किया करें ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥ १ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ २ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ३ ॥ मनु०॥

यदि माता पिता कन्याका विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाववाले, कन्याके सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त, वर ही को चाहें । वह कन्या (वर) माता की छः पीढ़ीके भीतर भी हो तथापि उसीको कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिस से दोनों अतिप्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरण पर्यंत कन्या पिताके घरमें विना विवाहके बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्टपुरुषके साथ कन्याका विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करनेकी इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिनसे ३ (तीन) वर्षको छोड़के चौथे वर्षमें विवाह करे ॥ ३ ॥

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकोंकी क्या गति होगी ? (उत्तर) इन श्लोकों और इनके माननेवालोंकी दुर्गति । अर्थात् जो इन श्लोकों की रीतिसे बाल्यावस्थामें अपने सन्तानोंका विवाह कर करा उनको नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुलका जानो सत्यानाश कर रहे हैं । इसलिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भमें लिखे हुए १६ (सोलह) वर्षसे न्यून कन्या और २५ [पचीस] वर्ष से न्यून पुरुषका विवाह कभी न करें करावें । इसके आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उनको आनन्द अधिक होगा ॥

[प्रश्न] विवाह निकटवासियोंसे अथवा दूरवासियोंसे करना चाहिये ? (उत्तर)—

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति ॥

यह निरुक्तका प्रमाण है कि जितना दूर देशमें विवाह होगा उतना ही उनको अधिक लाभ होगा (प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनोंका परस्पर विवाह क्यों नहीं होता ? (उत्तर) एक दोष यह है कि इनके विवाह होनेमें प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थमें होती है उतनी प्रत्यक्षमें नहीं। और बाल्यावस्थाके गुणदोष भी विदित रहते हैं। तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते। दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुलके साथ सम्बन्ध नहीं होता तबतक शरीर आदिकी पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती। तीसरा दूर सम्बन्ध होनेसे परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है निकटसे नहीं। युवावस्था हीमें विवाहका प्रमाण—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः। स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ १ ॥ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्। कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ २ ॥ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्। आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्ननृतानि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० २। सू० ३५। मं० ४—६ ॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषी मिषिराम्। आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परिवर्त्तयाते ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ३७। मं० ३ ॥

उष व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्रयह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः। उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ४१। मं० ७ ॥

अर्थः—जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) २० (बीसवें) वर्ष से २४ (चौबीसवें) वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हमको प्राप्त होनेवाली अपने २ प्रसन्न अपने २ से ड्योढ़े वा दूने आयुवाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियान्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिक्वभिः) वीर्यादि से युक्त हो के [अस्मे] हमारे मध्य में [रेवत्] अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और [दीदाय] अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे [अप्सु] अन्तरिक्ष वा समुद्र में [घृतनिर्णिक्] जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (तिस्रः) उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त [देवीः, नारीः] विद्वान् नरों की वि-

दुषी स्त्रियां [अस्मै] इस [अव्यथ्याय] पीड़ा से रहित [देवाय] काम के लिये [अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को (दिधिवन्ति) धारण करती हैं (कृना इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उप,प्रसस्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है (स, हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (पूर्वसूनाम्) प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं ॥ २ ॥ जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्यारूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अयवयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को (द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिपः) हिंसा आदि पाप (न सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इनके (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है इसलिये हे स्त्रि व पुरुष ! तू (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में सदव (स्वः) सुख बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! (यः) जो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त पूर्ण जवान (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई विद्या शुभगुण रूप सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करनेहारी हृदय को प्रिय स्त्री को (पति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) विवाह से अपने स्वामी की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश, हृदय को प्रिय पति को (पति) प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्रवस्यात्) अत्यन्त विद्या धन धान्ययुक्त सब ओर से होवे और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें (च) और सब गृहाश्रम के भार को [वहाते] उठा सकते हैं तथा वे दोनों [पुरु] बहुत [सहस्रा] असंख्य उत्तम कार्यों को [परिवर्तयाते] सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्यायुक्त अपने सन्तानों को कराके स्वयंवर विवाह कराओ तो वे [वन्द्येभिः] कामना के योग्य [चितयद्भिः] सब सत्य विद्याओं को जाननेहारे [अर्कैः] सत्कार के योग्य [शूषैः] शरीरात्मबलों से युक्त हो के [वः] तुम्हारे लिये [एषे] सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और

विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के सम्पूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ह) वैसे ही इस (यज्ञम्) संगतरूप गृहाश्रमके व्यवहारको वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (याही) बड़े ही शुभ गुण कर्म स्वभाववाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप प्र वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्यमें कन्याका ब्रह्मचर्य वेदोक्त है वैसे ही सब पुरुषोंको ब्रह्मचर्यसे विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिससे जिसकी विवाह करनेमें पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्थामें विवाह न कराके बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावेंगे वे वेदोक्त ईश्वराज्ञाके विरोधी होकर महादुःखसागरमें क्योंकर न डूबेंगे और जो पूर्वोक्त विधिसे विवाह करते कराते हैं वे ईश्वराज्ञाके अनुकूल होनेसे पूर्ण सुखको प्राप्त होते हैं। (प्रश्न) विवाह अपने २ वर्णमें होना चाहिये या अन्य वर्णमें भी। (उत्तर) अपने २ वर्णमें। परन्तु वर्णव्यवस्था गुण कर्मोंके अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्रसे नहीं। जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादिदोषरहित विद्या और धर्मप्रचारमें तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिसमें हों वह ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और विद्वान् होके कृषि पशुपालन व्यापार देशभाषाओंमें चतुरत्वादि गुण जिसमें हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं। इस वर्णव्यवस्था में प्रमाणः—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥ अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥ आपस्तम्बे ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ३ ॥ मनुस्मृतौ ॥

अर्थः—धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो २ कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम २ वर्ण नीचे २ के वर्ण को प्राप्त होवे और वे ही उस २ वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें ॥ २ ॥ उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मणवर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म

और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय वैश्य शूद्र, और क्षत्रिय वैश्य शूद्र, तथा वैश्य, शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है ॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न होकर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते; और उत्तम वर्ण, भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इसलिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इस से संसार की बड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जबतक ऐसी वर्णव्यवस्था (अर्थात्) पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी भी ऐसा ही होना चाहिये जिससे आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होकर आनन्दित होवे ॥

अब वधू वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें—दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, सामान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्य मधुरभाषण, कृतज्ञता , दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट द्यूत चोरी मद्य मांसादि दोषों का त्याग गृहकार्यों में अति चतुरता हो जब १ प्रातः सायं वा परदेश से आकर मिलें तब २ नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसनदान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ानेहारे वचनादि व्यवहारोंसे वर्त्तकर आनन्द भोगें वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्ध तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें ॥

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम् । यत्सत्यं तद्दृश्यताम् ॥ गोभिल० प्र० २। खं०१०। सू० ४-६ ॥

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषोंसे वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष ! इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थस्वरूप महत्तत्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उसको यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें ॥

विधिः—जब कन्या रजस्वला होकर पृष्ठ ३१-३२ में लिखे प्रमाणे शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस में विवाह करने के लिये प्रथम ही

सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और १५-१६ पृष्ठ में लि० यज्ञशाला, वेदि, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है पश्चात् एक ❀ घंटेमात्र रात्रि जाने पर:—

ओं काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुं सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥१॥ मन्त्र ब्रा० १ । १ । १ ॥

हे काम, तेरा नाम सब जग जानता है, तू जगमें मदकारी प्रसिद्ध है, यह कन्या तेरे मद करनेका एक साधन है, इसकी तू प्रतिष्ठा कर । हे कामाग्ने, तेरा उत्कृष्ट जन्म इसी स्त्री जातिमें हुआ है, तेरा निर्माण गृहस्थाश्रमरूप तपके लिये ही किया गया है ॥ १ ॥

ओं इमं ते उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापते र्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥ २ ॥ मं० ब्रा०१। १। ३॥

हे स्त्री, मैं तेरे उपस्थेन्द्रियको प्रेमसे युक्त करता हूं, सन्तानोत्पत्तिका यही द्वितीय द्वार-रूप है, तू इसीके द्वारा वशमें न होने वाले पुरुषोंको भी नीचा दिखाती है । हे घरकी स्वामिनि, तू सबको वशमें करनेवाली है ॥ २ ॥

ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥ मन्त्र ब्रा०१ । १ । ३ ॥

तत्वकी खोज करनेवाले पुराने अनुभवी ऋषियों ने स्त्रियोंके उपस्थेन्द्रियको मांस खानेवाले अग्निके समान बतलाया है । उसके साथ ही पुरुषके उपस्थेन्द्रियसे उत्पन्न सन्तानोत्पादनमें समर्थ वीर्यको घृत के समान कहा है । हे स्त्री, यह वीर्य तेरे शरीरमें धारण होकर पुष्ट हो ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर स्नान करें पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पृष्ठ ३ से १५, तक लि० प्र० ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण करें तत्पश्चात् पृष्ठ २०-२२ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान पृष्ठ १६ में लि० स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदि के समीप रक्खें वैसे ही वर भी एकान्त अपने घर में जाके उत्तम वस्त्रालङ्कार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ ३-४ में लि० प्र० ईश्वरस्तुति × प्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जानेका ढंग करे तत्पश्चात् कन्याके और वर पक्ष के पुरुष बड़े सामान (सम्मान ?) से वर को घर लेजावें जिस समय वर वधू

❀ यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिससे मध्यरात्रि तक विवाहविधि पूरा हो जावे ॥

× विवाह में आए हुए स्त्री पुरुष भी एकाग्रचित्त ध्यानावस्थित होके इन तीन कर्मों के अनुसार ईश्वर का चिन्तन किया करें ॥

के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें उसकी रीति यह कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्॥ पार० कां० १। कं० ३। सू० ५॥

आप अच्छी तरह बैठिये। हम आपकी पूजा (सत्कार-स्वागत) करेंगे॥

इस वाक्य को बोले उस पर वर—

ओं अर्चय॥

लीजिये, मेरा स्वागत कीजिये॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उसको वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे॥

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्॥ पार० कां० १। कं० ३॥

लीजिये यह आसन है, आसन लीजिये आसन॥

यह उत्तम आसन आप ग्रहण कीजिये, वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

लाओ, लेता हूं॥

इस वाक्य को बोल के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभामंडप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः। इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥ पार० कां० १। कं० ३॥

आकाशमें उदय होने वाले ग्रह नक्षत्रादिकोंमें जैसे सूर्य श्रेष्ठ है ऐसे ही अपने समान वयो-विद्या गुणादि वाले सजातीय पुरुषोंमें मैं श्रेष्ठ हूं। मुझे जो कोई नीचा दिखाना चाहता हो उसको मैं इस आसन के समान नीचे करके बैठता हूं॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ पार० कां० १। कं० ३॥

यह पाद्य (पांव धोनेका पानी) है, आप पाद्य लीजिये पाद्य॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

लाओ लेता हूं॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग * प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

विविध प्रकारसे शोभित होनेवाले अन्नका हे जल, तू सार है। मैं उस अन्नके सार तेरा उपभोग करूं। इस समय वही अन्नका सार जल मेरे पांव धोनेके लिये उपस्थित है ॥

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे। पुनः कन्या—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

लीजिये यह अर्घ [मुख धोनेका पानी] है, अर्घ लीजिये ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे, और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

लाओ, लेता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र लेके उससे मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आप स्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि। ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

हे जलो, तुम पानी हो, मैं तुम्हारे द्वारा अपने सब कार्योंको सिद्ध करूं। मैं तुमको समुद्रमें भेजता हूं, वहांसे तुम अपने कारण बादलके रूपमें परिणत हो जाओ। हमारे लोग रोग-रहित हों और मुझ से उक्त लाभोंको पहुंचाने वाला जल दूर न हो ॥

इन मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वेदि के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

यह आचमनीय [आचमन करनेका जल] है। आचमनीय लीजिये आचमनीय ॥

इस वाक्य को बोल के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

लाओ लेता हूं ॥

---

* यदि घर का प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रहके यदि ब्राह्मण वर्ण हो तो प्रथम दक्षिण पग तत्पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण होंतो प्रथम बायां पग धोवे पश्चात् दाहिना ॥

इस वाक्य को बोल करके कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उसमें से दहिने हाथ में जल जितना अंगुलियों के मूल तक पहुंचे उतना ले के वर—

ओं आ मा गन् यशसा संसृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम्। पार० कां० १। कं० ३॥

हे जल, तुम मुझे प्राप्त हुए हो। अब मुझे यश और कांतिसे संयुक्त करो। मुझे तुम अपने पुत्र पौत्रादिकोंका प्रिय, पशुओं आदि सम्पत्तिका स्वामी और शरीरसे नीरोग बनाओ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी वार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्॥ पार० कां०१। कं० ३॥

यह मधुपर्क है, लीजिये मधुपर्क लीजिये॥

ऐसी विनति वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

लाओ, लेता हूं॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे॥ पार० कां० १। कं० ३॥

मैं तुझे मित्र व हितकर्ताकी दृष्टिसे देखता हूं।

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि॥ य० अ० १। मं० १०॥

हे मधुपर्क, मैं तुझे सृष्टिकर्ता परमात्माकी ऐश्वर्यमय सृष्टिमें अश्वियोंके बाहू और पूषाके हाथोंसे ग्रहण करता हूं। अर्थात् जैसे अश्वि-देव ओषधि आदिके दानसे और सूर्य अपनी किरणोंसे संसारका कल्याण करते रहते हैं ऐसे ही मैं भी प्राणियोंका उपकार करनेके लिये तुझे स्वीकार करता हूं।

इस मन्त्रको बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे और:—

* मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है उसका परिमाण १२ (बारह) तोले दही में ४ (चार) तोले सहत अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥१॥ यजु० अ०१३। मं०२७॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥ यजु०अ०१३ । मं०२८ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥ य० अ० १३। मं० २९ ॥

हे भू, भुवर् और स्वर् तीनों लोकोंके स्वामिन, हमारे लिये वायु मधुर अर्थात् अनुकूल होकर चले, नदियें मधुर पानीको बहावें, ओषधियां सब रोगोंकी निवृत्ति करें ॥१॥ रात्रि और प्रातःकाल हमारे लिये मधुर अर्थात् कल्याण-कारी हों। पृथ्वीकी धूलि हमारे लिये मधुर हो और वर्षा आदि द्वारा जगत् का पालक आकाश हमारे लिये मधुर हो ॥ २ ॥ वनस्पतियां और सूर्य हमारे लिये मधुर हों और गवादि पशु हमारे लिये मधुर अर्थात् कल्याण-कारी हों ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे—

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥ पार० कां० १ । कं० ३ । सू० ६ ॥

हे काले मुखवाली जाठराग्नि, तुझे नमस्कार हो। अन्नके समान तेरे भोज्य इस मधुपर्कमें जो त्रुटि है उसे मैं निकालता हूं ॥

इस मन्त्रको पढ़, दहिने हाथकी अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन वार वीलोवे और उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

वसु ब्रह्मचारी गायत्री छन्दके साथ झे खावें।

इस मन्त्र से पूर्व दिशा।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

रुद्र ब्रह्मचारी त्रिष्टुभ छन्दके साथ तुझे खावें।

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥ पार०कां० १ । कं० ३ ॥

आदित्य-संज्ञक ब्रह्मचारी जगती छन्दके साथ तुझे खावें ॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और—

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥ पार०कां०१ । कं०३॥

सभी विद्वान् अनुष्टुब छन्दके साथ तुझे खावें।

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे ॥

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥ आश्वला० गृ० अ० १ । कं० २४ । सू० १५ ॥

हे मधुपर्क, मैं तुझे सब प्राणियोंके भक्षणार्थ स्वीकार करता हूं अर्थात् मैं तेरा उपभोग अकेला नहीं करूंगा ।

इस मन्त्रस्थ वाक्यको बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन वार फेंकना । तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रक्खे, रख के—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥ पार० कां० १ । कं० ३ ॥

जो शहदका मिठास और खाने योग्य अन्नका उत्कृष्ट रूप है उस मिठास द्वारा और अन्नके खाने योग्य उत्कृष्ट रूप द्वारा मैं परम मधुर स्वभाववाला और पुष्टिके लिये अन्न खाने वाला बनूं ॥

इस मन्त्रको एक २ वार बोल के एक २ भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे, जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवे । तत्पश्चात्—

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ आश्वला० गृ० अ० १ । कं० २४ । सू० २१ ॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ आश्वला० गृ० अ० १ । कं० २४ । सू० २२ ॥

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे । तत्पश्चात् वर पृष्ठ २० में लि० प्र० चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे । पश्चात् कन्या—

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥

यह गाय है, लीजिये गाय लीजिये ।

इस वाक्य से वर की विनति करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य, जो कि वर के योग्य हो, अर्पण करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ पार० कां० १ । कं ३ ॥

लाओ लेता हूं ।

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान (१) से घर में ले जाके शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाके वरके सामने पश्चिमाभिमुख वधूको बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठके—

(१) यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उससे दूसरे घर में वर को लेजावे ॥

ओं अमुक (१)गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नी(२)मलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

आप इस कुल गोत्रमें उत्पन्न हुई इस नामवाली इस सुन्दर कन्याको स्वीकार कीजिये।

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रखके उसके हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वह—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

लाओ लेता हूं।

ऐसा बोलके—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ पार०कां०१। कं० ४ ॥

हे कन्या, तू मेरे साथ बुढ़ापे तक रह। तू इस वस्त्रको पहन। तू मनुष्योंके बीचमें दोषोंको दूर करने वाली हो। तू सौ वर्ष तक कांतियुक्त रहकर जो। और पुत्रों तथा सम्पत्तिका सचय कर। हे आयुष्मति, तू इस वस्त्रको पहन॥

इस मन्त्रको बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे। तत्पश्चात्—

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ पार० गृ० कां० १। कं० ४ ॥

जिन स्त्रियोंने इस वस्त्रके सूतको काता है, बुना है, फैलाया है और ताना बाना किया है, वे स्त्रियां तेरे लिये बुढ़ापे-पर्यन्त ऐसे वस्त्र तैयार करती रहें। हे आयुष्मति, तू इस वस्त्रको पहन॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे, वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे।

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ पार० कां० २। कं० ६ ॥

मैं इस वस्त्रको शरीराच्छादन, यश और दीर्घायु के लिये पहनता हूं। मैं बुढ़ापे-पर्यन्त नीरोग रहूं। मैं सौ वर्ष तक जीकर अनेक संतानों और पुष्टिकारक धनका संग्रह करूँ।

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और:—

(१) अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उसका उच्चारण अर्थात् उसका नाम लेना॥

(२) "अमुकनाम्नीम्" इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन से बोलना॥

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ पार० कां० २ कं० ६ ॥

मुझे पृथिवी और आकाश यश दें और मुझे इन्द्र और बृहस्पति भी यश दें। मुझे यश और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो। मैं यशस्वी बनूं ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दुपट्टा धारण करे। इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान करके जबतक सम्हले तबतक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा कुण्ड के समीपस्थ पृष्ठ २०-२२ में लि० इन्धन वा कर्पूर वा घृत से कुण्ड के अग्नि को प्रदीप्त करे, और आहुति के लिये सुगन्ध डाला हुआ घी बटलोई में करके कुण्ड के अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे, और स्रुवादि होम के पात्र तथा शुद्ध जलपात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे, और वरपक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिणभागमें उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जबतक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाय तबतक उत्तराभिमुख बैठा रहे, और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्यसमाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे, और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई, अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र, अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल या जुवार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिलाकर शमीपत्रयुक्त धाणी की ४ (चार) अञ्जलि एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो उस को तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन अथवा यज्ञीय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे। तत्पश्चात् वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सन्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ॥ सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ* ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४७ ॥

* वर और कन्या बोलें कि हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशालामें बैठे हुए विद्वान् लोगो ! आप हम दोनोंको (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रममें एकत्र रहनेके लिये एक दूसरेका स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनोंके [हृदयानि] हृदय (आपः) जलके समान (सम्) शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे [मातरिश्वा] प्राणवायु हमको प्रिय है वैसे [सम्] हम दोनों एक दूसरेसे सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे (धाता) धारण करनेहारा परमात्मा सबमें (सम्) मिला हुआ सब

इस मन्त्र को बोलें। तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के:—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा। हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ(१) ॥ २ ॥ पार० कां० १। कं० ४। सूत्र १६ ॥

इस मन्त्र को बोल के उसको लेके घर के बाहर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें।

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे (२) ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मंत्र ४४ ॥

जगत्का पोषक परमात्मा हमारे लिये अत्यन्त कल्याणकारिणी स्त्रीको प्रेरित करे। वह पुत्रकामना से जङ्घादि प्रदेशोंको फैलावे और हम उसमें पुत्रकामनासे अपने जननेन्द्रियका व्यापार करें। उसी में हमारी बहुतसी इच्छायें निविष्ट हैं॥

जगत्को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करें। जैसे [समुदेष्ट्री] उपदेश करनेहारा श्रोताओंसे प्रीति करता है वैसे [नौ] हमारे दोनोंके आत्मा एक दूसरेके साथ दृढ़ प्रेम को [दधातु] धारण करे ॥

(१) [असौ] इस पदके स्थानमें कन्याका नाम उच्चारण करना। हे वरानने वा हे वरानन [यत्] जो तू [मनसा] अपनी इच्छा मुझको जैसे [पवमानः] पवित्र वायु [वा] जैसे [हिरण्यपर्णो वैकर्णः] तेजोमय जल आदिको किरणोंसे ग्रहण करनेवाला सूर्य [दूरम्] दूरस्थ पदार्थों और [दिशोनु] दिशाओंको प्राप्त होता वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छासे मुझको प्राप्त होती वा होता है उस [त्वा] तुझको [सः] वह परमेश्वर [मन्मनसाम्] मेरे मनके अनुकूल [करोतु] करे, और हे [वीर] जो आप मनसे मुझको [ऐषि] प्राप्त होते हो उस आपको जगदीश्वर मेरे मनके अनुकूल सदा रक्खे ॥

(२) हे वरानने (अपतिघ्नी) पतिसे विरोध न करनेहारी तू जिसके (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखोंको दूर करनेहारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखोंके दाता आदि नाम हैं उस परमात्माकी कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थसे हे (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मङ्गल करनेहारी (पशुभ्यः) सब पशुओंको सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म्म स्वभाव और विद्यासे सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषोंको उत्पन्न करनेहारी (देवृकामा) देवरकी कामना करती हुई अर्थात् नियोगकी भी इच्छा करनेहारी (स्योना) सुखयुक्त होके (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादिके लिये (शम्) सुख करनेहारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओंकी भी (शम्) सुख देनेहारी हो वैसे हो मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥

इन चार मन्त्रों को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधूः—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳬ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥ मं॰ ब्रा॰ १ । १ । ८ ॥

मेरे पतिका मार्ग ही मेरा मार्ग हो और मैं निर्विघ्न तथा कल्याण-पूर्वक पतिके गृहको प्राप्त होऊं ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी । तत्पश्चात् पृ॰ २० में लिखे—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक २ आचमन वैसे तीन आचमन वर, वधू और पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्धपात्र में करके दूर रखवा दे हाथ और मुख पोंछ के पृ॰ २१ में लिखे यज्ञकुण्ड में (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव॰) इस मन्त्र से अग्न्याधान पृ॰ २२ में लिखे॰ (ओं अयन्त इध्म॰) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और पृ॰ २२ में लिखे॰—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की तीन ओर और (ओं देवसवितः प्रसुव॰) इस मन्त्रसे कुण्ड की चारों ओर दक्षिण हाथ की अञ्जलि से शुद्ध जल सेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त हुए पश्चात् पृ॰ २३ में लि॰ वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) घी की देवें। तत्पश्चात् पृ॰ २३ में लिखे व्याहृति आहुति ४ (चार) घी की और पृ॰ २५-२६ में लि॰ अष्टाज्याहुति ८ (आठ) ये सब मिल के १६ (सोलह) आज्याहुति देके प्रधान होम का प्रारम्भ करें। प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके पृ॰ २४ में लि॰ (ओं भूर्भुवः स्वः अग्न आयूंषि॰) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक २ से एक २ मिल के ४ (चार) आज्याहुति क्रम से करें और—

ओं भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ऋ॰ मं॰ ५ । सू॰ ३ । मं॰ २ ॥

हे अमृत-तुल्य अन्नके धारण करने वाले परमात्मन्, तुम कन्याओंको भी नियममें रखनेवाले और जगत्के गुप्त-रूपमें रक्षक हो, यह बात सर्व-प्रसिद्ध है। तुम जिन पति-पत्नियोंके मन अनुकूल करते हो वे तुम्हारा मित्रके समान घी दूध आदि [के होम] द्वारा आदर करते हैं ॥

इस मन्त्रको बोलके ५ पांचवीं आज्याहुति देनी तत्पश्चात्—

ओं ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ १ ॥

अग्नि प्राकृतिक नियमोंको सहनेवाला और प्रकृतिके प्रत्येक पदार्थमें विद्यमान है, उसीने पृथिवी को धारण किया हुआ है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे। हम यह आहुति उसी के लिये देते हैं ॥ १ ॥

ओं ऋताषाडृतधामोऽग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यां स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः इदन्न मम ॥ २ ॥

ऊपर कहे, अग्निका कार्य साधन करने वाली प्रसन्नता-दायक ओषधियां हैं। उनके लिये यह आहुति है ॥ २ ॥

ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ ३ ॥

दिन और रात्रिकी सन्धिके कारण, संसारमें शांति फैलाने वाले सूर्यने पृथिवीको धारण किया हुआ है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः इदन्न मम ॥ ४ ॥

ऊपर कहे सूर्यका कार्य साधन करने वाली उसकी किरणें हैं, जिनका आयु-प्रद होनेका गुण प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ ५ ॥

सूर्यसे प्रकाश पाने वाला सुख-प्रद चन्द्रमा पृथिवी का धारण-कर्त्ता है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः इदन्न मम ॥ ६ ॥

उक्त-गुण-सम्पन्न चन्द्रमाका कार्य सिद्ध करने वाले प्रकाश-सम्पन्न नक्षत्र हैं, यह आहुति उनके लिये है ॥ ६ ॥

ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वा-

अन्न उपजानेवाले और सर्वत्र गमनशील वायु

हा वाट् ॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ ७ ॥

ने पृथिवीको धारण किया हुआ है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे ॥ ७ ॥

ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भ्यो अप्सरोभ्य ऊर्भ्यः इदन्न मम ॥ ८ ॥

उक्त-गुण-सम्पन्न वायुका कार्य साधन करनेवाले जल हैं, जिनका बल-प्रद होनेका गुण प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ ९ ॥

हवि आदि आहुतिके भोक्ता और ज्ञान-सम्पन्न यज्ञने पृथिवीको धारण किया है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे ॥ ९ ॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः इदन्न मम ॥ १० ॥

उक्त-गुण-सम्पन्न यज्ञका कार्य सिद्ध करनेवाली दक्षिणायें [आहुतियां अथवा यज्ञकालिक दान] हैं, जो कि स्तुति-पूर्वक दी जाती हैं ॥ १० ॥

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं प्रजापतये, विश्वकर्मणे, मनसे, गन्धर्वाय इदन्न मम ॥ ११ ॥

प्रजाके पति सब कार्मोके प्रेरक मनने पृथिवी को धारण किया है। वह हमारे लिये ब्राह्म और क्षात्र धर्मकी रक्षा करे ॥ ११ ॥

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः इदन्न मम ॥ १२ ॥ पार० कां० १ । कं० ५ ॥

उक्त-गुण-सम्पन्न मनका कार्य साधन करनेवाले ऋक् और सामके मंत्र हैं, जिनका यज्ञोंमें उपयोग किया जाता है ॥ १२ ॥

इन बारह (१२) मन्त्रों से बारह (राष्ट्रभृत) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् जयाहोम करना ॥

ओं चित्तं च स्वाहा ॥ इदं चित्ताय इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा ॥

इदं चित्यै इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं आकूतं च स्वाहा ॥ इदमाकूताय इदन्न मम ॥३॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा ॥ इदमाकूत्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं विज्ञातञ्च स्वाहा ॥ इदं विज्ञाताय इदन्न मम ॥५॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा ॥ इदं विज्ञात्यै इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मनश्च स्वाहा ॥ इदं मनसे इदन्न मम ॥७॥ ओं शक्करीश्च स्वाहा ॥ इदं शक्करीभ्यः इदन्न मम॥८॥ ओं दर्शश्च स्वाहा ॥ इदं दर्शाय इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा ॥ इदं पौर्णमासाय इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं बृहच्च स्वाहा ॥ इदं बृहते इदन्न मम ॥११ ॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा ॥ इदं रथन्तराय इदन्न मम ॥१२॥

चित्त, चित्तकी शक्ति, कर्मेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियोंकी शक्ति, विज्ञान और विज्ञानकी शक्ति, मन तथा मनकी शक्तियो, अमावास्या और पूर्णमासीको होनेवाले यज्ञ, बृहत् और रथन्तर साम, इन सबके लिये ये आहुतियां हैं। अर्थात् ये सब दम्पतिके लिये अनुकूल हों ॥ १—१२ ॥

ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु । तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय इदन्न मम ॥ १३ ॥ पार० कां० १ । कं० ५ ॥

प्रजापति (परमात्मा) ने अभीष्ट कामोंकी वर्षा करनेवाले इन्द्र (जीवात्मा) के लिये जया नामक मंत्रोंको दिया, जिनकी साधना द्वारा वह शत्रुओंको सेनाओंको वीरता-पूर्वक जीतनेमें समर्थ हुआ। और इसी कारण उसे सब मनुष्योंने नमस्कार किया, क्योंकि वह उग्र और हवि लेनेमें समर्थ था ॥ १३ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके जयाहोम की १३ (तेरह) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् अभ्यातन होम करना, इसके मन्त्र ये हैं:—

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये इदन्न मम ॥ १ ॥

अग्नि पञ्च महाभूतोंमें मुख्य है, वह इस ब्राह्मण समूहमें, इस क्षत्रिय-समूहमें, इस प्रार्थनामें, इस सम्मुख कन्याके विषयमें, इस यज्ञ-कर्ममें तथा विद्वानोंके इस आहवानमें मेरी रक्षा करे ॥ १ ॥

ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये इदन्न मम ॥ २ ॥

इन्द्र ज्येष्ठोंमें (महा-शक्तियों) मुख्य है, वह इस ब्राह्मण-समूहमें, इस क्षत्रिय-समूहमें, इस प्रार्थनामें, इस सम्मुखस्थ कन्याके विषयमें, इस यज्ञ-कर्ममें और विद्वानोंके इस सङ्गममें मेरी रक्षा करे ॥ २ ॥

ओं यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये इदन्न मम ॥ ३ ॥

यम पृथिवीका स्वामी है, वह इस ब्राह्मण-समूहमें, इस क्षत्रिय-समूहमें, इस प्रार्थनामें, इस सम्मुखस्थ कन्याके विषयमें इस यज्ञ-कर्ममें और विद्वानोंके इस समागममें मेरी रक्षा करे ॥ ३ ॥

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये इदन्न मम ॥ ४ ॥

वायु आकाशका स्वामी है, वह मेरी ऊपर गिनायी परिस्थितियोंमें रक्षा करे ॥ ४ ॥

ओं सूर्यो दिवोधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये इदन्न मम ॥ ५ ॥

सूर्य द्युलोकका स्वामी है, इत्यादि पूर्व मंत्रोंके समान जानो ॥ ५ ॥

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये इदन्न मम ॥ ६ ॥

चन्द्रमा नक्षत्रोंका स्वामी है० ॥ ६ ॥

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामा-

शिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये इदन्न मम ॥ ७ ॥

बृहस्पति सकल ब्रह्माण्डका स्वामी है ॥ ७ ॥

ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये इदन्न मम ॥ ८ ॥

मित्र सत्योंका स्वामी है० ॥ ८ ॥

ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये इदन्न मम ॥ ९ ॥

वरुण जलोंका स्वामी है० ॥ ९ ॥

ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये इदन्न मम ॥ १० ॥

समुद्र बहने वाली नदियों आदिका स्वामी है ॥ १० ॥

ओं अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये इदन्न मम ॥ ११ ॥

अन्न साम्राज्योंका स्वामी है० ॥ ११ ॥

ओं सोम ओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये इदन्न मम ॥ १२ ॥

सोम-रस औषधियोंका स्वामी है ॥ १२ ॥

ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये इदन्न मम ॥ १३ ॥

सविता (उत्पादक परमात्मा) सब उत्पत्तियों का स्वामी है० ॥ १३ ॥

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं रुद्राय पशूनामधिपतये इदन्न मम ॥ १४ ॥

रुद्र पशुओंका स्वामी है० ॥ १४ ॥

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये इदन्न मम ॥ १५ ॥

त्वष्टा रूपोंका स्वामी है० ॥ १५ ॥

ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये इदन्न मम ॥ १६ ॥

विष्णु पर्वतोंका स्वामी है० ॥ १६ ॥

ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्य इदन्न मम ॥ १७ ॥

मरुत्-देव (संचालक नेता) समूहोंके स्वामी हैं वे मेरी ऊपर गिनायी परिस्थितियोंमें रक्षा करें ॥१७॥

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्

त्त्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च इदन्न मम ॥ १८ ॥ पार० कां० १ । कं० ५ ॥

पिता चाचा आदि, दादा नाना आदि ऊंचे नीचे, दूर तथा अति दूरके सम्बन्धी मेरी उक्त परिस्थितियोंमें रक्षा करें ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ (अठारह) आज्याहुति दिये पीछे पुनः—

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयँ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघन्न रोदात् स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १।१।१० ॥

भौतिक देवों (शक्तियों) में मुख्य अग्नि यहां उपस्थित होकर इस स्त्रीकी सन्तानको मृत्यु-बन्धन से छुड़ावे और यह प्रजा-रक्षक राजा भी (स्वास्थ्य-रक्षाके योग्य प्रबन्ध द्वारा) उस कृत्यका समर्थन करे, जिससे कि इस स्त्री को पुत्र-जनित दुःखोंके कारण रोना न पड़े ॥

ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियँ स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । १ ।११ ॥

गार्हपत्य अग्नि इस स्त्रीकी रक्षा करे और इस की सततिको चिरजीवी बनावे । यह स्त्री वंध्या न होकर जीती हुई संततिकी माता बने और पुत्रोत्पत्तिके आनन्दका अनुभव करे ॥ २ ॥

ओं स्वस्ति नोऽग्ने दिवा (१)पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि(२) दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रँ स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ३ ॥

हे याजकोंके रक्षक अग्नि, द्यु लोक और पृथिवी-लोकमें हमारे जो सब काम अन्यथा हो गये हों उनको तुम सुधार कर हमारा कल्याण करो । और इन दोनों लोकोंमें जो चित्र विचित्र सम्पत्ति हो वह हमको प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

ओं सुगन्तु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्ध्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतं म(३) आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय इदन्न मम ॥ ४ ॥

हे प्रकाशमान परमात्मन्, हमें सुगम मार्ग दिखलाते हुए तुम हमारे पास आओ और हमें बुढ़ापेसे रहित आयु दो । मृत्यु दूर होकर हमें अमरता प्राप्त हो और हमें मृत्युका भय न रहे ॥४॥

(१) पारस्कर में "दिव आपृथिव्या" ऐसा पाठ है ॥ (२) पारस्कर में "महि" ऐसा पाठ है ॥ (३) पारस्कर में "नः" पाठ भी है ॥

ओं परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे इदन्न मम ॥ ५ ॥ पार० कां० १ । कं० ५ ॥

हे मृत्यो, इन मार्गोंमें जो कोई विद्वानोंसे उपदिष्ट मार्गके प्रतिकूल धर्म और तुम । इस लोक से उठाकर (दूसरे लोकमें ले जाओ । जानते सुनते हुए तुमसे मैं प्रार्थना करता हूं कि तुम हमारी सन्तानों और वीरोंको मत मारो ॥ ५ ॥

ओं द्यौस्ते पृष्ठँ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परिधानाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा ॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्य इदन्न मम ॥ ६ ॥ मं०ब्रा०१।१।१२॥

हे स्त्री, तेरी पीठको द्युलोक (स्थित सूर्य) रक्षा करें और तेरे ऊरुओं (जांघोंको) वायु आदि रोगोंसे सदैव रक्षा करें। बाल्यावस्थामें वस्त्र पहिननेसे पहिले तक तेरे दूध पीते बच्चोंको उत्पादक पिता रक्षा करे और पीछे उनको आचार्य तथा अन्य विद्वान् गुरुजन रक्षा करें ॥ ६ ॥

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद् रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वँ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमानां स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥७॥ मं०ब्रा०१।१।१३॥

तेरे घरमें रातको रोना धोना आदि दुःखकारी शब्द न हों, जो स्त्रियां इस प्रकार रो धोकर (शान्ति भङ्ग करनेवाली हों) वे तुझसे दूर चली जायं । तू स्वयं भी रो पीटकर घरमें किसीको कष्ट मत पहुंचा, तथा जीवित पति-सहित सुखी संततिका मुख देखती हुई घरमें विराज ॥ ७ ॥

ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णःस्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशँ स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ८ ॥ मं० ब्रा० १ । १ । १४ ॥

मैं तेरे वन्ध्यात्व, पुत्र सम्बन्धी दुःख अथवा और भी पापको सिरमें धारण की हुई मालाके समान उतारकर अलग कर देता हूं और ये तेरे दोष शत्रुओं के लिये पाश-स्वरूप हो जायं ॥ ८ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति करके आठ आज्याहुति दीजिये तत्पश्चात् २३ पृष्ठ में लि० प्र०—

ओं भूरग्नये स्वाहा* ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ (चार) आज्याहुति दीजिये ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दहिना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उठाना और अपने दक्षिण हाथ से वधूके उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण करके वर—

* गोभिल गृह्यसूत्र प्रपा० २ । खं० १ । सू० २५ । २६ ॥

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः(१) ॥१॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३६॥

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव (२)॥ २॥ अथर्व० कां० १४। सू० १। अनु०। मं० ५२॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् (३)॥ ३॥ अथर्व०। कां० १४। अनु० १। सू० १। मं० ५३॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्। तेनेमां नारीं सविता

---

(१) हे वरानने! जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्यकी बढ़तीके लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुखपूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पतिपत्नीभाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्त्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुवे विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम कर्म के अनुष्ठानके लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आपके हस्ते और आप मेरे साथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे॥

(२) हे प्रिये! (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं [ते] तेरे (हस्तम्) हाथको (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे [हस्तम्] हाथ को [अग्रभीत्] ग्रहण कर चुका हूं [त्वम्] तू [धर्मणा] धर्म से मेरी पत्नी—भार्या [असि] है और [अहम्] मैं धर्म से [तव] तेरा [गृहपतिः] गृहपति हूं अपने दोनों मिल के घर के कामों को सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उसको कभी न करें जिससे घर के सब काम सिद्ध उत्तम सन्तान ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे॥

(३) हे अनघे! [बृहस्पतिः] सब जगत्को पालन करनेहारे परमात्माने जिस [त्वा] तुझको [मह्यम्] मुझे [अदात्] दिया है [इयम्] यही तू जगत् भर में मेरी [पोष्या] पोषण करने योग्य पत्नी [अस्तु] हो, हे [प्रजावति] तू [मया, पत्या] मुझ पति के साथ [शतम्] सौ [शरदः] शरदृऋतु अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त [शं जीव] सुखपूर्वक जीवन धारण कर। वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे। हे भद्रवीर! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आपके बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करनेहारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी, जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये॥

भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया(१) ॥४॥ अथ०। कां०१४ । अनु०१। सू०१। मं०५४॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु(२) ॥ ५ ॥ अथर्व० । कां० १४ । अनु० । १ सू० १ । मं० ५५ ॥

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् (३) ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० १४ । अनु० १ । सू० १ । मं० ५६ ॥

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वर, वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के उठावे और उसको साथ लेके, जो (कलश) कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था उसको वही पुरुष, जो कलश के पास बैठा था, वर वधू के साथ २ (उसी कलश को) ले चले, यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करके:—

(१) हे शुभानने ! जैसे [बृहस्पतेः] इस परमात्माको सृष्टि में और उसकी तथा [कवीनाम्] आप्त विद्वानों की [प्रशिषा] शिक्षा से दम्पति होते हैं [त्वष्टा] जैसे बिजुली सबको व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये [वासः] सुन्दर वस्त्र [शुभे] और आभूषण तथा [कम्] मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे [सवितः] सकल जगत् को उत्पत्ति करनेहारा परमात्मा [च] और [भगः] पूर्ण ऐश्वर्य युक्त [प्रजया] उत्तम प्रजा से [इमाम्] इस तुझ [नारीम्] मुझ नर को स्त्री को [परिधत्ताम्] आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं [तेन] इस सब से [सूर्यमिव] सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा हे प्रिय ! आपको मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण करके [प्रजया] ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी ॥

(२) हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे [इन्द्राग्नी] बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि [द्यावापृथिवी] सूर्य और भूमि [मातरिश्वा] अन्तरिक्षस्थ वायु [मित्रावरुणा] प्राण और उदान तथा [भगः] ऐश्वर्य [अश्विना] सद्वैद्य और सत्योपदेशक [उभा] दोनों [बृहस्पतिः] श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजाका पालन करनेहारा राजा [मरुतः] सभ्य मनुष्य [ब्रह्म] सब से बड़ा परमात्मा और [सोमः] चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधिगण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं वैसे [इमां नारीम्] इस मेरी स्त्री को [प्रजया] प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी [वर्धयन्तु] बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजासे बढ़ाया करूंगी जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥

(३) हे कल्याणक्रोडे जैसे [मनसा] मनसे [कुलायम् कुल की वृद्धि को [पश्यन्] देखता हुआ [अहम्] मैं [अस्याः] इस तेरे [रूपम्] रूपको [विष्यामि] प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हू

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतम् * ॥७॥ पार० कां० १। कं० ६॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके, पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़ के दोनों खड़े रहें, और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके बैठे वैसे तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी उसको बायें हाथ में ले के दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

वैसे यह तू मेरी वधू [मयि] मुझ में प्रेम से व्याप्त होके अनुकूल व्यवहार को [वेदत्] प्राप्त होवे जैसे मैं [मनसा] मन से भी इस तुझ वधू के साथ [स्तेयम्] चोरी को [उदमुच्ये] छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से [नाद्मि] भोग नहीं करता हूं [स्वयम्] आप [श्रन्थानः] पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी [वरुणस्य] उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता रहूं वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्त्ता करूंगी॥

* हे वधू जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करनेवाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करनेहारी (असि) है जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझको (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझ को भी ग्रहण करती है (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू! तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करनेहारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को [दधावहै] धारण करें [प्रजाम्] उत्तम प्रजा को [प्रजनयावहै] उत्पन्न करें [बहून्] बहुत [पुत्रान्] पुत्रों को [विन्दावहै] प्राप्त होवें [ते] वे पुत्र [जरदष्टयः] जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त [सन्तु] रहें [संप्रियौ] अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न [रोचिष्णू] एक दूसरे में रुचियुक्त [सुमनस्यमानौ] अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद्ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरेको प्रेम की दृष्टिसे (पश्येम) देखते रहें (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दसे (जीवेम) जीते रहें और [शतं शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनोंको [शृणुयाम] सुनते रहें॥

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वँ स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः॥ १॥ पार०कां० १। कं० ७॥

हे स्त्री, तू इस पत्थरपर चढ़ जा और इस पत्थर के समान दृढ़ बन। जो कोई तेरा विरोध करें अथवा तुझ पर आक्रमण करें उनको तू उनका सामना कर के जीत ले॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रहके अपनी हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रक्खे तत्पश्चात् वधू की मां वा भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूपड़ा पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जलि है उस में प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जलि से दो वार ले के वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जलिमें धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलिस्थ धाणी पर थोड़ासा घी सिंचन करे पश्चात् वधू वरकी हस्ताञ्जलि सहित अपनी हस्ताञ्जलिको आगेसे नमाके—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥ इदमर्यम्णे अग्नये इदन्न मम॥१॥

कन्या कहती है कि जिस न्यायकारी अग्निदेव (तेजस्वी परमात्मा) की कन्यायें उपासना करती हैं वही न्यायकारी पिता हमें इस पितृ-कुलसे अलग कर दे, परन्तु पतिसे अलग न करे॥ १॥

ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥२॥

खीलोंकी आहुति देती हुई स्त्री कहती है कि मेरा पति चिर-जीवी हो और मेरे सम्बन्धी सब फलें फूलें॥ २॥

ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं * च संवदनं * तदग्निरनुमन्यतामियँ स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥ ३॥ पार० कां० १। कं० ६॥

मैं तेरी [पतिकी] समृद्धिके उद्देश्यसे इन खीलोंकी अग्निमें आहुति देती हूं। यह कृत्य मुझे और तुझे परस्पर मिलानेवाला हो और हम दोनोंके इस मेलके लिये अग्नि भी अनुमति दे॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र से एक २ वार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन वार प्रज्वलित इन्धन पर देके वर—

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजा-

हे सौभाग्यवती अन्न-शालिनी प्रकृति-देवी, तू इस विवाह-कर्मकी रक्षा कर। तुझको ही विद्वान्

* पारस्करमें तथा सं० १९३२ की संस्कारविधिमें "तुभ्य" और "संवननम्" पाठ है।

यामस्याग्रतः। यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १॥ पार० कां० १। कं० ७॥

लोग इस सकल प्राणि-मात्रकी मुख्य जननी बतलाते हैं। तुझसे ही आदिमें ये पंच महाभूत और यह जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं तेरे इसी प्रकृतिके महत्त्वके अब गान किया करूंगा, जिसे सुनकर स्त्रियें भी ज्ञान-वती बनकर बड़ा यश प्राप्त करती हैं॥

इस मन्त्र को बोल के अपने जमणे हाथ की हस्ताञ्जलि से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के वर—

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३८॥

हे अग्ने, [परमात्मन्], [गृहस्थ-धर्मानुसार] तुम्हारी ही सेवाके लिये इस पत्नीको स्वीकार किया है। यह मुझ पतिके साथ सूर्य-समान शोभाको धारण करे और हे अग्ने, तुम फिर भी मुझ पतिके लिये सन्तान-सहित इस कन्याका दान करो॥ १॥

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमव दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥ २॥ मं० ब्रा० १। २। ५ (१)।

कन्या पिताके घरसे पतिके घरको जाती हुई यह दीक्षा [गृहस्थ-धर्म-दीक्षा] लेती है। पति कहता है कि हे कन्या, जैसे पानीकी धारायें तृणादिको बहा देती हैं ऐसे ही मैं तेरी सहायतासे शत्रुओंको पराक्रांत करूं॥

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों पड़े रहें, तत्पश्चात् पर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दो वार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के ४ (चार) परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में (थोड़ा ठहरे रह के उक्त रीति से तीन वार किया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में) पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें। पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे पश्चात्—

ओं भगाय स्वाहा (२)। इदं भगाय इदन्न मम॥

यह आहुति ऐश्वर्य के लिये है॥

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे। पश्चात् वर, वधू को दक्षिण भाग में रखके कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के—

ओं प्रजापतये स्वाहा (३)॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम॥

यह आहुति प्रजा-पति [परमात्मा] के लिये है॥

(१) तथा गोभिल गृ० प्रपा० २। खं० २। सू० ६॥ (२) पारस्करके अनुसार यह आहुति वधू देती है। कां० १। कं० ७॥ (३) पारस्कर कां० १। कं० ७॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के बंधे हुए केशों को वर—

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवाः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५। मं० २४ ॥

ये दोनों मंत्र कन्याके प्रति कहे गये हैं—कि हे कन्ये, सुख देनेवाले माता पिताने तुझे जिस प्रनपाशसे बांधा हुआ था, मैं उससे तुझे छुड़ाकर, पतिके साथ प्रकृतिके सत्य नियमानुकूल निर्विघ्न उत्तम धर्म कार्य करनेके लिये नियुक्त करता हूं ॥ १ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतस्सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥ २ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० २५ ॥

मैं तुझे इस पितृ-गृहसे छुड़ाता हूं, पति-गृहसे नहीं। पति-गृहसे तो तेरा सम्बन्ध और भी दृढ़ करता हूं। हे वीर्यका सिंचन करनेवाले पति, तू ऐसा काम कर जिससे यह कन्या सुपुत्रवती और सौभाग्यवती हो ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के प्रथम वधू के केशों को छोड़ना, तत्पश्चात् सभामण्डप में आके सप्तपदी विधि का आरम्भ करे। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी इसे जोड़ा कहते हैं। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठके वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में आवें, तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वर—

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम।

ऐसा बोल के वधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देवे और—

ओं इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ १ ॥

पति कहता है कि तू पहिला पग अन्नके लिये रख [अर्थात् अन्न-प्राप्तिके लिये उद्योग करनेका उपलक्षण-स्वरूप यह प्रथम पद है] और तू मेरे व्रतके अनुकूल व्रतपर चलनेवाली हो। जगदुत्पादक परमात्मा हम दोनोंको बहुतसे बलवान् दीर्घायु पुत्र देवे ॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग *चले और चलावे।

* इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशानकोण की ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बांये पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के यो-

ओं ऊर्ज्जे द्विपदी०(१) ॥ — तू दूसरा पग बल-प्राप्तिके लिये रख० ॥ २ ॥

इस मन्त्र से दूसरा ॥

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ॥ — तू तीसरा पग धनकी वृद्धि व पुष्टिके लिये रख० ॥

इस मन्त्र से तीसरा ॥

ओं मयोभवाय(२) चतुष्पदी भव० ॥ — तू चौथा पग सुखकी वृद्धिके लिये रख० ॥

इस मन्त्र से चौथा ॥

ओं प्रजाभ्यः ❋ पञ्चपदी भव० ॥ — तू पांचवा पग सन्तानोत्पत्तिके लिये रख० ॥

इस मन्त्र से पांचवां ॥

ओं ऋतुभ्यः(२) षट्पदी भव० ॥ — तू छठा पग ऋतुओंकी अनुकूलताके लिये रख० ॥

इस मन्त्र से छठा और—

ओं सखे सप्तपदी(२) भव० ॥ पार० कां० १ । कं० ८ ॥ — तू सातवां पग मैत्रीकी वृद्धिके लिये रख० ॥

इस मन्त्र से सातवां पगला चलना । इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बन्धे हुए शुभासन पर बैठें । तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेके यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्व-स्थापित जलकुम्भ को लेके वधू (३) वर के मस्तक पर छिड़कावे और वर—

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥ ऋ० मण्ड० १० । सू० ९ । मं० १ ॥ — हे जलो, तुम सुखकारक हो, तुम हमको बल और प्रभूत रमणीय दृष्टि-शक्ति दो ॥ १ ॥

द्वारा पीछे बायां पग पकड़े इसी को एक पगला गिनना, इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करनी अर्थात् एक २ मन्त्र से एक २ पग ईशान दिशा की ओर धरना ॥

(१) जो 'भव'के आगे मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों से इस 'भव' पदके आगे पूरा बोलके पग धरने की क्रिया करनी ॥

(२) मेडिकलहाल यन्त्रालय, सं० १९५२ में मुद्रित पारस्कर गृह्यसूत्र के पृ० ११३ में "मयोभवाय" के स्थान में "मायोभवाय" "प्रजाभ्यः के स्थान में "पशुभ्यः" तथा "सप्तपदी" के स्थान में "सप्तपदा" पाठ है ॥

(३) पारस्कर गृह्यसूत्र में केवल वधू के मस्तक पर जल छिड़कने का विधान है। कां० १ । कं० ८ । वधू वर के स्थान में वर वधू ऐसा पाठ कर देने से पारस्करकी अनुकूलता हो जाती है ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ऋ० मण्ड० १०। सू० ९। मं०२ ॥

तुम्हारा जो कल्याण-रस है उसका हमें प्राप्त करो, जैसे कि पुत्र-वत्सल मातायें बच्चोंको दूध पिलाती हैं ॥ २ ॥

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मण्ड० १०। सू० ९। मं० ३ ॥

तुम जिस रससे ओषधियों आदियोंकी वृद्धि करते हो वह पुष्टि-कारक रस हमें भी प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

ओं आपः शिवाः शिवतमाः शांताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् (१)॥४॥ पा० कां० १। कं० ८ ॥

जल कल्याण-कारी, अत्यन्त सुख देने वाले, शांत और अत्यन्त-शांति प्रद हैं। वे इस वधूको आरोग्य प्रदान करें ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥ य० अ० ३६। मं २४ ॥

वह परमात्मा, सूर्य समान सब जगतको देखने वाला विद्वानोंका हितकारी और हमेशासे शुद्ध-स्वभाव है। उसकी कृपासे हम सौ वर्ष तक देखें, सुनें, बोलें और स्वतन्त्र रहें और सौ वर्षके बाद भी हमारी इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण न हो ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें। तत्पश्चात् वर, वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उससे वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् (२) ॥ पार० कां० १। कं० ८ ॥

इस मन्त्रको बोले, और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले (३) ॥

---

१) पारस्कर कां० १। कं० ८ ॥

(२) हे वधू ! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे। (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमना) एकाग्रचित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे ॥

(३) वैसे ही हे प्रियवीर स्वामिन्! आपका हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में

तत्पश्चात् वर, वधू के मस्तक पर हाथ धरके:—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा यथास्तं विपरेतन ॥
ऋ० मण्ड० १० । सू० ८५ । मं० ३३ ॥

हे दर्शक अतिथियों, यह वधू मङ्गल-कारिणी है, तुम सब इसका दर्शन करो और इसे सौभाग्यादिका आशीर्वाद देकर अपने अपने घरको जाओ ॥

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥ यह सौभाग्यवती हो। घरमें कल्याण हो॥

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के पुनः पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे दोनों (ओं यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और पृष्ठ २३ में लिखे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक २ से एक २ आहुति करके ४ (चार) आज्याहुति देंव और इस प्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम अर्थात् विश्राम करें। इस रीति से थोड़ासा विश्राम करके विवाह की उत्तरविधि करें। यह उत्तरविधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो वहां जाके करनी। तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञ-कुण्ड के पश्चिम भागमें पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और पृष्ठ २०-२१ में लि० अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें। यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हुआ और प्रथम अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करें। (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ आश्वला० गृ० अ० १ । कं० १० । सू० १३ ॥

इत्यादि ४ (चार) मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे—

धारण करती हूं। मेरे चित्तके अनुकूल आपका चित्त सदा रहे। आप एकाग्र होके मेरी वाणी का जो कुछ मैं आप से कहूं उसका सेवन सदा किया कीजिये। क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन किया है जैसे मुझको आप के आधीन किया है। अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनो वर्त्ता करें, जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ (चार) मन्त्रों से ४ (चार) व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ (आठ) आज्याहुति देवें। तत्पश्चात् प्रधान होम करें निम्नलिखित मन्त्रों से:—

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वावर्त्तेषु* च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै इदन्न मम ॥ १ ॥गोभिल० प्र० २। खं० ३। सू० ५ ॥

हे कन्ये, तेरे माथेकी अथवा भौंकी रेखाओंके जोड़ोंमें, आंखोंके पलकोंमें और नाभि आदि गढ़ों में जो दोष हैं उनके नाशके लिये मैं यह पूर्णाहुति देता हूं ॥ १ ॥

ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि० ॥ २ ॥

तेरे केशोंमें, दृष्टि अथवा रोनेमें जो अनौचित्य है, उसके नाशके लिये मैं यह पूर्णाहुति देता हूं ॥ २ ॥

ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि० ॥ ३ ॥

तेरे स्वभाव, बात चीत अथवा हंसी मज़ाकमें जो अनौचित्य है० ॥ ३

ओं आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि० ॥ ४ ॥ मं० ब्रा० १। ३। १ ॥

तेरे दांतोंके छिद्रोंमें, दांतोंमें अथवा हाथों पावों में जो अनौचित्य है० ॥ ४

ओं ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि० ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १।

तेरे ऊरू, योनि-प्रदेश, जांघों और जोड़ोंमें जो अनौचित्य है० ॥

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै इदन्न मम ॥ ६ ॥ मं० ब्रा० १। ३। ६ ॥

तेरे अन्य भी सब अङ्गोंमें जो कोई अनौचित्य हो, मैं उस सबके नाशके लिये घी की इस पूर्णाहुति द्वारा प्रार्थना करता हूं ॥ ६ ॥

ये छः मन्त्र हैं इन में से एक २ मन्त्र बोल छः आज्याहुति देनी। तत्पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ (चार) व्याहृति मन्त्रों से ४ (चार) आज्याहुति देके वधू वर वहां से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें। तत्पश्चात् वर—

* सं० १९४१ की संस्कारविधि में "पक्ष्मस्वारोकेषु" पाठ है ॥

ध्रुवं पश्य — ध्रुवको देख।

ऐसा बोलके वधू को ध्रुवका तारा दिखलावे (१) और वधू वरसे बोले कि मैं—

पश्यामि

ध्रुव के तारे को देखती हूं। तत्पश्चात् वधू—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य(२) असौ) गोभिलगृ० प्र० २। खं० ३। सू० ८॥

पति वधू से कहता है कि तू अरुन्धती है और वधू जवाब देती है कि मैं तेरे साथ अरुन्धती तारे के समान साहचर्य धर्मका निर्वाह करूँगी।

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य ॥ गोभिलगृ० प्र० २। खं० ३। सू० ९॥ — अरुन्धती तारेको देख॥

ऐसा वाक्य बोल के वर, वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि — देखती हूं॥

ऐसा कहके—

ओं अरुन्धत्यसि (३) रुद्धाहमस्मि (अमुष्य(४) असौ (५))

इस मन्त्र को बोल के (वर) वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा

---

(१) हे वधू वा वर जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरेके प्रियाचरणोंमें दृढ़ स्थिर रहें॥

(२) (अमुष्य) इस पदके स्थानमें षष्ठीविभक्त्यन्त पतिका नाम बोलना, जैसे—शिवशर्मा पतिका नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और "असौ" इस पदके स्थानमें वधू अपने नामको प्रथमाविभक्त्यन्त बोलके इस मन्त्रको पूरा बोले, जैसे "भूयासं शिवशर्मणस्ते सौभाग्यदाहम्" इस प्रकार दोनों पद जोड़ के बोले॥

(३) "अरुन्धत्यसि" इतना पाठ गोभिलमें नहीं॥

(४) (अमुष्य) इस पदके स्थानमें पतिका नाम षष्ठ्यन्त और (असौ) इसके स्थानमें वधू का प्रथमांत नाम जोड़कर बोले "हे स्वामिन्! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्माकी अर्द्धाङ्गी (पतिकुले) आपके कुलमें (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आपकी दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊँ॥"

(५) गोभिल गृ० प्र० २। खण्ड० ३। सू० १०॥

स्त्री पतिकुले यम् * ॥ मं० ग्रा० १ । ६ । ६ ॥

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि । मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् † ॥ पार० कां० १ । कं० ८ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोले । पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख हो के कुण्ड के समीप बैठें और पृ० २० में लिखे:—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ आचमन करके तीन २ आचमन दोनों करें। पश्चात् पृष्ठ १६ में लिखी हुई समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके पृष्ठ १८ में लिखे० घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें। पृष्ठ २१-२२ में लिखे प्रमाणे "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके ८ (आठ) आज्याहुति वर वधू देवें। तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर स्रुवा से

---

* हे वरानने! जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवि) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाहस्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी स्त्री (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रह।

† हे स्वामिन्! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ सङ्कल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आपको (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आपको (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त होके (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नि (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझ को अपनी मनसा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर। वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उलटे विरोध में न चलें।

घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा भात दोनों जने लेके—

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम ॥ ओम् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये इदन्न मम ॥ गोभिल०प्र० २ खं० ३ सू० १८ ॥

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक २ करके ४ (चार) स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी । तत्पश्चात् पृष्ठ २४ में लिखे (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति देनी । तत्पश्चात् पृष्ठ २३ में लि० प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २४-२५ में लिखे० अष्टाज्याहुति ८ (आठ) दोनों मिलके १२ (बारह) आज्याहुति देनी । तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के:—

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना । बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते (१) ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम । यदिदँ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव(२) ॥ २ ॥ ओं अन्नं प्राणस्य षड्विँशस्तेन बध्नामि त्वा असौ(३) ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १।३। ८-१० ॥

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ासा भक्षण करके जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे और जब वधू उसको खा चुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें

---

(१) हे वधू वर ! जैसे अन्नके साथ प्राण, प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (सत्यग्रन्थिना) सत्यता की गांठ से (बध्नामि) बांधती वा बांधता हूं ॥

(२) हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी ! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरणके तुल्य प्रिय (अस्तु) हो और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥

(३) (असौ) हे यशोदे ! जो (प्राणस्य) प्रणका पोषण करने हारा (षड्विंशः) २६ (छब्बीसवां) तत्त्व (अन्नम्) अन्न है (तेन) उससे (त्वा) तुझ को (बध्नामि) दृढ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥

और पृष्ठ २७-२८ में लि० प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें। तत्पश्चात् पृष्ठ ३-५ में लि० प्रमाणे ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण कर्म करके क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें। तत्पश्चात् पृष्ठ ५४ में लिखे प्रमाणे पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सम्मानार्थ उत्तम भोजन कराना। तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें। तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना करके तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रहकर शयन करें, और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ (रह) कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथाविधि गर्भाधान करें। तत्पश्चात् दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्षवाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सम्मान से अपने घरमें लावें और जो वधू अपने माता पिताके घरको छोड़ते समय आंखमें अश्रु भर लावे तो:—

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः। वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥ ऋ० मं० १० । सू० ४० । मं० १० ॥

जो पुरुष धर्म-कार्योंके लिये कष्ट उठाते हैं, यज्ञादि सत्कार्योंमें अपने सन्तानोंको भेजते हैं, अच्छे गृहस्थाश्रमका यथावत् पालन करते हैं और माता पिताकी सेवाके लिये योग्य संतानकी उत्पत्ति करते हैं, उन्हींको स्त्रियां सुख-कारिणी होती हैं ॥ १ ॥

इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय में वरः—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥१॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० २६ ॥

कन्याका पिता कहता है कि तेरा पोषक यह पति तेरा हाथ पकड़कर तुझे रथमें बैठावे और उसे वेगवान् घोड़े खींच कर लेजावें। तू पति-गृहमें जाकर ऐसा वर्तन कर कि नौकरों आदिको उचित आज्ञादि द्वारा वशमें रखकर घरका अच्छा प्रबन्ध करने वाली योग्य गृह-पत्नी बन सके ॥ १ ॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्। आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५ । मं० २० ॥

हे सुन्दरि कन्ये, अच्छी पलाश और सेमलकी लकड़ीसे युक्त, नाना वर्ण वाले सुवर्णके अलङ्कारों से सजे हुए और अच्छी तरह चलनेवाले पहियोंपर चढ़े हुए इस रथ पर तू चढ़ और अपने गमनको, पतिको सुख देनेके द्वारा सफल बना ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे। यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः॥

हे नावमें चढ़नेवाले मित्रो, नाना पत्थरों आदिसे दुर्गम यह नदी बह रही है। सावधान रहो और आवश्यकता पड़नेपर उतरकर तैरनेकी तैयारी रखो।

और नौकासे उतरते समय—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥ ऋ० मं० १०। सू० ५३। मं० ८॥

जो कोई हममेंसे अकल्याणकारी हैं उनको हम यहीं छोड़ दें और सब मिल कर अच्छे अन्नादिको प्राप्त करें॥ १॥

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरे। पुनः इसी प्रकार मार्ग-चार में मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे नीचे खांड़ावाली पृथिवी, बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो—

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती। सुगेभिर्दुर्गमतीतामपद्रान्त्वरातयः॥ ऋ० मं १०। सू० ८५। मं० ३२॥

इस पति-पत्नीके जोड़े पर आक्रमण करने वाले जो डाकू आदि हों वे रास्तेमें न मिलें। दुर्गम मार्गको अच्छे चलने वाले रथादि द्वारा लांघते हुए हमारे शत्रु भाग जायं॥ १॥

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठके जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रगट करके उसमें पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे ४ बार (व्याहृति) आज्याहुति देनी। पश्चात् पृष्ठ २७ २८ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना। पश्चात् जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे आ पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में लेजावे सभामण्डप द्वारे आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा यथास्तं विपरेतन॥१॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं ३३॥

इस मन्त्र को बोले और आये हुए लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु।

इस प्रकार आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वरः—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्री विदथमावदाथः ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० २७ ।

हे वधू, इस पतिके घरमें पुत्रादि सहित तेरी प्रिय बातोंकी वृद्धि हो। तू अपने गृहस्थ-धर्ममें हमेशा सावधान रह। इस पतिके साथ अपने शरीर का संसर्ग कर और तुम दोनों बुढापे-पर्यन्त यज्ञादि धर्म-कार्योंको करते रहो ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे। तत्पश्चात् वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें, उस समय वरः—

ओं इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा निषीदतु ॥ अथर्व० कां० २० । सू० १२७ ॥

तुम दोनोंके इस घरमें गायों घोड़ों और पुत्रादिकोंकी खूब वृद्धि हो। पत्नीका पोषक यह पति अनेक दान करता हुआ जीवित रहे ॥

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे। तत्पश्चात् पृ० २० में लि०—

ओं अमृतोपस्तरणमसि

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ करके तीन २ आचमन करें। तत्पश्चात् पृ० २०-२२ में लिखे प्रमाणे कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करें। जब उसी कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके पृ० २२ में लिखे प्रमाणे समिधाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) अष्टाज्याहुति ८ (आठ) सब मिलके १६ (सोलह) आज्याहुति वधू वर करके प्रधानहोम का प्रारम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें।

ओं इह धृतिः स्वाहा। इदमिह धृत्यै इदन्न मम ॥ ओं इह स्वधृतिस्स्वाहा। इदमिह स्वधृत्यै इदन्न मम ॥ ओं इह रंतिः स्वाहा। इदमिह रन्त्यै इदन्न मम ॥ ओं इह रमस्व स्वाहा। इदमिह रमाय इदन्न मम ॥ ओं मयि धृतिः स्वाहा। इदं मयि धृत्यै इदन्न मम ॥ ओं मयि स्वधृतिः

इस घरमें धैर्य, आत्मा संयम, रमण, स्त्री पुरुष की पारस्परिक क्रीड़ा आदि गुण सर्वदा वर्तमान रहें ॥

स्वाहा । इदं मयि स्वधृत्यै इदन्न मम ॥
ओं मयि रमः स्वाहा । इदं मयि रमाय
इदन्न मम ॥ ओं मयि रमस्वा स्वाहा ।
इदं मयि रमाय इदन्न मम ॥ मं० ब्रा०
१ । ६ । १ । ४ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ (आठ) आज्याहुति दे केः—

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे (१) स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा (२) ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि (३) स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सम्राज्ञी श्व-

---

(१) हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी (प्राजाम्) उत्तम प्रजा को शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उससे उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभगुणयुक्त (मङ्गलीः) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें उसमें से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥

(२) इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १३१ में लिखे प्रमाणे जानना ॥

(३) ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करनेहारे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त इस वधू के स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य भोगवाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री ! तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जाओगे इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना । तथा (पतिमेकादशं, कृधि) इस

शुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु(१) स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० । अ० ७ । सू० ८५ । मं० ४३—४६ ॥

इन ४ (चार) मन्त्रों से एक २ करके ४ (चार) आज्याहुति देके पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत होमाहुति १ (एक) व्याहृति आज्याहुति ४ (चार) और प्राजापत्याहुति १ (एक) ये सब मिल के ६ (छः) आज्याहुति देकर—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ (२) ऋ० मं० १० सू० ८५ । मं ४७ ।

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें । तत्पश्चात्—

अहं भो अभिवादयामि * ॥

इस वाक्य को बोल के वधू वर, वरकी माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करे । पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के पृष्ठ २७-२८ में लिखे प्रमाणे

पद का अर्थ नियोग में दूसरा होगा अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने को आज्ञा परमात्मा ने की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे करावे वैसे ही एक स्त्री के लिये एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही बार विवाह करने की आज्ञा है जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगतस्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे ॥

(१) हे वरानने ! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उसमें प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है उसमें प्रेमयुक्त होके उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरी) जा मेरी बहिन और तेरी ननन्द है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि भव) अधिकारयुक्त हो अर्थात् सब से अविरोधपूर्वक प्रीति से वर्त्ता कर ॥

(२) इस मन्त्र का अर्थ पृ० १३० में लिखित समझ लेना ॥

---

* इससे उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है । प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें ॥

वामदेव्यगान करके उसी समय पृष्ठ ३-५ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करनी। उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर, पिता, आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ आश्वला० गृ० अ० १। कं० ८। सू० १५ ॥

आप लोग स्वस्तिवाचन करें। तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उनके अभाव में यदि वधू वर विद्वान वेदवित् हों तो वे ही दोनों पृष्ठ ५-१० में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें। पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

इस वाक्य को बोलें। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता, पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें। तत्पश्चात् यदि किसी विशेष कारण से श्वशुरगृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके तो वधू वर क्षार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होकर पृष्ठ ३२—४५ में लिखे प्रमाणे विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भस्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह करने के लिये आकर उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे। पुनः अपने घर आके पति सासु श्वशुर ननन्द देवर देवरानी ज्येष्ठ जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें, सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्तें, और मधुरवाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें, तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्त्ते, तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे, तथा वर भी स्त्री की सेवा, प्रसन्नता में तत्पर रहे ॥

॥ इति विवाहसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ गृहाश्रमसंस्कारविधिं वक्ष्यामः



गृहाश्रम संस्कार उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुखप्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन मन धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी ॥

अत्र प्रमाणानि—सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥ ११ ॥ इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥ २ ॥ ऋ०मं० १० । सू० ८५ । मं० ९, ४२ ॥

अर्थ—[सोमः] सुकुमार शुभगुणयुक्त [वधूयुः] वधू की कामना करने हारा पति तथा वधू पति की कामना करनेहारी [अश्विना]-दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त [अभवत्] होवें और [उभा] दोनों] वरा श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाववाले [आस्ताम्] होवें ऐसी [यत्] जो [सूर्याम्] सूर्य की किरणवत् सौन्दर्य गुणयुक्त [पत्ये] पति के लिये [मनसा] मन से [शंसन्तीम्] गुण कीर्त्तन करनेवाली वधू है उस को पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को [सविता] सकल जगत् का उत्पादक परमात्मा [ददात्] देता है अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का, जो कि तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों, जोड़ा मिलता है ॥ १ ॥ हे स्त्री और पुरुष ! मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूं कि जो तुम्हारे लिये पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिस को तुम दोनों ने स्वीकार किया है [इहैव] इसी में [स्तम्] तत्पर रहो [मा, वियौष्टम्] इस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ [विश्वमायुर्व्यश्नुतम्] ऋतुगामी होके वीर्यका अधिक नाश न करके सम्पूर्ण आयु जो १०० [सौ] वर्षों से कम नहीं है उसको प्राप्त होओ पूर्वोक्त धर्म रीति से [पुत्रैः] पुत्रों और [नप्तृभिः] नातियोंके साथ [क्रीडन्तौ] क्रीडा करते हुए [स्वस्तकौ] उत्तम गृह वाले [मोदमानौ] आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो ॥ २ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः । स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ ३ ॥ स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः । स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ ४ ॥ या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि वर्चो न्व-

स्यै संदत्ताथाऽस्तं विपरेतन ॥५॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ । मंत्र २६ । २७ । २६॥

अर्थ—हे वरानने ! तू [सुमङ्गली] अच्छे मङ्गलाचरण करने तथा [प्रतरणी] दोष और शोकादि से पृथक् रहनेहारी [गृहाणाम्] गृहकार्यों में चतुर और तत्पर रहकर [सुशेवा] उत्तम सुखयुक्त होके [पत्ये] पति [श्वशुराय] श्वशुर और [श्वश्र्वे] सासु के लिये [शम्भूः] सुखकर्त्री और [स्योना] स्वयं प्रसन्न हुई [इमान्] इन [गृहान्] घरों में सुखपूर्वक [प्रविश] प्रवेश कर ॥ ३ ॥

हे वधू ! तू [श्वशुरेभ्यः] श्वशुरादि के लिये [स्योना] सुखदाता [पत्ये] पति के लिये [स्योना] सुखदाता और [गृहेभ्यः] गृहस्थ सम्बन्धियों के लिये [स्योना] सुखदायक [भव] हो और [अस्यै] इस [सर्वस्यै] सब [विशे] प्रजाके अर्थ [स्योना] सुखप्रद और [एषाम्] इनके [पुष्टाय] पोषणके अर्थ तत्पर [भव] हो ॥ ४ ॥

[याः] जो [दुर्हार्दः] दुष्ट हृदयवाली अर्थात् दुष्टात्मा [युवतयः] ज्वान स्त्रियां [च] और [याः] जो [इह] इस स्थानमें [जरतीः] बुड्ढी वृद्ध दुष्ट स्त्रियां हों वे [अपि] भी [अस्यै] इस वधूको [नु] शीघ्र [वर्चः] तेज [सं दत्त] देवें [अथ] इसके पश्चात् [अस्तम्] अपने २ घर को [विपरेतन] चली जावें और फिर इसके पास कभी न आवें ॥ ५ ॥

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै । इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ । मं० ३१ ।

हे वरानने ! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आरोह) चढ़ के शयन कर और (इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रहकर (अस्मै) इस [पत्ये] पति के लिये [प्रजां, जनय] प्रजा को उत्पन्न कर [सुबुधा] सुन्दर ज्ञानी [बुध्यमाना उत्तम शिक्षा को प्राप्त [इन्द्राणीव] सूर्य की कांति के समान तू [उषसः] उषःकाल के [अग्रा] पहिली [ज्योतिः] ज्योति के तुल्य [प्रतिजागरासि] प्रत्यक्ष सब कामों में जागती रह ॥ ६ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः । सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह ॥ ७ ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ मन्त्र ३२ ॥

अर्थः—हे सौभाग्यप्रदे ! [नारि] तू जैसे [इह] इस गृहाश्रम में [अग्रे] प्रथम [देवाः] विद्वान् लोग [पत्नीः] उत्तम स्त्रियों को [न्यपद्यन्त] प्राप्त होते हैं और [तनूभिः] शरीरों से [तन्वः] शरीरों को [समस्पृशन्त] स्पर्श करते हैं वैसे [विश्वरूपा] विविध सुन्दर रूप को धारण करने हारी [महित्वा] सत्कार को प्राप्त होके [सूर्येव]

सूर्य की कांति के समान [पत्या] अपने स्वामी के साथ मिलके [प्रजावती] प्रजा को प्राप्त होने हारी [संभव] अच्छे प्रकार हो ॥ ७ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः । मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ८ ॥ अथ० कां० १४ । सू० २ । म० ३७ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! तुम [पितरौ] बालकों के जनक [ऋत्विये] ऋतु समय में सन्तानों को (ससृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो [माता] जननी [च] और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्य को मिलाकर गर्भाधान करने हारे [भवथः] हूजिये । हे पुरुष ! [एनाम्] इस (योषाम्) अपनी स्त्रीको [मर्य इव] प्राप्त होनेवाले पतिके समान (अधि, रोहय) सन्तानों से बढ़ा और दोनों [इह] इस गृहाश्रम में मिल के [प्रजाम्] प्रजा को [कृण्वाथाम्] उत्पन्न करो [पुष्यतम्] पालन पोषण करो और पुरुषार्थ से [रयिम्] धन को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपम् ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ । मं० ३८ ॥

हे [पूषन्] वृद्धिकारक पुरुष ! [यस्याम्] जिसमें [मनुष्याः] मनुष्य लोग [बीजम्] वीर्य को [वपन्ति] बोते हैं या जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) ऊरूको सुन्दरता से (विश्रयाति) विशेष कर आश्रय करती है (यस्याम्] जिसमें [उशन्तः] सन्तानों की कामना करते हुए हम (शेपम्) उपस्थेन्द्रिय का [प्रहराम] प्रहरण करते हैं [ताम्] उस [शिवतमाम्] अतिशय कल्याण करनेहारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये [एरयस्व] प्रेम से प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ । सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ । मन्त्र ४३ ॥

अर्थ—हे स्त्री पुरुष ! जैसे सूर्य [विभातीः] सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभातवेला को प्राप्त होता है वैसे (स्योनात्) सुख से (योनेः) घर के मध्य में (अधि, बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जाननेहारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलनेहारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्रवाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवों को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारोंके पार होओ ॥ १० ॥

इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ मन्त्र ६४ ॥

हे [इन्द्र] परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् राजन् ! आप (इह) इस संसार में (इमौ) इन स्त्री पुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था दीजिये जिससे कोई स्त्री पुरुष पृ० ६७-६६ में लि० प्रमाण से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सकें, वैसे (संनुद) सब को प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिये जिससे ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा को पाके (दम्पती) जाया और पति (चक्रवाकेव) चकवा चकवीके समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध हों और गर्भाधान संस्कारोक्तविधि से (प्रजया) उन्नत हुई प्रजा से (एनौ) ये दोनों (स्वस्तकौ) सुखयुक्त हो के (विश्वम्) सम्पूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त (आयुः) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ १२ ॥ अ० कां० १४ । सू० २ । मं० ७२ ॥

हे मनुष्यो ! जैसे (सुदानवः) विद्यादि उत्तम गुणों के दान करनेहारे (अग्रवः) उत्तम स्त्री पुरुष (जनियन्ति) पुत्रोत्पत्ति करते और (पुत्रियन्ति) पुत्र की कामना करते हैं वैसे (नौ) हमारे भी सन्तान उत्तम होवें तथा (अरिष्टासू) बल प्राण का नाश न करनेहारे होकर (बृहते) बड़े (वाजसातये) परोपकार के अर्थ विज्ञान और अन्न आदि के दान के लिये (सचेवहि) कटिबद्ध सदा रहें जिससे हमारे सन्तान भी उत्तम होवें ॥ ॥ १२ ॥

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ १३ ॥ अथर्व०कां०१४ । सू०२ । मं०७५ ॥

अर्थ—हे पत्नी ! तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ काल जीनेके लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धियुक्त (बुध्यमाना) सज्ञान होकर (गृहान्) मेरे घरोंको (गच्छ) प्राप्त हो और (गृहपत्नी) मुझ घर के स्वामीकी स्त्री (यथा) जैसे (ते) तेरा (दीर्घम्) दीर्घ कालपर्यन्त (आयुः) जीवन (असः) होवे वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्ट ज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान इस अपनी आशाको (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देनेहारा परमात्मा (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे जिससे तू और मैं सदा उन्नतिशील होकर आनन्द में रहें ॥ १३ ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १४ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० १ ॥

हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर तुमको जैसी आज्ञा देता हूं वैसा ही (वर्त्तमान) करो

जिससे तुमको अक्षय सुख हो अर्थात् (वः) तुम्हारा (सुहृदयम्) जैसी अपने लिये सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो वैसे माता पिता सन्तान स्त्री पुरुष भृत्य मित्र पड़ोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मनसे सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर विरोधादि रहित व्यवहारको तुम्हारे लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूं तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्सं, जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्यभाव से जैसे वर्त्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभि, हर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवान् ॥ १५ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मन्त्र २ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! जैसे तुम्हारा (पुत्रः) पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) प्रीतियुक्त मन वाला (अनुव्रतः) अनुकूल आचरणयुक्त (पितुः) और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला (भवतु) होवे वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्त्ता करो जैसे (जाया) स्त्री (पत्ये) पतिकी प्रसन्नता के लिये (मधुमतीम्) माधुर्यगुणयुक्त (वाचम्) वाणी को (वदतु) कहे वैसे पति भी (शान्तिवान्) शान्त होकर अपनी पत्नीसे सदा मधुर भाषण किया करे ॥ १५ ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ १६ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० ३ ॥

हे गृहस्थो ! तुम्हारेमें (भ्राता) भाई (भ्रातरम्) भाई के साथ (मा, द्विक्षन्) द्वेष कभी न करे (उत) और (स्वसा) वहिन (स्वसारम्) वहिन से द्वेष कभी (मा) न करे तथा वहिन भाई भी परस्पर द्वेष मत करो किन्तु (सम्यञ्चः) सम्यक् प्रेमादि गुणों से युक्त (सव्रतः) समान गुण कर्म स्वभाववाले (भूत्वा) होकर (भद्रया) मङ्गलकारक रीति से एक दूसरे के साथ (वाचम्) सुखदायक वाणी को (वदत) बोला करो ॥ १६ ॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ १७ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० ४ ॥

अर्थ—हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर (येन) जिस प्रकार के व्यवहार से (देवाः) विद्वान् लोग (मिथः) परस्पर (न वियन्ति) पृथक्भाव वाले नहीं होते (च) और (नो विद्विषते) परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते । (तत्) वहीं कर्म (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (कृ-

समः) निश्चित करता हूं (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को [संज्ञानम्] अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त कर बड़े [ब्रह्म] धनैश्वर्यको प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः समनसस्कृणोमि ॥ १८ ॥ अथर्व० कां० ३। सू० ३०। मं० ५ ॥

अर्थ—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम [ज्यायस्वन्तः] उत्तम विद्यादिगुणयुक्त [चित्तिनः] विद्वान् सज्जन [सधुराः] धुरन्धर होकर [चरन्तः] विचरते और [संराधयन्त] परस्पर मिल के धन धान्य राज्य समृद्धिको प्राप्त होते हुए [मा वियौष्ट] विरोधी वा पृथक् २ भाव मत करो [अन्यः] एक [अन्यस्मै] दूसरे के लिये [वल्गु] सत्य मधुर भाषण [वदन्तः] कहते हुए एक दूसरे को [एत] प्राप्त होओ इसीलिये [सध्रीचीनान्] समान लाभाऽलाभ से एक दूसरे के सहायक [संमनसः] ऐकमत्य वाले [वः] तुम को [कृणोमि] करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को जो आज्ञा देता हूं इसको आलस्य छोड़ कर किया करो ॥ १८ ॥

समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ १९ ॥ अथर्व० कां० ३। सू० ३०। मन्त्र ६॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा [प्रपा] जलपान स्नानादि का स्थान आदि व्यवहार [समानी] एकसा हो [वः] तुम्हारा [अन्नभागः] खान पान [सह] साथ हुआ करो [वः] तुम्हारे [समाने] एक से [योक्त्रे] अश्वादि यान के जोते [सह] संगी हों और तुमको मैं धर्मादि व्यवहार में भी एकीभूत करके [युनज्मि] नियुक्त करता हूं जैसे [आराः] चक्र के आरे [अभितः] आरों ओर से [नाभिमिव] बीच के नालरूप कोष्ठ में लगे रहते हैं अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान यज्ञ में मिल के [अग्निम्] अग्नि आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं वैसे [सम्यञ्चः] सम्यक् प्रीतिवाले तुम मिल के धर्मयुक्त कर्मों को [सपर्यत] तथा एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो ॥ १९ ॥

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्। देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ २० ॥ अथर्व०कां० ३। सू० ३०। मं० ७ ॥

हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मैं ईश्वर [वः] तुमको [सध्रीचीनान्] सह वर्त्तमान [संमनसः] परस्पर के लिये हितैषी [एकश्नुष्टीन्] एक ही धर्मकृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले [सर्वान्] सब को [संवननेन] धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक दूसरे के उपकार

में नियुक्त [कृणोमि] करता हूं तुम [देवा, इव] विद्वानों के समान [अमृतम्] व्यावहारिक वा पारमार्थिक सुख को (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (सायंप्रातः) सन्ध्या और प्रातः काल अर्थात् सब समय में एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिला करो ऐसे करते हुए [वः] तुम्हारा (सौमनसः) मन का आनन्दयुक्त शुद्धस्वभाव (अस्तु) सदा बना रहे ॥ २० ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्त ऋते श्रिताः ॥२१॥ अथर्व०कां०१२। सू०५।मं०१॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! मैं ईश्वर तुमको आज्ञा देता हूं कि तुम सब गृहस्थ मनुष्य लोग (श्रमेण) परिश्रम तथा [तपसा] प्राणायाम से (सृष्टाः) संयुक्त (ब्रह्मणा) वेदविद्या परमात्मा और धनादि से [वित्ते] भोगने योग्य धनादि के प्रयत्न में और [ऋते] यथार्थ पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म में [श्रिताः] चलनेहारे सदा बने रहो ॥ २१ ॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृताः ॥२२॥ अथर्व० कां०१२। सू०५। मं०२॥

(सत्येन) सत्यभाषणादि कर्मों से (आवृताः) चारों ओर से युक्त (श्रिया) शोभायुक्त लक्ष्मी से (प्रावृताः) युक्त (यशसा) कीर्ति और धन से (परिवृताः) सब ओर से संयुक्त रहा करो ॥ २२ ॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ २३ ॥ अथर्व० कां १२। अनु०। सू० ५। मं० ३ ॥

(स्वधया) अपने ही अन्नादि पदार्थ के धारण से (परिहिताः) सबके हितकारी (श्रद्धया) सत्य धारण में श्रद्धा से (पर्यूढाः) सब ओर से सब को सत्याचरण प्राप्त करानेहारे (दीक्षया) नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि व्रत धारण से (गुप्ताः) सुरक्षित (यज्ञे) विद्वानों के सत्कार, शिल्पविद्या और शुभ गुणों के दान में (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ करो और इन्हीं कर्मों से (निधनम् लोकः) इस मनुष्यलोक को प्राप्त होके मृत्युपर्यन्त सदा आनन्द में रहो ॥ २३ ॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ २४ ॥ अथर्व० कां० १२। अनु० ५। सू० ५। मं० ७ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (ओजः) पराक्रम (च) और इसकी सामग्री (सहः) स्तुति निन्दा हानि लाभ तथा शोकादि का सहन (च) और इसके साधन (बलञ्च) बल और इसके साधक (वाक्च) सत्य प्रिय वाणी और इसके अनुकूल व्यवहार (इन्द्रियञ्च) शान्त धर्मयुक्त अन्तःकरण और शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रियता (श्रीश्च) लक्ष्मी सम्पत्ति और इसकी प्राप्ति का धर्मयुक्त उद्योग (धर्मश्च) पक्षपातरहित न्यायाचरण वेदोक्त

धर्म और जो इस के साधन वा लक्षण हैं उनको तुम प्राप्त होके इन्हीं में सदा वर्त्ता करो ॥ २४ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २५ ॥
अथर्व० कां०१२ । सू० ५ । मन्त्र ८ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुमको योग्य है कि (ब्रह्म च) पूर्ण विद्यादि शुभ गुण युक्त मनुष्य और सब के उपकारक शमदमादि गुणयुक्त ब्रह्मकुल (क्षत्रञ्च) विद्यादि-उत्तम गुणयुक्त तथा विनय और शौर्यादि गुणों से युक्त क्षत्रियकुल (राष्ट्रञ्च) राज्य और उसका न्याय से पालन (विशश्च) उत्तम प्रजा और उसकी उन्नति (त्विषिश्च) सद्विद्यादि से तेज आरोग्य शरीर और आत्मा के बल से प्रकाशमान और इसकी उन्नति से (यशश्च) कीर्तियुक्त तथा इसके साधनों को प्राप्त हुआ करो (वर्चश्च) पढ़ी हुई विद्या का विचार और उसका नित्य पढ़ना (द्रविणञ्च) द्रव्योपार्जन उसकी रक्षा और धर्म-युक्त परोपकारमें व्यय करने आदि कर्मों को सदा किया करो ॥ २५ ॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रञ्च ॥ २६ ॥
अथर्व० कां०१२ । सू० ५ । मन्त्र ९ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! तुम अपना (आयुः) जीवन बढ़ाओ (च) और सब जीवनमें धर्मयुक्त उत्तम कर्म ही किया करो (रूपञ्च) विषयासक्ति कुपथ्य रोग और अधर्माचरणको छोड़ अपने स्वरूपको अच्छा रक्खो और वस्त्राभूषण भी धारण किया करो (नाम च) नामकरण के पृष्ठ६२-६३ में लिखे प्रमाणे शास्त्रोक्त संज्ञा धारण और उसके नियमोंको भी (तथा) (कीर्तिश्च) सत्याचरण से प्रशंसा का धारण करो और गुणोंमें दोषारोपणरूप निन्दा को छोड़ दो (प्राणश्च) चिरकालपर्यन्त जीवन का धारण और उसके युक्ताहार विहारादि साधन (अपानश्च) सब दुःख दूर करने का उपाय और उसकी सामग्री (चक्षुश्च) प्रत्यक्ष और अनुमान, उपमान (श्रोत्रञ्च) शब्दप्रमाण और उसकी सामग्री को धारण किया करो ॥ २६ ॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ २७ ॥ अथर्व० कां० १२। अनु० । ५ । सू० ५ । मं० १० ॥

हे गृहस्थ लोगो ! (पयश्च) उत्तम जल दूध और इसका शोधन और युक्ति से सेवन (रसश्च) घृत दूध मधु आदि और इसका युक्ति से आहार विहार (अन्नञ्च) उत्तम चावल आदि अन्न और उसके उत्तम संस्कार किये (अन्नाद्यञ्च) खाने के योग्य पदार्थ और उसके साथ उत्तम दाल शाक कढ़ी आदि (ऋतञ्च) सत्य मानना और सत्य

मनवाना (सत्यञ्च) सत्य बोलना और बुलवाना (इष्टञ्च) यज्ञ करना और कराना (पूर्त्तञ्च) यज्ञ की सामग्री पूरी करना तथा जलाशय और आराम वाटिका आदि का बनाना और बनवाना (प्रजा च) प्रजा की उत्पत्ति, पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी (पशवश्च) गाय आदि पशुओं का पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी चाहिये ॥ २७ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ १ ॥ य० अ० ४० । मं० २ ॥

अर्थः—मैं परमात्मा सब मनुष्योंके लिये आज्ञा देता हूं कि प्रत्येक मनुष्य (इह) इस संसारमें शरीरसे समर्थ होके (कर्माणि) सत्कर्मोंको (कुर्वन्नेव) करता ही करता (शतं समाः) १०० (सौ) वर्ष पर्यन्त (जिजीविषत्) जीनेकी इच्छा करे, आलसी और प्रमादी कभी न होवे । (एवम्) इस प्रकार उत्तम कर्म करते हुए (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्यमें (इतः) इस हेतु से (अन्यथा) उलटापनरूप (कर्म) दुःखद कर्म (न लिप्यते) लिप्यमान कभी नहीं होता, और तुम पापरूप कर्ममें लिप्त कभी मत होओ, इस उत्तम कर्मसे कुछ भी दुःख (नास्ति) नहीं होता । इस लिये तुम स्त्री पुरुष सदा पुरुषार्थी होकर उत्तम कर्मोंसे अपनी और दूसरोंकी सदा उन्नति किया करो ॥ १ ॥ पुनः स्त्री पुरुष सदा निम्नलिखित मन्त्रोंके अनुकूल इच्छा और आचरण किया करें । वे मन्त्र ये हैं—

भूर्भुवः स्वः । सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥२॥ य०अ०३ । मं०३७ ॥

अर्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! मैं तेरे वा अपनेके सम्बन्धसे (भूर्भुवः स्वः) शारीरिक, वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुखसे युक्त होके (प्रजाभिः) मनुष्यादि उत्तम प्रजाओंके साथ (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त (स्याम्) होऊं । (वीरैः) उत्तम पुत्र बन्धुसे सम्बन्धी और भृत्योंसे (सह वर्त्तमान) (सुवीरः) उत्तम वीरों (से) सहित होऊं । (पोषैः) उत्तम पुष्टिकारक व्यवहारोंसे (सुपोषः) उत्तम पुष्टियुक्त होऊं । हे (नर्य) मनुष्योंमें सज्जन वीर स्वामिन् ! (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (शंस्य) प्रशंसा करने योग्य स्वामिन् आप (मे) मेरे (पशून्) पशुओंकी (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अथर्य) अहिंसक दयालो स्वामिन् ! (मे) मेरे (पितुम्) अन्न आदि की रक्षा कीजिये । वैसे हे नारी ! प्रशंसनीय गुणयुक्त तू मेरी प्रजा मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर ॥ २ ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥ ३ ॥
य० अ० ३। मं० ४१॥

हे (गृहाः) गृहस्थ लोगो! तुम विधिपूर्वक गृहाश्रममें प्रवेश करने से (मा बिभीत) मत डरो (मा, वेपध्वम्) मत कम्पायमान होओ, (ऊर्जम्) अन्न पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुण से युक्त होकर गृहाश्रम को (बिभ्रतः) धारण करते हुए तुम लोगोंको हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग (एमसि) प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्नपानाच्छादन स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो, इसलिये तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है। हे वरानने! जैसे मैं तेरा पति (मनसा) अन्तःकरण से (मोदमानः) आनन्दित (सुमनाः) प्रसन्नमन (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त तुझको, और हे मेरे पूजनीयतम पिता आदि लोगो! (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्जम्) पराक्रम तथा अन्नादि ऐश्वर्य (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तुम (गृहान्) गृहस्थों को (आ एमि) सब प्रकार से प्राप्त होता हूं उसी प्रकार तुम लोग भी मुझ से प्रसन्न होके वर्त्ता करो॥ ३॥

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः॥ ४॥
यजु०अ० ३। मन्त्र ४२॥

अर्थः—हे गृहस्थो! (प्रवसन) परदेस को गया हुआ मनुष्य (येषाम्) जिनका (अध्येति) स्मरण करता है (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) बहुत (सौमनसः) प्रीति होती है उन (गृहान्) गृहस्थों की हम विद्वान् लोग (उपह्वयामहे) प्रशंसा करते और प्रीति से समीप बुलाते हैं, (ते) वे गृहस्थ लोग (जानतः) उनको जाननेवाले (नः) हम लोगों को (जानन्तु) सुहृद् जानें, वैसे तुम गृहस्थ और हम संन्यासी लोग आपस में मिल के पुरुषार्थ से व्यवहार और परमार्थ की उन्नति सदा किया करें॥ ४॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः॥ ५॥
यजु० अध्याय ३। मं० ४३॥

हे गृहस्थो! (नः) अपने (गृहेषु) घरों में जिस प्रकार (गावः) गौ आदि उत्तम पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों तथा (अजावयः) बकरी भेड़ आदि दूध देनेवाले पशु (उपहूता) समीपस्थ हों (अथो) इसके अनन्तर (अन्नस्य) अन्नादि पदार्थों के मध्य में उत्तम (कीलालः) अन्नादि पदार्थ (उपहूताः) प्राप्त होवे हम लोग वैसा प्रयत्न किया करें। हे

गृहस्थो ! मैं उपदेशक वा राजा (इह) इस गृहाश्रम में (वः) तुम्हारे (क्षेमाय) रक्षण तथा (शान्त्यै) निरुपद्रवता करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं। मैं और आप लोग प्रीति से मिल के (शिवम्) कल्याण (शग्मम्) व्यावहारिक सुख और (शंयोः, शंयोः) पारमार्थिक सुख को प्राप्त होके अन्य सब लोगों को सदा सुख दिया करें ॥ ५ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥
मनु० अ० ३। श्लोक ६० ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है ॥ १ ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसँ न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
मनु० अ० ३। श्लो० ६१ ॥

यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रक्खे वा पुरुष को प्रहर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पत्ति कभी न हो के सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं ॥ २ ॥

स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥
मनु० अ० ३। श्लो० ६२ ॥

अर्थः—और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ४ ॥
मनु० अ० ३। श्लो० ५५ ॥

अर्थः—पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण भोजन वस्त्र आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें ॥ ४ ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५॥
मनु०अ०३ । श्लो०५६॥

जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं, और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहाँ जानों उनकी सब क्रिया निष्फल है ॥ ५ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ६ ॥
मनु०अ०३ । श्लोक ५७ ॥

जिस कुल में स्त्री लोग अपने २ पुरुषों के वेश्यागमन वा व्यभिचारादि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त होजाता है और जिस कुल में स्त्रीजन पुरुषों के उत्तमाचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ६ ॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥७॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ५८ ॥

जिन कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्री लोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतोंको एक वार नाश कर देवें वैसे चारों ओर से नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ७ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ८ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ५९ ॥

अर्थः—इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, पान आदिसे सदा पूजा अर्थात् सत्कार युक्त प्रसन्न रक्खें ॥ ८ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ९ ॥
मनु० अ० ५ । श्लो० १५० ॥

अर्थः—स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृहकार्यों में वर्त्तमान

रहे, तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार, पात्र वस्त्र गृह आदि के संस्कार, और घर के भोजनादि में जितना नित्य धन आदि लगे उसके यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ १० ॥
मनु० अ० ९ । श्लो० २४ ॥

अर्थः—यदि स्त्रियां दुष्टाचारयुक्त भी हों तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियां अपने २ पतियों के शुभ गुणों से उत्कृष्ट होगई, होती हैं और होंगी भी, इसलिये यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियां श्रेष्ठ और दुष्ट हों तो दुष्ट होजाती हैं, इससे प्रथम मनुष्यों को उत्तम हो के अपनी स्त्रियों को उत्तम करना चाहिये ॥ १० ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ११ ॥
मनु० अ० ९ । श्लो० २६ ॥

अर्थः—हे पुरुषो ! सन्तानोत्पत्ति के लिये महाभाग्योदय करनेहारी, पूजा के योग्य, गृहाश्रमको प्रकाश करती; सन्तानोत्पत्ति करनेहारी, घरोंमें स्त्रियां हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मीस्वरूप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी शोभा धन और स्त्रियोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ ११ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ १२ ॥ मनु० अ० ९ ॥

हे पुरुषो ! अपत्योंकी उत्पत्ति, उत्पन्न का पालन करने आदि लोकव्यवहारको नित्यप्रति जो कि गृहाश्रमका कार्य होता है उसका निबन्ध करनेवाली प्रत्यक्ष स्त्री है ॥ १२ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ १३ ॥ मनु० अ० ९ ॥

सन्तानोत्पत्ति, धर्मकार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरोंका जितना सुख है यह सब स्त्री हीके आधीन होता है ॥ १३ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ १४ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ७७ ।

जैसे वायुके आश्रयसे सब जीवोंका वर्त्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थके आश्रय से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमोंका निर्वाह (गृहस्थके आश्रयसे) होता है ॥ १४ ॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥
मनु० अ० ३ । श्लोक ७८ ॥

अर्थः—जिससे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियोंको अन्न वस्त्रादि दानसे नित्यप्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है इसलिये व्यवहारमें गृहाश्रम सबसे बड़ा है ॥ १५ ॥

सः संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ७९ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! जो तुम अक्षय * मुक्तिसुख और इस संसारके सुखकी इच्छा रखते हो तो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्ध पुरुषोंके धारण करने योग्य नहीं है उस गृहाश्रमको नित्य प्रयत्नसे धारण करो ॥ १६ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥ १७ ॥
मनु० अ० ६ । श्लो० ८९ ॥

वेद और स्मृतिके प्रमाणसे सब आश्रमोंके बीचमें गृहाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमोंका धारण और पालन करता है ॥ १७ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १८ ॥
मनु० अ० ६ । श्लो० ९० ॥

अर्थः हे मनुष्यो ! जैसे सब बड़े २ नद और नदी सागर में जाकर स्थिर होते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ हीको प्राप्त होके स्थिर होते हैं ॥ १८ ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १९ ॥ मनु० अ० ४ ॥

यदि गृहस्थ होके पराये घर में भोजनादिकी इच्छा करते हैं तो वे बुद्धिहीन गृहस्थ अन्यसे प्रतिग्रहरूप पाप करके जन्मान्तर में अन्नादिके दाताओंके पशु बनते हैं, क्योंकि अन्यसे अन्नादिका ग्रहण करना अतिथियोंका काम है, गृहस्थोंका नहीं ॥ १९ ॥

* अक्षय इतना ही मात्र है कि जितना समय मुक्तिका है उतने समयमें दुःखका संयोग, जैसा विषयेन्द्रियके संयोग जन्य सुखमें होता है वैसा नहीं होता ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ २० ॥ मनु० अ० ४ ॥

जब गृहस्थके समीप अतिथि आवें तब आसन, निवास, शय्या, पश्चाद्गमन और समीप में बैठना आदि सत्कार जैसेका वैसा अर्थात् उत्तमका उत्तम, मध्यमका मध्यम और निकृष्टका निकृष्ट करे ऐसा न हो कि कभी न समझें ॥ २० ॥

पाषण्डिनोऽवकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ २१ ॥
मनु० अ० ४ । श्लो० ३० ॥

किन्तु जो पाखण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक, ईश्वर वेद और धर्मको न माने, अधर्माचरण करनेहारे, हिंसक, शठ, मिथ्याभिमानी, कुतर्की और वकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ को हरने वा बहकानेमें बगुलेके समान, अतिथिवेषधारी बनके आवें उनका वचनमात्रसे भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे ॥ २१ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ २२ ॥
मनु० अ० ४ । श्लो० ८५ ॥

अर्थ :--दश हत्याके समान चक्र अर्थात् कुम्हार (तथा) गाड़ीसे जीविका करनेहारे, दश चक्रके समान ध्वज अर्थात् धोबी (तथा) मद्यको निकाल कर बेचनेहारे, दशध्वजके समान वेश अर्थात् वेश्या, भड़ुवा, भांड़की नकल अर्थात् पाषाणमूर्तियोंके पूजक (पूजारी) आदि और दशवेशके समान जो अन्यायकारी राजा होता है उनके अन्न आदिका ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें ॥ २२ ॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम् ॥ २३ ॥
मनु० अ० ४ श्लोक १७४ ॥

गृहस्थ जीविका के लिये भी कभी शास्त्र विरुद्ध लोकाचारका वर्त्ताव न वर्त्ते, किन्तु जिसमें किसी प्रकारकी कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो उस वेदोक्त धर्मसम्बन्धी जीविकाको करे ॥ २३ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ २४ ॥
मनु० अ० ४ । श्लोक १७५ ॥

किन्तु सत्य: धर्म, आर्य अर्थात् आप्त पुरुषोंके व्यवहार और शौच पवित्रता हीमें सदा गृहस्थ लोग प्रवृत्त रहें और सत्यवाणी, भोजनादिके लोभ रहित हस्तपादादिकी कुचेष्टा छोड़कर धर्मसे शिष्यों और सन्तानोंको उत्तम शिक्षा सदा किया करें ॥ २४ ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ २५ ॥
मनु० अ० ४। श्लो० १७६ ॥

यदि बहुतसा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती हो तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवें और वेदविरुद्ध धर्माभास जिसके करनेसे उत्तर कालमें दुःख और संसारकी उन्नतिका नाश हो वैसा नाममात्र धर्म और कर्म कभी न किया करें ॥ २५ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ २६ ॥
मनु० अ० १३। श्लोक १०७ ॥

अर्थ—जो धर्म ही से पदार्थोंका संग्रह करना है वही सब पवित्रताओंमें उत्तम पवित्रता, अर्थात् जो अन्यायसे किसी पदार्थका ग्रहण नहीं करता वह पवित्र है, किन्तु जल मृत्तिकादिसे जो पवित्रता होती है वह धर्मके सदृश उत्तम नहीं है ॥ २६ ॥

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ २७ ॥
मनु० अ० १२। श्लोक १०८ ॥

विद्वान् लोग क्षमासे, दुष्टकर्मकारी सत्सङ्ग और विद्यादि शुभगुणोंके दानसे, गुप्त पाप करनेहारे विचारसे त्याग कर, और ब्रह्मचर्य तथा सत्यभाषणादिसे वेदवित् उत्तम विद्वान् शुद्ध होते हैं ॥ २७ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ २८ ॥
मनु० अ० १२। श्लोक १०९ ॥

किन्तु जलसे ऊपरके अङ्ग पवित्र होते हैं, आत्मा और मन नहीं, मन तो सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करनेसे शुद्ध और जीवात्मा विद्या योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञानसे ही शुद्ध होती है, जल मृत्तिकादिसे नहीं ॥ २८ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ २६ ॥
मनु० अ० १२ । श्लो० ११० ॥

गृहस्थ लोग छोटों बड़ों वा राजकार्यों के सिद्ध करनेमें कमसे कम १० अर्थात् ऋग्वेदज्ञ, हैतुक (नैयायिक) तर्ककर्त्ता (मीमांसा शास्त्रज्ञ), नैरुक्त (निरुक्तशास्त्रज्ञ), धर्माध्यापक, ब्रह्मचारी, स्नातक और वानप्रस्थ विद्वानों अथवा अतिन्यूनता करे तो तीन वेदवित् (ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ और सामवेदज्ञ) विद्वानोंकी सभासे कर्त्तव्याकर्त्तव्य धर्म और अधर्म का जैसा निश्चय हो वैसा ही आचरण किया करे ॥ २६ ॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥
मनु० अ० ७ । श्लो० १८ ॥

और जैसा विद्वान् लोग दण्ड ही को धर्म जानते हैं वसा सब लोग जानें, क्योंकि दण्ड ही प्रजाका शासन अर्थात् नियम में रखनेवाला, दण्ड ही सबका सब ओरसे रक्षक और दण्ड ही सोते हुओंमें जागता है, चौरादि दुष्ट भी दण्ड ही के भय से पापकर्म नहीं कर सकते ॥ ३० ॥

यस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ ३१ ॥
मनु० अ० ७ । श्लो० २६ ॥

उस दण्डको अच्छे प्रकार चलानेहारे उस राजा को कहते हैं कि जो सत्यवादी विचार ही करके कार्यका कर्त्ता, बुद्धिमान्, विद्वान्, धर्म, काम और अर्थका यथावत जाननेहारा हो ॥ ३१ ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३२ ॥
मनु० अ० ७ श्लो० ३० ॥

अर्थ—जो राजा उत्तम सहाय रहित, मूढ़, लोभी, जिसने ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों से विद्या और बुद्धि की उन्नति नहीं की, विषयों में फंसा हुआ है उससे वह दण्ड कभी न्यायपूर्वक नहीं चल सकता ॥ ३२ ॥

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३३ ॥
मनु० अ० ७। श्लो० ३१ ॥

इसलिये जो पवित्र, सत्पुरुषों का संगी, राजनीति शास्त्र के अनुकूल चलनेहारा, धार्मिक पुरुषों के सहाय से युक्त, बुद्धिमान् राजा हो वही इस दण्ड को धारण करके चला सकता है ॥ ३३ ॥

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ३४ ॥
मनु० अ० ८। श्लो० १२८ ॥

जो राजा अनपराधियों को दण्ड देता और अपराधियों को दंड नहीं देता वह इस जन्म में बड़ी अपकीर्ति को प्राप्त होता और मरे पश्चात् नरक अर्थात् महा दुःख को पाता है ॥ ३४ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ३५ ॥
मनु० अ० ७। श्लोक ४७ ॥

अर्थ– मृगया अर्थात् शिकार खेलना, द्यूत और प्रसन्नता के लिये भी चौपड़ आदि खेलना, दिन में सोना, हंसी ठट्ठा मिथ्यावाद करना, स्त्रियों के साथ सदा अधिक निवास में मोहित होना, मद्यपानादि नशाओं का करना, गाना, बजाना, नाचना वा इनका देखना और वृथा इधर उधर घूमते फिरना ये दश दुर्गुण काम से होते हैं ॥ ३५ ॥

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥ ३६ ॥
मनु० अ० ७। श्लो० ४८ ॥

और चुगली खाना, बिना विचारे काम कर बैठना, जिस किसी से वृथा वैर बांधना, दूसरे की स्तुति सुन वा बढ़ती देख के हृदय में जला करना, दूसरों के गुणों में दोष और दोषोंमें गुण स्थापन करना, बुरे कामों में धन का लगाना, क्रूर वाणी और बिना विचारे पक्षपात से किसी को करड़ा दण्ड देना ये आठ दोष क्रोधी पुरुष में उत्पन्न होते हैं। ये १८ (अठारह) दुर्गुण हैं इनको राजा अवश्य छोड़ देवे ॥ ३६ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ३७ ॥

मनु० अ० ७। श्लो० ४९ ॥

और जो इन कामज और क्रोधज १८ (अठारह) दोषों के मूल जिस लोभ को सब विद्वान् लोग जानते हैं उसको प्रयत्न से राजा जीते, क्योंकि लोभ ही से पूर्वोक्त १८ (अठारह) और अन्य दोष भी बहुतसे होते हैं, इसलिये हे गृहस्थ लोगो! चाहे वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र क्यों न हो परन्तु ऐसे दोष वाले मनुष्य को राजा कभी न करना, यदि भूल से हुआ हो तो उसको राज्य से च्युत करके किसी योग्य पुरुष को जो कि राजा के कुल का हो राज्याधिकारी करना, तभी प्रजा में आनन्द मङ्गल सदा बढ़ता रहेगा ॥ ३७॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३८ ॥

मनु० अ० १२। श्लो० १०० ॥

जो वेदशास्त्रवित् धर्मात्मा जितेन्द्रिय न्यायकारी और आत्मा के बल से युक्त पुरुष होवे उसी को सेना, राज्य, दण्डनीति और प्रधानपद का अधिकार देना अन्य क्षुद्राशयों को नहीं ॥ ३८ ॥

मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ३९ ॥

मनु० अ० ७ । श्लो० ५४ ॥

और जो अपने राज्य में उत्पन्न, शास्त्रों के जाननेहारे, शूरवीर, जिनका विचार निष्फल न होवे, कुलीन धर्मात्मा, स्वराज्यभक्त हों उन सात वा आठ पुरुषों को अच्छी प्रकार परीक्षा करके मन्त्री करे और इन्हीं की सभा में आठवां वा नववां राजा हो ये सब मिल के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कामों का विचार किया करें ॥ ३९ ॥

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तृ़नमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥ ४० ॥

मनु० अ० ७। श्लो० ६० ॥

इसी प्रकार अन्य भी राज्य और सेना के अधिकारी जितने पुरुषों से राजकार्य सिद्ध हो सके उतने ही पवित्र धार्मिक विद्वान् चतुर स्थिरबुद्धि पुरुषों को राज्यसामग्री के वर्धक नियत करे ॥ ४० ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ४१ ॥
मनु० अ० ७। श्लो० ६३ ॥

तथा जो सब शास्त्र में निपुण, नेत्रादि के संकेत स्वरूप तथा चेष्टा से दूसरे के हृदय की बात को जाननेहारा, शुद्ध, बड़ा स्मृतिमान्, देश काल जाननेहारा, सुन्दर जिसका स्वरूप, बड़ा वक्ता और अपने कुल में मुख्य हो उस और स्वराज्य और परराज्य के समाचार देनेहारे अन्य दूतों को भी नियत करे ॥ ४१ ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ४२ ॥
मनु० अ० ७। श्लो० १०१ ॥

तथा राजादि राजपुरुष अलब्ध राज्य की इच्छा दंड से, और प्राप्त राज्य की रक्षा संभाल से, रक्षित राज्य और धन को व्यापार और व्याज से बढ़ा और सुपात्रों के द्वारा सत्यविद्या और सत्यधर्म के प्रचार आदि उत्तम व्यवहारों में बढ़े हुए धन आदि पदार्थों का व्यय करके सब की उन्नति सदा किया करें ॥ ४२ ॥

विधिः—सदा स्त्री पुरुष १० (दस) बजे शयन और रात्रि के पहिले प्रहर वा ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्मका विचार किया करें, और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें, किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहार विहार औषधसेवन सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्मकी सिद्धिके लिये ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना भी किया करें कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके, इसके लिये निम्नलिखित मन्त्र हैं:—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम * ॥ १ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ४१। मन्त्र १ ॥

* हे स्त्री पुरुषो! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात-वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे (प्रातः) (सोमम्)

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजाचिद्यं भगं भक्षीत्याह (१) ॥ २ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ४१। मन्त्र २ ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम (२) ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ४१। ३ ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्र पित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम (३) ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ४१। मन्त्र ४ ॥

अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं वैसे प्रातः समय तुम लोग भी किया करो ॥ १ ॥

(१) (प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्यकी उत्पत्ति करनेहारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करनेहारा (आध्रः) सब ओर से धारणकर्त्ता (यं चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जाननेहारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करनेहारा हूं उस मेरी उपासना किया और मेरी आज्ञा में चला करो इस से (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

(२) हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देनेहारे (भग) सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर (नः) हमको (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये और उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये। हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रगट कीजिये, हे (भग) आपकी कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्यवाले (प्र, स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥ ३ ॥

(३) हे भगवन्! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देनेहारे (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥ ४ ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह * ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ४१। मं० ५ ॥

इसी प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करनी। तत्पश्चात् शौच, दन्तधावन, मुख-प्रक्षालन करके स्नान करें। पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जङ्गल में जा के योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर, सूर्योदय पर्यन्त अथवा घड़ी आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आके सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें। इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण "पञ्चमहायज्ञविधि" में देख लेवें। प्रथम शरीरशुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त कर्म करके सन्ध्योपासन का आरम्भ करें। आरम्भ में दक्षिण हस्त में जल लेके:—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥
ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥ आश्वलायन गृ० सू० अ० १। कं २४। सू० १२। २१। २२ ॥

अर्थ के लिये देखो पृष्ठ २०।

इन तीन मन्त्रों में से एक २ से एक २ आचमन कर, दोनों हाथ धो, कान, आँख, नासिका आदि का शुद्ध जलसे स्पर्श करके, शुद्ध देश, पवित्रासन पर, जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके, नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके, हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के, यथाशक्ति रोके, पश्चात् धीरे २ भीतर लेके भीतर थोड़ासा रोके, यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे। नासिका को हाथ से न पकड़े। इस समय परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना हृदय में करके—

* हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर! जिससे (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे २ सत्य कर्मों में बढ़ानेहारे (भव) हूजिये और जिससे (भग एव) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिये (तेन) उसी हेतु से (देवाः, वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन मन धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥५॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ यजु० अ० ३६। मं० १२॥

दिव्यगुण युक्त जल अथवा परमात्मा हमारे अभीष्टकी पूर्त्ति, तृप्ति और पीनेके लिये हमको कल्याणकारी हो। हम पर चारों ओर से उसकी वृष्टि हो॥

इस मन्त्र को एक वार पढ़ के तीन आचमन करे। पश्चात् पात्र में से मध्यमा अनामिका अङ्गुलियों से जल स्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वाम पार्श्व निम्नलिखित मन्त्रों से स्पर्श करे—

ओं वाक् वाक्॥

इस मन्त्रसे मुखका दक्षिण और वामपार्श्व

ओं प्राणः प्राणः॥

इससे दक्षिण और वाम नासिकाके छिद्र

ओं चक्षुश्चक्षुः॥

इससे दक्षिण और वाम नेत्र

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्॥

इससे दक्षिण और वाम श्रोत्र

ओं नाभिः॥

इससे नाभि

ओं हृदयम्॥

इससे हृदय

ओं कण्ठः॥

इससे कण्ठ

ओं शिरः॥

इससे मस्तक

ओं बाहुभ्यां यशोबलम्॥

इससे दोनों भुजाओंके मूल स्कन्ध और

ओं करतलकरपृष्ठे॥

इससे दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करके मार्जन करे॥

हमारी वाणी, जिह्वा, नासिका, आंख, कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, और सिर ये सब शरीरके अङ्ग ईश्वरकी कृपासे बलवान हो जायं। हमारे बाहुओं और हाथों का यश और बल नित्य बढ़ता रहे॥

ओं भूः पुनातु शिरसि ॥

इस मन्त्रसे शिर पर

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ॥

इस मन्त्रसे दोनों नेत्रों पर

ओं स्वः पुनातु कण्ठे ॥

इस मन्त्रसे कण्ठ पर

ओं महः पुनातु हृदये ॥

इस मन्त्रसे हृदय पर

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् ॥

इससे नाभि पर

ओं तपः पुनातु पादयोः ॥

इससे दोनों पगों पर

ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॥

इससे पुनः मस्तक पर

ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

सब जगत का पालक ईश्वर सिरको पवित्र करे। दुःख हर्ता परमात्मा आंखों को शुद्ध करे। सुखदाता परमेश्वर गलेको शुद्धि करे। पूजनीय ईश्वर हृदय में शुद्धता दे। सर्वोत्पादक पिता नाभिको पवित्र बनावे। दुष्टोंको दण्ड देनेवाला ईश्वर पांवोंको शुद्ध करे। अविनाशी सत्यस्वरूप परमात्मा शिरको अर्थात् विचारोंको बार बार पवित्र बनावे। सर्वव्यापक ब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र शुद्धि कर दे।

इस मन्त्र से सब अङ्गों पर छींटा देवे। पुनः पूर्वोक्त रीति से [प्राणायाम की क्रिया करता जावे। और नीचे लिखे मन्त्र का जप भी करता जायः—

ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम् ॥ तैत्तिरीयारण्य० प्र० १० । अनु० २७ ॥

ये सब ईश्वरके नाम हैं। इनका अर्थ मार्जन-मंत्रोंमें आ गया है। इनका प्राणायाम करते हुए जप करना अर्थात् ईश्वरका चिंतन करना चाहिये।

इसी रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ (इक्कीस) प्राणायाम करे। तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखित मन्त्रों से करे, और जगदीश्वर को सर्वव्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्त्तमान रक्खे ॥

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

नाम और रूप द्वारा प्रकट संसार और सूक्ष्म प्रकृति दोनों उसी ईश्वरके प्रदीप्त सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं। जगतके कारण सूक्ष्म प्रकृतिके अनंतर अन्धकारमय रात्रि और तदनंतर पृथिवी और अन्तरिक्ष में वर्तमान समुद्रकी उत्पत्ति हुई ॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

इस समुद्रके पश्चात् घड़ी पल आदि रूप काल अर्थात् समय उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् सब जगतको वश में रखने वाले ईश्वरने अपने सहज स्वभाव से दिन और रात बनाये।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥

फिर क्रमशः संसारके धारक पालक पोषक स्वामीने पूर्व कल्पोंके समान ही सूरज, चांद, द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और स्वर्लोककी रचना की ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुनः (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन करके निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे ॥

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० १ ॥

पूर्व दिशाका अग्निके समान प्रकाश स्वरूप परमात्मा स्वामी है। वही बन्धन-रहित स्वामी हमारा रक्षक है और उसकी सूर्य-किरणें आदि रोगोंके नाशके लिये वाण-रूप हैं। उस स्वामी, रक्षक, और वाण आदि सबको नमस्कार हो। जो हमसे द्वेष करे अथवा जिससे हम द्वेष करें, हम उसे आपको डाढ़ोंमें रखते हैं अर्थात् उस द्वेष-बुद्धिका नाश करते हैं॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो० ॥२॥ अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० २ ॥

दक्षिण दिशा में ऐश्वर्योंका राजा परमेश्वर स्वामी है, वही हमारी कीट पतंगों आदि से रक्षा करता है और वैद्य आदि विद्वान उसके वाण स्वरूप हैं॥ शेष पूर्व मन्त्रके समान जानो।

प्रतीची दिग्वरुणोधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो० ॥३॥ अथर्व० कां ३ । सू० २७ मं० ३ ॥

पश्चिम दिशामें सकल संसारका प्रमुख राजा ईश्वर स्वामी है, वह हमारी बड़े बड़े विषधर सर्पादियों से रक्षा करता है और अन्न आदि भोग्य पदार्थ उसके वाण स्वरूप हैं। शेष पूर्ववत् ॥

उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो० ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ३। सू० २७। मं० ४ ॥

उत्तर दिशामें सौम्य-गुण-युक्त परमात्मा स्वामी है वही अजन्मा पिता हमारा रक्षक है और विद्युत आदि प्राकृतिक शक्तियां उसके वाण हैं। शेष पहिलेके समान समझो ॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः तेभ्यो० ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० ५ ॥

पृथिवी लोक में सर्वत्र व्यापक ईश्वर स्वामी है, हरित रंग वाला वनस्पतियों से वह रक्षा और वाण दोनों का कार्य सिद्ध करता है। शेष पूर्ववत् ॥

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो० ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० ६ ॥

ऊपर की दिशामें वाणीका स्वामी बृहस्पति सकल संसारका शासक है। वह वर्षा आदिसे अपना वाणी का प्रयोजन निकालता है। शेष अर्थ पहिले पांच मन्त्रोंके समान समझो ॥

इन मन्त्रों का पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निश्शङ्क उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना। तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अतिनिकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि करके करे—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ । सू० ९९ । मं० १ ॥

परमात्मा की स्तुतिके लिये हम अपने में सौम्य गुणोंकी उत्पत्ति करें। वेदका ज्ञान शत्रु-स्वरूप दुर्गुणोंको नष्ट कर देता है। सर्वप्रकाशक ईश्वरकी सहायता से हम कठिन दुर्गुणों को इसी प्रकार विजय करलें जैसे नावसे नदीको पार किया जाता है ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षᳬ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥ यजु० अ० १३ । मं० ४६ ॥

वह परमेश्वर अद्भुत-शक्ति-शाली है। वह विद्वानों के ही हृदय में प्रकट होता है। सबका बल है। सूर्य, जल और अग्नि इन सब भौतिक शक्तियों का मार्ग-दर्शक प्रकाशक है। द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकोंमें सर्वत्र व्याप्त है। जङ्गम और स्थावर सब संसारका प्रकाशक और स्वामी है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजु० अ० ३३ । मं० ३१ ॥

उस सकल जगतके प्रकाशक और ज्ञाता परमेश्वर को सृष्टि का निरीक्षण करनेके लिये उसी के नाना गुण सर्वत्र पहुंचाते हैं ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० ३५ । मं० १४ ॥

हम उसी, अन्धकारसे परे वर्तमान, सुख-रूप, उत्कृष्ट, देवोंमें श्रेष्ठ, और सूर्य के भी प्रकाशक परमेश्वर का ध्यान करते हुए उसकी ज्योति अर्थात ज्ञानको प्राप्त करें ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ यजु० अ० ३६ । मं० २४ ॥

वह सकल संसारका द्रष्टा, देवोंका हितकर्ता, सदासे शुद्ध, और विज्ञान-रूप है। उसकी कृपासे हम सौ वर्ष पर्यन्त देखते जीते, सुनते, बोलते चालते और स्वतंत्र रहें। बल्कि सौ वर्ष के अनंतर भी ये सब सुख हमको प्राप्त रहें ॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान करके पुनः (शन्नो देवी०) इससे तीन आचमन करके पृष्ठ ६० में लिखे० अथवा पञ्चमहायज्ञविधि में लिखे० गायत्री मन्त्र का अर्थ विचारपूर्वक परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना करे, पुनः हे परमेश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जपोपासनादि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें, पुनः—

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ५ ॥ यजु० अ० १६ । मं ४१ ॥

कल्याण और सुखके कारण तथा कल्याण और सुख देने वालेको नमस्कार हो। कल्याण-स्वरूप और अत्यंत कल्याणमय परमेश्वरको नमस्कार हो ॥

इससे परमात्मा को नमस्कार करके (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन करके अग्निहोत्र का आरम्भ करें ॥

इति संक्षेपतः सन्ध्योपासनविधिः समाप्तः ॥

अथाग्निहोत्रम् ।

जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष *अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें। पृष्ठ २०-२१ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान, समिदाधान और पृष्ठ २२ में लिखे—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ।

इत्यादि ४ मन्त्रों से यथाविधि कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके, शुद्ध किये हुए सुगन्ध्यादियुक्त घी को तपा के, पात्र में लेके, कुण्ड से पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठके, पृष्ठ २३ में लिखे आघारावाज्यभागाहुति चार देके, नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करेः—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १ ॥

परमेश्वर ही सब चराचर जगत का प्रकाशक है। उसकी आज्ञा से सब संसारके उपकारार्थ यह आहुति है ॥

---

* किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे अर्थात् एक २ मन्त्र को दो २ वारे पढ के दो २ आहुति करे ॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥२॥

सूर्य (परमात्मा) ही सबको वर्चस (बल) देनेवाला है। वह परमेश्वर स्वयं प्रकाशक है॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ३ ॥

सृष्ट्युत्पादक परमात्मा और तेजोमयी उषाके साथ वर्तमान सब जगतकी सेवा करता हुआ सूर्य हमको प्राप्त होकर प्रकाशित करे॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

परमात्मा प्रकाश स्वरूप है और अग्निको भी प्रकाश वही देता है॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायंकाल में अग्निहोत्र के जानो।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ १ ॥

परमात्मा बल देने वाला है और अग्निका प्रकाश भी उसीके सामर्थ्य से है॥

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २ ॥

परमात्मा प्रकाश स्वरूप है और अग्निको भी प्रकाश वही देता है॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ ३ ॥

इस मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४ ॥ य० अ० ३। मं० ९, १० ॥

सृष्टिके उत्पादक परमेश्वर के तेज तथा प्रकाशमयी रात्रिके साथ वर्तमान अग्नि हमारी सेवाके लिये हमें प्राप्त हो॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देनी चाहियेः—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा॥ इदमग्नये, प्राणाय इदन्न मम॥ १ ॥

प्राणोंके आधार बलदायक प्राण-स्वरूप परमात्मा के लिये यह आहुति है।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ॥ २ ॥

वायु द्वारा अपानके पोषक परमात्मा के लिये यह आहुति है वह हमारे अपानकी पुष्टि करे।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ इदमादित्याय व्यानाय इदन्न॥ ३ ॥

सूर्य द्वारा व्यानकी पुष्टि करके सुखदेने वाले ईश्वरके लिये यह आहुति है॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम॥ ४ ॥

प्राण अपान और व्यान तीनोंकी पुष्टि करने वाली शक्तियोंके लिये यह सम्मिलित आहुति है॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥

वह परमेश्वर व्यापक, प्रकाशक, रसके समान मधुर, अमृत, सब चराचरका स्वामी, जीवन-प्रदाता, रक्षक पोषक और सुख-दायक है ॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा । यजु० अ० ३२ । मं० ॥ १४ ॥

जिस बुद्धिकी सब विद्वान और अनुभवी बूढ़े लोग उपासना करते हैं, हे अग्ने, आज मुझे भी उसी बुद्धि से युक्त कीजिये ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥ य० अ० ३० । मं० ३ ॥

सकल सृष्टिके उत्पादक पिता, हमारी सब बुराइयोंको दूर करके हमें भलाई प्राप्त कराइये ॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥ य० अ० ४० । मं० १६ ॥

हे अग्ने, हमको धनकी प्राप्तिके लिये सुमार्ग से ले जाइये । हमारे सब दोषोंको जानते हुए आप हमारे बुरे पापोंको नष्ट कीजिये । हम बार बार आप को नमस्कार करते हैं ।

इन आठ मन्त्रों से एक २ मन्त्र करके एक २ आहुति ऐसे आठ आहुति देके—

ओं सर्वं वै पूर्णᳯ स्वाहा ॥

यह सब हवि घृतादि की पूर्णाहुति है ।

इस मन्त्रसे तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ वार पढ़के एक २ करके तीन आहुति देवे ॥

इत्यग्निहोत्रविधिः संक्षेपतः ॥ २ ॥

अथ पितृयज्ञः ।

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे अर्थात् जीते हुए माता पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है ॥ ३ ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिः

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ओं कुह्वै स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वा-

इस यज्ञमें सब प्राणियों और भौतिक शक्तियों के कल्याणके लिये तथा वे हमारा कल्याण करें इस लिये आहुति दी जाती हैं ॥ प्रथम दस आहुतियों में अग्नि, सोम, सब देव, धन्वंतरि, कुहू, अनुमति, द्यु, पृथिवी और स्विष्टकृत् इन दसके लिये आहुति दी गयी है ।

९॥ ओं द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा ॥
ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन दश मन्त्रों से घृतमिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाक में बना हो उसकी दश आहुति करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥
इससे पूर्व ॥
ओं सानुगाय यमाय नमः ॥
इससे दक्षिण ॥
ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥
इससे पश्चिम ॥
ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥
इससे उत्तर ॥
ओं मरुद्भ्यो नमः ॥
इससे द्वार ॥
ओं अद्भ्यो नमः ॥
इससे जल ॥
ओं वनस्पतिभ्यो नमः ॥
इससे मूसल और ऊखल ॥
ओं श्रियै नमः ॥
इससे ईशान (१) ॥
ओं भद्रकाल्यै नमः ॥
इससे नैर्ऋत्य (२) ॥
ओं ब्रह्मपतये नमः । ओं वास्तुपतये नमः ॥
इससे मध्य ॥

इन मन्त्रों से दिशाओं में भोग धरने का अभिप्राय यह है कि उस उस दिशाके प्राणी अथवा भौतिक शक्तियां प्रसन्न रहें। हमारे अनुकूल वर्तने वाले इन्द्र, यम, वरुण, सोम, वायु, जल, वनस्पति अथवा काष्ठादिसे बने हुए उपकरण, लक्ष्मी, भद्रकाली, ब्रह्मपति (ईश्वर), गृह आदि बनाने वाले शिल्पी वास्तुपति, विश्वे देव, आकाश में रहने वाले प्राणी, रातमें फिरने वाले प्राणी, सबके हृदय में वर्तमान परमात्मा, और सत्कारको स्वीकार करने वाले माननीय पितर इन सबके लिये यह अलग अलग भाग प्रस्तुत है ॥

(१) "घरकी छत में" ऐसा मनुमें मिलता है। अ० ३। श्लो० ८९ ॥
(२) "घरके पाद में" मनु० ३। ८९ ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥

इससे ऊपर।

ओं सर्वात्मभूतये नमः॥

इससे पृष्ठ।

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥

इससे दक्षिण।

इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना। तत्पश्चात् घृतसहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥ १॥

मनु० अ० ३। श्लो० ९२॥

अर्थः—कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामोंसे छः भाग पृथिवी में धरे और वे छः भाग जिस २ के नाम हैं उस २ को देना चाहिये॥ ४॥

अथातिथियज्ञः

पांचवां— जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथियज्ञ कहाता है उसको नित्य किया करें। इस प्रकार पञ्चमहायज्ञों को स्त्री पुरुष प्रतिदिन करते रहें॥ ५॥

इसके पश्चात् पक्षयज्ञ अर्थात् पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बनाके निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें॥

ओं अग्नये स्वाहा॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा॥ ओं विष्णवे स्वाहा॥

सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक, सुखप्रद और सर्वत्र प्राप्त होने वाले ईश्वरके लिये यह समर्पण है॥

इन तीन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन अहुति देनी। तत्पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आज्याहुति ४ देनी, परन्तु इसमें इतना भेद है कि अमावास्या के दिनः—

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥

इस मंत्रके बदले—

ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥

अग्नि, सोम, और इन्द्र और अग्निके लिये ये दो आहुतियां हैं ॥

इस मन्त्रको बोलके स्थालीपाक की आहुति देवे। इस प्रकार पक्षयाग अर्थात् जिसके घर में अभाग्य से अग्निहोत्र न होता हो तो सर्वत्र पक्षयागादि में पृष्ठ १५, १६ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड, यज्ञसामग्री, यज्ञमण्डप, पृष्ठ २०-२१ में लिखे अन्याधान समिदाधान, पृष्ठ २३ में लि० आघारावाज्यभागाहुति, और पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे वेदी के चारों ओर जल सेचन करके, पृष्ठ ३-१५ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण भी यथायोग्य करें, और जब २ नवान्न आवे तब २ नवशस्येष्टि और संवत्सर के आरम्भ में निम्नलिखित विधि करें। अर्थात् जब २ नवीन अन्न आवे तब २ शस्येष्टि करके नवीन अन्न के भोजन का आरम्भ करें—

नवशस्येष्टि और संवत्सरेष्टि करना हो तो जिस दिन प्रसन्नता हो वही शुभ दिन जाने। ग्राम और शहर के बाहर किसी शुद्ध खेत में यज्ञमण्डप करके, पृष्ठ ३-२८ तक लिखे प्रमाणे सब विधि करके, प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) तथा अष्टाज्याहुति ८ (आठ) ये सोलह आज्याहुति करके कार्यकर्त्ता—

ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा ॥ १ ॥

जिसकी उत्पत्तिके लिये पृथिवी, आकाश, और दिशायें और उपदिशायें सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त हो रही हैं, हम यहां उस मेघ (बादल) को बुलाते हैं। उसकी वृष्टि हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥१॥

ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वꣳ समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳ स्वाहा ॥ २ ॥

हे वर्षाकी करने वाली विद्युत, मेरा इस जीवन में जो जो अभीष्ट हो वह सब पूर्ण हो जाय और मैं सौ वर्ष तक जीता हुआ समृद्ध बना रहूं ॥ २॥

ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥

यह मेघ और एतत्सम्बन्धी शक्तियां यहां मेरे लिये सम्पत्ति, ऐश्वर्य, भूमि, वृष्टि, ज्येष्ठता, श्रेष्ठता, श्री (लक्ष्मी) और संतानोंकी रक्षा तथा वृद्धि करें ॥ ३ ॥

ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताᳫं सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि स्वाहा ॥ इदमिन्द्रपत्न्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥

जिसके होनेसे वैदिक और लौकिक (सांसारिक) सब कामोंकी सिद्धि तथा सफलता होती है मैं उसी इन्द्र की पत्नी (अन्न उपजाने में मेघकी पत्नीके समान सहायक) सीता अर्थात् हलको बुलाता हूं। वह मेरे लिये अन्नकी रक्षा करे॥ भाव यह है कि उत्तम कृषि द्वारा अन्न उपजाने से ही गृहस्थोंके सब वैदिक लौकिक कर्म सिद्ध हो सकते हैं ॥ ४ ॥

ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्त्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा ॥ इदं सीतायै इदन्न मम ॥ ५ ॥ पार० कां० २। कं० १७ ॥

घोड़े, गाय आदि पशुओं और सत्य व्यवहार से युक्त जो पृथिवी निरालस हो कर सब प्राणियों का पालन पोषण करती है, मैं उसी उपजाऊ और खेतोंसे हरी भरी हुई भूमिको यहां बुलाता हूं। वह मेरे दुःखोंको दूर करे। अभिप्राय यह है कि इस मंत्रमें वर्णित गुण-युक्त होने से ही भूमि द्वारा अभीष्ट ऐश्वर्य की प्राप्ति हो सकती है ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों से प्रधान होम की ५ (पांच) आज्याहुति करके—

ओं सीतायै स्वाहा। ओं प्रजायै स्वाहा। ओं शमायै स्वाहा। ओं भूत्यै स्वाहा ॥ पार० कां० २। कं० १७ ॥

हल, प्रजा (संतान), शान्ति और ऐश्वर्यके लिये ये आहुतियां हैं॥

इन ४ (चार) मन्त्रों से ४ (चार), और पृष्ठ २४ में लिखे (यदस्य०) मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति एक, ऐसे ५ (पांच) स्थालीपाक की आहुति देके, पश्चात् पृष्ठ २४-२५ में लिखे प्रमाणे अष्टाज्याहुति, व्याहृति आहुति ४ (चार) ऐसे १२ (बारह) आज्याहुति देके, पृष्ठ २७-२८ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान, ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके यज्ञ की समाप्ति करें।

अथ शालाकर्मविधिं वक्ष्यामः

शाला उसको कहते हैं जो मनुष्य और पश्वादि के रहने अथवा पदार्थ रखने के अर्थ गृह वा स्थानविशेष बनाते हैं। इसके दो विषय हैं एक प्रमाण और दूसरा विधि। उसमें से प्रथम प्रमाण और पश्चात् विधि लिखेंगे ॥

अत्र प्रमाणानि—उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्वावाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ३। मं० १ ॥

अर्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई किसी प्रकार का घर बनावे तो वह (उपमिताम्) सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त कि जिसको देख के विद्वान् लोग सराहना करें, (प्रतिमिताम्) प्रतिमान अर्थात् एक द्वार के सामने दूसरा द्वार कोणें और कक्षा भी सन्मुख हों, (अथो) इसके अनन्तर (परिमिताम्) वह शाला चारों ओर के परिमाण से समचौरस हो, (उत) और (शालायाः) शाला (विश्ववारायाः) अर्थात् उस घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों, (नद्धानि) उसके बन्धन और चिनाई दृढ हों। हे मनुष्यो ! ऐसी शाला को जैसे हम शिल्पी लोग (विचृतामसि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित अर्थात् बन्धनयुक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १ ॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले ॥ २ ॥
अथर्व० कां० ९। सू० ३। मं० ७ ॥

उस घरमें एक (हविर्धानम्) होम करनेके पदार्थ रखनेका स्थान, (अग्निशालम्) अग्निहोत्रका स्थान (पत्नीनाम्) स्त्रियोंके (सदनम्) रहनेका (सदः) स्थान, और (देवानाम्) पुरुषों और विद्वानों के रहने, बैठने, मेल मिलाप करने और सभा का (सदः) स्थान तथा स्नान भोजन ध्यान आदि का भी पृथक २ एक २ घर बनावे, इस प्रकार की (देवि) दिव्य कमनीय (शाले) बनाई हुई शाला (असि) सुखदायक होती है ॥२॥

अन्तरा द्याञ्च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रतिगृह्णामि तस्मै ॥३॥
अथर्व० कां० ९। सू० ३। मंत्र १५ ॥

अर्थः—उस शाला में (अन्तरा) भिन्न २ (पृथिवीम्) शुद्ध भूमि अर्थात् चारों ओर स्थान शुद्ध हों, (च) और (द्याम्) जिस में सूर्य का प्रतिभास आवे वैसी प्रकाश स्वरूप भूमि के समान दृढ शाला बनावे, (च) और (यत्) जो (व्यचः) उसकी व्याप्ति अर्थात् विस्तार है स्त्री ! (ते) तेरे लिये है (तेन) उसी से युक्त (इमाम्) इस (शालाम) घर को बनाता हूं, तू इस में निवास कर और मैं भी निवास के लिये इस को (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं, (यत्) जो उसके बीच में (अन्तरिक्षम्) पुष्कल अवकाश और (रजसः) उस घर का (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त लंबी ऊंची छत और (उदरम्) भीतर का प्रसार विस्तार युक्त होवे (तत्) उसको (शेवधिभ्यः) सुख के आधार रूप अनेक कक्षाओं से सुशोभित (अहम्) मैं (कृण्वे) करता हूं, (तेन) उस पूर्वोक्त लक्षण मात्र से युक्त (शालाम्) शाला को (तस्मै) उस गृहाश्रम के सब व्यवहारों के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥३॥

ऊर्ज्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता । विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० १६ ॥

जो (शाले) शाला (ऊर्ज्जस्वती) बहुत बलारोग्य पराक्रम को बढ़ाने वाली और धन धान्यसे पूरित सम्बन्ध वाली, (पयस्वती) जल दूध रसादि से परिपूर्ण, (पृथिव्याम्) पृथ्वी में (मिता) परिमाण युक्त, (निमिता) निर्मित की हुई, (विश्वान्नम्) सम्पूर्ण अन्नादि ऐश्वर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करने हारों को रोगादि से (मा, हिंसीः) पीड़ित न करे वैसा घर बनाना चाहिये ॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० १६ ॥

अर्थः—(अमृतौ) स्वरूप से नाश रहित (इन्द्राग्नी) वायु और पावक (कविभिः) उत्तम विद्वान् शिल्पियों ने (मिताम्) प्रमाण युक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी (निमिताम्) बनाई हुई (शालाम्) शाला को और (ब्रह्मणा) चारों वेदों के जानने हारे विद्वान् ने सब ऋतुओं में सुख देने हारी (निमिताम्) बनाई (शालाम्) शाला को प्राप्त होकर रहनेवालों की (रक्षताम्) रक्षा करें । अर्थात् चारों ओर का शुद्ध वायु आके अशुद्ध वायु को निकालता रहे और जिसमें सुगन्ध्यादि घृत का होम किया जाय वह अग्नि दुर्गन्ध को निकाल सुगन्ध को स्थापन करे । वह (सोम्यम्) ऐश्वर्य आरोग्य सर्वदा सुखदायक (सदः) रहने के लिये उत्तम घर है । उसी को निवास के लिये ग्रहण करे ॥ ५ ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते । अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवाशये ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० २१ ॥

अर्थः—हे मनुष्यों ! (या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक और पूर्व पश्चिम में एक २ शालायुक्त घर अथवा (चतुष्पक्षा) जिसके पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर में एक २ शाला और इनके मध्य में पांचवीं बड़ी शाला वा (षट्पक्षा) एक २ बीच में बड़ी शाला और दो २ पूर्व पश्चिम तथा एक २ उत्तर दक्षिण में शाला हों, (या) जो ऐसी शाला (निमीयते) बनाई जाती है वह उत्तम होती है, और इससे भी जो (अष्टापक्षाम्) चारों ओर दो २ शाला और उनके बीच में एक नवमी शाला हो अथवा (दशपक्षाम्) जिसके मध्यमें दो शाला और उनके चारों दिशाओंमें दो २ शाला हों, उस (मानस्य) परिमाण के योग से बनाई हुई (शालाम्) शालाको जैसे (पत्नीम्) पत्नीको प्राप्त होके (अग्निः) अग्निमय आसव और वीर्य (गर्भ इव) गर्भरूप होके (आशये) गर्भा-

शय में ठहरता है वैसे सब शालाओं के द्वार दो २ हाथ पर सूधे बराबर हों, और जिसकी चारों ओर की शालाओं का परिमाण तीन २ गज, और मध्य की शालाओं का छः २ गज से परिमाण न्यून न हो, और चार २ गज चारों दिशाओं की ओर, आठ २ गज मध्य की शालाओं का परिमाण हो, अथवा मध्य की शालाओं का दश २ गज अर्थात् बीस २ हाथ से विस्तार अधिक न हो, बनाकर गृहस्थों को रहना चाहिये। यदि वह सभा का स्थान हो तो बाहर की ओर द्वारों में चारों ओर कपाट और मध्य में गोल २ स्तम्भे बनाकर चारों ओर खुला बनाना चाहिये कि जिसके कपाट खोलने से चारों ओर का वायु उसमें आये और सब घरोंके चारों ओर वायु आनेके लिये अवकाश तथा वृक्ष फल और पुष्करणी कुंड भी होने चाहिये वैसे घरों में सब लोग रहें ॥ ६ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम्। अग्निर्ह्य१न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ ७ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० २२ ॥

अर्थः—जो (शाले) शालागृह (प्रतीचीनः) पूर्वाभिमुख तथा जो गृह (प्रतीचीम्) पश्चिम द्वारा युक्त (अहिंसतीम्) हिंसादिदोष रहित अर्थात् पश्चिम द्वार के सन्मुख पूर्व द्वार जिसमें (हि) निश्चय कर (अन्तः) बीच में (अग्निः) अग्नि का घर (च) और (आपः) जल का स्थान (ऋतस्य) और सत्य के ध्यान के लिये एक स्थान (प्रथमा) प्रथम (द्वाः) द्वार है मैं (त्वा) उस शाला को (प्रैमि) प्रकर्षतासे प्राप्त होता हूं॥ ७॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव। वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० २४ ॥

अर्थः—हे शिल्पी लोगो! जैसे (नः) हमारी (शाले) शाला अर्थात् गृह (पाशम्) बन्धन को (मा, प्रतिमुचः) कभी न छोड़ें जिसमें (गुरुर्भारः) बड़ा भार (लघुर्भव) छोटा होवे वैसी बनाओ (त्वा) उस शाला को (यत्र, कामम्) जहां जैसी कामना हो वहां वैसी हम लोग (वधूमिव) स्त्री के समान (भरामसि) स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ८ ॥

इस प्रकार प्रमाणों के अनुसार जब घर बन चुके तब प्रवेश करते समय क्या २ विधि करना सो नीचे लिखे प्रमाणे जानो ॥

अथ विधिः—जब घर बन चुके तब उसकी शुद्धि अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं के बाहरले द्वारों में चार वेदी और एक वेदी घर के मध्य बनावें अथवा तांबे का वेदी के समान कुण्ड बनवा लेवे कि जिससे सब ठिकाने एक कुण्ड ही में काम होजावे। सब प्रकार की सामग्री अर्थात् पृष्ठ १५-१६ में लिखे प्रमाणे समिधा, घृत, चावल, मिष्ट, सुगन्ध,

पुष्टिकारक द्रव्यों को लेके शोधन कर प्रथम दिन रख लेवे। जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन गृहप्रतिष्ठा करे। वहां ऋत्विज्, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का वरण करे जो कि धर्मात्मा विद्वान् हों, उनमें से होता का आसन पश्चिम और उस पर वह पूर्वाभिमुख, अध्वर्यु का आसन उत्तर में उस पर वह दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का पूर्व दिशा में आसन उसपर वह पश्चिमाभिमुख, और ब्रह्माका दक्षिण दिशामें उत्तमासन बिछा कर उत्तराभिमुख, इस प्रकार चारों आसनों पर चारों पुरुषोंको बैठावे और गृहपति सर्वत्र पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठा करे, ऐसे ही घर के मध्य वेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे, पश्चात् निष्क्रम्यद्वार जिस द्वार से मुख्य करके घरसे निकलना और प्रवेश करना होवे अर्थात् जो मुख्य द्वार हो उसी द्वार के समीप ब्रह्मा सहित बाहर ठहर कर—

ओं अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥

न गिरने वाली, स्थिर और भूमिमें गडी हुई ध्वजाके लिये यह आहुति है ॥

इससे एक आहुति देकर, ध्वजा का स्तम्भ जिसमें ध्वजा लगाई हो खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे, तथा कार्यकर्त्ता गृहपति स्तम्भ खड़ा करके उसके मूल में जल से सेचन करे जिससे वह दृढ़ रहे। पुनः द्वार के सामने बाहर जाकर नीचे लिखे चार मन्त्रों से जल सेचन करे ॥

ओं इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्। इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा ॥ १ ॥ पार० कां० ३। कं० ४ ॥

मैं यहां पर इस शाला अर्थात् घरको बनाता हूं। यह घर पृथिवी का केन्द्र स्वरूप, धन धान्य से भरपूर, समृद्धि देने वाला और दृढ़ है। मेरी घृतादि द्रव्यों द्वारा पुष्टि करता हुआ यह स्वयं भी विघ्न बाधाओंसे बचकर सदा खड़ा रहे ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने जल छिटकावे।

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। आ त्वा शिशुराक्रन्दन्त्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥ २ ॥ पार० कां० ३। कं० ४॥

हे घर, तेरे भीतर गाय घोडे आदि पशु वर्त्तमान रहें। तेरे भीतर असत्य व्यवहार कभी न हो। तुझसे हम बड़े सौभाग्य वाले बन सकें। और तेरी तरफ को बालक, बछड़े और गायें आदि तुझे अपना आश्रय-स्थान समझकर प्रसन्नता से बोलते चिल्लाते दौड़ते हुए आवें ॥ २ ॥

इस मन्त्र से दक्षिण द्वार ॥

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह। आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ

तेरे भीतर तरुण कुमार, रम्भता हुआ गायका बछड़ा, भरे हुए पानीके घड़े और अच्छे वस्त्र

आदध्नः कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासाः रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥३॥ पार० कां० ३ । कं०४ ॥

आदिसे सुभूषित, धार्मिक गृहपति की पत्नी, दूध दही के कलश लेकर आवे। हमको तुमसे बलकारक धनकी प्राप्ति हो ॥३॥

इस मन्त्र से पश्चिम द्वार ॥

अश्वावदूर्जस्वत्पर्णं वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥ ४ ॥

गाय, घोड़े आदि पशुओं और बलसे युक्त यह घर हम को आश्रय देता हुआ हमें चारों ओर से इस प्रकार धन दे जैसे वृक्षके पत्तेमें रस सब ओरसे आता है ॥४॥

इस मन्त्र से उत्तर द्वार के सामने जल छिड़कावे। तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदलीस्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगाके, पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन् ! प्रविशामीति ॥ — हे ब्रह्मन, मैं घर में जाता हूं ॥

ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्माः—

वरं भवान् प्रविशतु ॥ — अच्छा, आप भीतर जाइये ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से—

ओं ऋतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ॥ — मैं सत्य और कल्याण के देने वाले घरमें जाता हूं।

इस वाक्य को बोल के भीतर प्रवेश करे। और जो घृत गरम कर, छान कर, सुगन्ध मिलाकर रक्खा हो उसको पात्र में लेके जिस द्वार से प्रथम प्रवेश करे उसी द्वार से प्रवेश करके पृष्ठ २०-२१ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान, जलप्रोक्षण, आचमन करके पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे घृत की आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार), और व्याहृति आहुति ४ (चार), नवमी स्विष्टकृत् आज्याहुति एक अर्थात् दिशाओं की द्वारस्थ वेदियों में अग्न्याधान से लेके स्विष्टकृत् आहुति पर्यन्त विधि करके पश्चात् पूर्वदिशाद्वारस्थ कुण्ड में—

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा * ॥

घरकी पूर्व दिशा में महिमा बढ़े। इस लिये यह आहुति पूर्व दिशाके पूजनीय देवों को समर्पित है ॥

इन मन्त्रों से पूर्वद्वारस्थ वेदी में दो घृताहुति देवे। वैसे ही—

---

* "प्राच्या दिशः" से लेकर "ओं दिशो दिशः" तककी सब विधि आश्वलायन गृह्यसूत्रसे ली गयी है ॥

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी दक्षिण दिशाकी महिमा० ॥

इन दो मन्त्रों से दक्षिणद्वारस्थ वेदी में एक २ मन्त्र करके दो आज्याहुति और:—

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी पश्चिम दिशाकी महिमा०॥

इन दो मन्त्रों से दो आज्याहुति पश्चिमदिशाद्वारस्थ कुण्ड में देवे ।

ओं उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी उत्तर दिशाकी महिमा०॥

इनसे उत्तरदिशास्थ वेदी में दो आज्याहुति देवे, पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जाके स्व २ दिशा में बैठ के—

ओं ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी पाताल दिशाकी महिमा०॥

इन से मध्य वेदी में दो आज्याहुति ॥

ओं ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी ऊपरकी दिशाकी महिमा०॥

इनसे भी दो आहुति मध्यवेदी में और—

ओं दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥ घरकी सब दिशाओंको महिमा०॥

इनसे भी दो आज्याहुति मध्यस्थ वेदीमें देके, पुनः पूर्व दिशास्थ द्वारस्थ वेदीमें अग्निको प्रज्वलित करके, वेदीसे दक्षिण भागमें ब्रह्मासन तथा होता आदिके पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा, उसी वेदीके उत्तर भागमें एक कलश स्थापन कर, पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे स्थाली-

पाक बना के पृथक निष्क्रम्यद्वार के समीप जा ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति मध्य शाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ के संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान जिसमें कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्रमें ले के सबके सामने एक पात्र भरके रक्खे और चमसा में ले के:—

ओं वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ १ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० १ ॥

हे वास्तोष्पति (गृहादिके शिल्पी), तू हमसे प्रतिज्ञा कर कि हमारा घर उत्तम और रोगरहित बनावेगा। हम तुझसे जो चाहते हैं तू हमें वही दे। हमारे बालकों और पशुओं सबके लिये तू कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व स्वाहा ॥ २ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० २ ॥

हे वास्तोष्पते, हमें तू अभीष्टका दान करता हुआ प्राप्त हो। हे ऐश्वर्य शालिन, तू हमारी समृद्धि करता हुआ गाय घोड़े आदि पशुओं सहित आ। हम कभी बूढ़े न होते हुए तेरे साथ मित्रभाव से रहें। तू हमें ऐसे प्राप्त हो जैसे पिता पुत्रोंके पास आता है ॥ २ ॥

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० ३ ॥

हे वास्तोष्पते, हम सब शांति पूर्वक सम्मिलित होकर गान द्वारा तेरे गुणकी स्तुति करते हैं। तू धर्म और संसार दोनों के कार्यों में हमारी रक्षा कर। आप हमारी सदा स्वस्ति कीजिये ॥ ३ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० १ ॥

हे रोगनाशक वास्तोष्पते (सेनिटरी इन्स्पेकटर) रोगों के सब रूपोंका निरीक्षण करता हुआ तू हमारा मित्र और सुखदाता होकर हमें प्राप्त हो ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रोंसे ४ (चार) आज्याहुति देके जो स्थालीपाक अर्थात् भात बनाया हो उसको दूसरे कांसे के पात्र में लेके उस पर यथायोग्य घृत सेचन करके अपने २ सामने रक्खे और पृथक् २ थोड़ा २ लेकर:—

ओं अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वांश्च देवानुपह्वये । सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ १ ॥

अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, विश्वेदेव, सरस्वती, वाजी इन सब देवों (भौतिक शक्तियों) की मैं उपासना करता हूं। ये मेरे घरको सुख, अन्न और धनसे युक्त बनावें ॥ १ ॥

सर्पदेवजनान्त्सर्वान्हिमवन्तं सुदर्शनम्। वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह। एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ २ ॥

वसु, रुद्र, आदित्य, ईशान, इन सबको मैं स्तुतिपूर्वक बुलाता हूं। ये सब मेरे घरको सुख, अन्न और धन से युक्त करें॥ २॥

पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ माध्यंदिना सह। प्रदोषमर्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ३ ॥

सुबह, शाम, दोपहर, तीसरे पहर, दिन छिपने और आधी रातके समय सदा मेरे घरमें सुख समृद्धि बने रहे॥ ३॥

ओं कर्त्तारञ्च विकर्त्तारं विश्वकर्माणमोषधीश्च वनस्पतीन्। एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ४ ॥

घरके बनाने वाले यावन्मात्र शिल्पी और ओषधियां ऐसी कृपा करें कि मेरे घरमें सदा सुख समृद्धि बनी रहे॥ ४॥

धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ५ ॥

सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक, पोषक और सब धनोंका स्वामी परमेश्वर मेरे घरमें सदा सुख समृद्धि बनाये रखे॥ ५॥

स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥६॥

ब्रह्म और प्रजापति और सब देवता मेरे घरको सुख शान्तिमय बनाने की कृपा करें॥ ६॥

स्थालीपाक अर्थात् घृतयुक्त भातकी इन छः मन्त्रोंसे छः आहुति देकर कांस्यपात्रमें उदुम्बर, गूलर पलाश के पत्ते शाद्वल तृण विशेष, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को ले के उन सब वस्तुओं को मिला कर—

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम्॥

इस मन्त्र से पूर्वद्वार

पूर्व दिशामें इस घरकी लक्ष्मी और यश द्वारा रक्षा होती रहे॥

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम्॥

इससे दक्षिण द्वार

दक्षिण दिशामें मेरे घरकी यज्ञ और दक्षिणा द्वारा रक्षा होती रहे॥

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम्॥

पश्चिम दिशामें मेरे घरकी ब्राह्मण और अन्न रक्षा करें॥

इससे पश्चिम द्वार

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम् ॥

उत्तर दिशामें इस घरकी बल और सत्यव्यवहार द्वारा रक्षा हो ॥

इससे उत्तर द्वार के समीप उनको बखेरे और जल प्रोक्षण भी करे ॥

केता च मां सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥ १ ॥

मेरे सामनेकी ओर ज्ञान और विज्ञान मेरी रक्षा करें। अग्नि और सूर्य सब संसार के प्रकाशक होने के कारण ज्ञान और विज्ञानके उपलक्षण हैं। मैं उन्हीं को उपासना करके उन्हें नमस्कार करता हूं। वे मेरी सामने की ओर रक्षा करें ॥

इससे पूर्व दिशा में परमात्मा का उपस्थान करके, दक्षिण द्वारके सामने दक्षिणाभिमुख होके—

दक्षिणतो गोपायमानँ च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानँ रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥ २ ॥

मेरे दाहिनी ओर अग्नि और सूय द्वारा जो रक्षित होते हैं ऐसे रात और दिन मेरी रक्षा करें। मैं उनको उपासना द्वारा नमस्कार करता हूं। वे दाहिनी ओर मेरी रक्षा करें ॥

इस प्रकार जगदीश का उपस्थान करके, पश्चिम द्वारके सामने पश्चिमाभिमुख होके—

दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ॥ ३ ॥

तेज और जागरण अर्थात् चुस्ती को शक्तियां मेरी पश्चाद् भागमें रक्षा करें। अन्न ही सब तेजोंका उत्पादक होनेसे तेजका और चुस्ती देने वाला होने से प्राण चुस्ती का उपलक्षण है। मैं इन दोनों को नमस्कार करता हू। ये दोनों मेरी पश्चात् भागमें रक्षा करें ॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके, उत्तर दिशा में उत्तर द्वार के सामने उत्तराभिमुख खड़े रह के—

अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति ॥

अस्वप्न (अनिद्रा) और अनवद्राण (पड़े रहना अर्थात् अतिनिद्रा) ये मेरी बायीं ओर रक्षा करें। रात्रिकालका उपलक्षण होने से चन्द्रमा अनिद्रा से और चंचलताका उपलक्षण होनेसे वायु अतिनिद्रा से मुझको बचावें। मैं इन दोनों को नमस्कार करता हूं ॥

धर्मस्थूणाराजं श्रीसूर्यामहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहा,वसुमतो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणाः। सखायः साधुसंमृतस्त्वां त्वा शाले अरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः ॥

धर्मका चिह्नस्वरूप ध्वजा, लक्ष्मी, सूय, दिन रात, दरवाजेके किवाड, गृहपतिके धन धान्य से युक्त और हवादार घर, इन सबको मैं अपने बाल बच्चों पशुओं और मेरे पास जो कुछ है उस सब के सहित प्राप्त होकर प्रार्थना करता हूं कि ये मेरे इस घरके प्रति मित्र भावसे और साधु सद्व्यवहार से रहें। हमारे घरमें बाल बच्चे आदि पाप से मुक्त रहें ॥

इस प्रकार उत्तर दिशामें सर्वाधिष्ठाता परमात्माका उपस्थान करके सुपात्र वेदवित धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन कराके यथायोग्य सत्कार करके दक्षिणा दे, पुरुषोंको पुरुष और स्त्रियोंको स्त्री प्रसन्नतापूर्वक विदा करें और वे जाते समय गृहपति और गृहपत्नी आदि को—

सर्वे भवन्तोऽत्रानन्दिताः सदा भूयासुः ॥

आप सब यहां सदा आनन्दित रहिये।

इस प्रकार आशीर्वाद दे के अपने २ घर को जावें। इसी प्रकार आराम आदि की भी प्रतिष्ठा करें। इसमें इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु वगीचे को जावे उसी ओर होम करे कि जिसका सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे। यदि उसमें घर बनाना हो तो शाला के समान उसकी भी प्रतिष्ठा करे ॥

इति शालादिसंस्कारविधिः

इस प्रकार गृहादि की रचना करके गृहाश्रम में जो २ अपने २ वर्णके अनुकूल कर्त्तव्य कर्म हैं उन को यथावत् करें ॥

अथ ब्राह्मणस्वरूपलक्षणम् ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥ मनु० अ० १ । ८८ ॥

अर्थः—१ (एक)—निष्कपट होके प्रीतिसे पुरुष पुरुषोंको और स्त्री स्त्रियोंको पढ़ावें। २ (दो)—पूर्ण विद्या पढ़ें। ३ (तीन)—अग्निहोत्रादि यज्ञ करें। ४ (चौथा)—यज्ञ करावें। ५ (पांच) विद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें। ६ (छठा) न्याय में धनोपार्जन करनेवाले गृहस्थों से दान लेवे भी। इनमें से ३ (तीन) कर्म पढ़ना,

यज्ञ करना, दान देना * धर्ममें। और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना जीविका है। परन्तु—

प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ॥ मनु० ॥

जो दान लेना है वह नीच कर्म है। किन्तु पढ़ा के और यज्ञ करा के जीविका करनी उत्तम है ॥ १ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥ गीता० अ०१८।४२ ॥

(शमः) मनको अधर्म में न जाने दे किन्तु अधर्म करने की इच्छा भी न उठने देवे (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से सदा दूर रक्खे दूर, रख के धर्म ही के बीच में प्रवृत्त रक्खे (तपः) ब्रह्मचर्य, विद्या, योगाभ्यास की सिद्धि के लिये शीत, उष्ण, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, तृषा मानापमान आदि द्वन्द्व का सहना (शौचम्) राग, द्वेष, मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को सदा पवित्र रखना (क्षान्तिः) क्षमा अर्थात् कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावे तो भी उन पर कृपालु रहकर क्रोधादि का न करना (आर्जवम्) निरभिमान रहना दम्भ स्वात्मश्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल शुद्ध पवित्र भाव रखना (ज्ञानम्) सब शास्त्रोंको पढ़ के विचार कर उनके शब्दार्थसम्बन्धों को यथावत् जान कर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य करना (विज्ञानम्) पृथिवी से ले के परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को जान और क्रियाकुशलता तथा योगाभ्याससे साक्षात् करके यथावत् उपकार ग्रहण करना कराना (आस्तिक्यम्) परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक, परजन्म, पूर्वजन्म, कर्मफल और मुक्ति से विमुख कभी न होना। ये नव कर्म गुण धर्म में समझना। सब से उत्तम गुण कर्म स्वभाव को धारण करना ये गुण कर्म जिन व्यक्तियों में हों वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें। विवाह भी इन्हीं वर्ण के गुण कर्म स्वभावों को मिला ही के करें। मनुष्यमात्र में से इन्हीं को ब्राह्मणवर्ण का अधिकार होवे ॥ २ ॥

* धर्म नाम न्यायाचरण। न्याय नाम पक्षपात छोड़ के वर्तना। पक्षपात छोड़ना नाम सर्वदा अहिंसादि निर्वैरता सत्यभाषणादि में स्थिर रहकर, हिंसा द्वेषादि और मिथ्याभाषणादि से सदा पृथक् रहना। सब मनुष्यों का यही एक धर्म है। किन्तु जो २ धर्म के लक्षण वर्ण-कर्मों में पृथक् २ आते हैं इसीसे चार वर्ण पृथक् २ गिने जाते हैं ॥

अथ क्षत्रियस्वरूपलक्षणम् ।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ १ ॥ मनु० अ० १ । ८९ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥ गीता० अ० १८ । ४३ ॥

अर्थः—दीर्घ ब्रह्मचर्य से (अध्ययनम्) साङ्गोपाङ्ग वेदादि शास्त्रों को यथावत् पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञोंका करना (दानम्) सुपात्रोंको विद्या सुवर्णआदि और प्रजाको अभयदान देना (प्रजानां रक्षणम्) प्रजाओं का सब प्रकार से सर्वदा यथावत् पालन यह धर्म क्षत्रियों के धर्म के लक्षणों में, और शस्त्रविद्या का पढ़ाना, न्याय घर और सेना में जीविका करना क्षत्रियों की जीविका है (विषयेष्वप्रसक्तिः) विषयों में अनासक्त हो के सदा जितेन्द्रिय रहना लोभ व्यभिचार मद्यपानादि नशा आदि दुर्व्यसनों से पृथक् रहकर विनय सुशीलतादि शुभ कर्मों में सदा प्रवृत्त रहना (शौर्यम्) शस्त्र संग्राम मृत्यु और शस्त्र प्रहारादि से न डरना (तेजः) प्रगल्भ उत्तम प्रतापी होकर किसी के सामने दीन वा भीरु न होना (धृतिः) चाहे कितनी आपत्, विपत्, क्लेश, दुःख प्राप्त हो तथापि धैर्य रखके कभी न घबराना (दाक्ष्यम्) संग्राम, वाग्युद्ध, दूतत्व, विचार आदि सब में अतिचतुर बुद्धिमान् होना (युद्धे चाप्यपलानयम्) युद्ध में सदा उद्यत रहना युद्धसे घबरा कर शत्रु के वश में कभी न होना (दानम्) इसका अर्थ प्रथम श्लोक में आगया (ईश्वरभावः) जैसे परमेश्वर सब के ऊपर दया करके, पितृवत् वर्त्तमान, पक्षपात छोड़ कर; धर्माऽधर्म करने वालोंको यथायोग्य सुख दुःखरूप फल देता और अपने सर्वज्ञता आदि साधनों से सब का अन्तर्यामी होकर सब के अच्छे बुरे कर्मों को यथावत् देखता है, वैसे प्रजा के साथ वर्त्त कर गुप्त दूत आदि से अपने को सब प्रजा वा राज पुरुषों के अच्छे बुरे कर्मों से सदा ज्ञात रखना, रात दिन न्याय करने और प्रजा को यथावत् सुख देने, श्रेष्ठों का मान और दुष्टों को दण्ड करनेमें सदा प्रवृत्त रहना, और सब प्रकार से अपने शरीर को रोग रहित, बलिष्ठ, दृढ़, तेजस्वी दीर्घायु रखके आत्माको न्याय धर्ममें चलाकर कृतकृत्य करना आदि गुण कर्मों का योग जिस व्यक्ति में हो वह क्षत्रिय और क्षत्रिया होवे। इनका भी इन्हीं गुण कर्मों के मेल से विवाह करना। और जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावे वैसे ही राजा पुरुषों और राणी स्त्रियों की न्याय तथा उन्नति सदा किया करें। जो क्षत्रिय राजा न हों वे भी राज में ही यथाधिकार से नौकरी किया करें ॥

अथ वैश्यस्वरूपलक्षणम्

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥१॥ मनु० अ० १ । ९० ॥

अर्थः—(अध्ययनम्) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञोंका करना (दानम्) अन्नादि का दान देना ये तीन धर्म के लक्षण और (पशूनां रक्षणम्) गाय आदि पशुओं का पालन करना उनसे दुग्धादि का बेचना (वणिक्पथम्) नाना देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भ विद्या, भूमि, बीज आदिके गुण जानना और सब पदार्थों के भावाभाव समझना (कुसीदम्) व्याज का लेना * (कृषिमेव च) खेतीकी विद्याका जानना, अन्न आदिकी रक्षा, खात और भूमिकी परीक्षा, जोतना बोना आदि व्यवहारका जानना ये चार कर्म वैश्य की जीविका। ये गुण कर्म जिस व्यक्ति में हों वह वैश्य वैश्या। और इन्हीं की परस्पर परीक्षा और योग से विवाह होना चाहिये ॥ १ ॥

अथ शूद्र स्वरूपलक्षणम्

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १ ॥ मनु० अ० १ । ९१ ॥

अर्थः—(प्रभुः) परमेश्वर ने (शूद्रस्य) जो विद्याहीन, जिसको पढ़नेसे भी विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवामें कुशल हो उस शूद्र के लिये (एतेषामेव वर्णानाम्) इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों की (अनसूयया) निन्दा से रहित प्रीति से सेवा करना (एकमेव कर्म) यही एक कर्म (समादिशत्) करने की आज्ञा दी है। ये मूर्खत्वादि गुण और सेवा आदि कर्म जिस व्यक्तिमें हों वह शूद्र और शूद्रा है। इन्हीं की परीक्षा से इन का विवाह और इनको अधिकार भी ऐसा ही होना चाहिये। इन गुण कर्मों के योग हीसे चारों वर्ण होवें तो उस कुल देश और मनुष्यसमुदायकी बड़ी उन्नति होवे और जिन का जन्म जिस वर्ण में हो उसी के सदृश गुण कर्म स्वभाव हों तो अतिविशेष है ॥ १ ॥

अब सब ब्राह्मणादि वर्णवाले मनुष्य लोग अपने २ कर्मों में निम्नलिखित रीति से वर्त्तें ॥

---

* सवा रुपये सैकड़े से अधिक, चार आने से न्यून व्याज न लेवे न देवे। जब दूना धन आजाय उससे आगे कौड़ी न लेवे न देवे। जितना न्यून व्याज लेवेगा उतना ही उसका धन बढ़ेगा और कभी धनका नाश और कुसन्तान उसके कुल में न होंगे॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १ ॥ मनु० अ० ४ । १४॥

अर्थः—ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त अपने कर्म को आलस्य छोड़ के नित्य किया करें उस को अपने सामर्थ्य के अनुसार करते हुए, मुक्ति पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

नेहेतार्थान् प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ २ ॥ मनु० अ० ४ । १५ ॥

गृहस्थ कभी किसी दुष्टके प्रसंगसे द्रव्यसंचय न करे, न विरुद्ध कर्म से, न विद्यमान पदार्थ होते हुए उन को गुप्त रख के दूसरे से छल करके और चाहे कितना ही दुःख पड़े तथापि अधर्म से द्रव्य सञ्चय कभी न करे ॥ २ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत् ॥ ३ ॥ मनु०अ०४ । १६ ॥

अर्थः— इन्द्रियों के विषयों में काम से कभी न फँसे,और विषयों की अत्यन्त प्रसक्ति अर्थात् प्रसंग को मन से अच्छे प्रकार दूर करता रहे ॥ ३ ॥

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाऽध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥४॥ मनु०अ० ४ । १७ ॥

जो स्वाध्याय और धर्मविरोधी व्यवहार वा पदार्थ हैं उन सबको छोड़ देवे, जिस किसी प्रकार से विद्या को पढ़ाते रहना ही गृहस्थ को कृतकृत्य होना है ॥ ४ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥५॥ मनु०अ० ४ । १९॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम जो धर्म, धन और बुद्ध्यादि को अत्यन्त शीघ्र बढ़ानेहारे हितकारी शास्त्र हैं उनको और वेद के भागों की विद्याओं को नित्य देखा करो ॥ ५ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥६॥ मनु०अ० ४ । २० ॥

मनुष्य जैसे २ शास्त्र को विचारकर उसके यथार्थ भावको प्राप्त होता है वैसे २ अधिक २ जानता जाता है और इसकी प्रीति विज्ञान ही में होती जाती है ॥ ६ ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुक्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७॥ मनु०अ०४ । ७९ ॥

सज्जन गृहस्थ लोगों को योग्य है कि जो पतित दुष्ट कर्म करनेहारे हों न उनके न चांडाल न कंजर, न मूर्ख, न मिथ्याभिमानी और न नीच निश्चयवाले मनुष्यों के साथ कभी निवास करें ॥ ७ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्यो श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥८॥ मनु०अ०४ ।१३७॥

गृहस्थ लोग कभी प्रथम पुष्कल धनी हो के पश्चात् दरिद्र हो जायं उससे अपने आत्मा का अपमान न करें कि हाय हम निर्धनी हो गये इत्यादि विलाप भी न करें किन्तु मृत्यु-पर्यन्त लक्ष्मीकी उन्नति में पुरुषार्थ किया करें और लक्ष्मीको दुर्लभ न समझें ॥ ८ ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥ मनु० अ०४ । १३८ ॥

मनुष्य सदैव सत्य बोलें और दूसरे को कल्याणकारक उपदेश करें । काणे को काणा और मूर्खको मूर्ख आदि अप्रिय वचन उनके सन्मुख कभी न बोलें और जिस मिथ्या-भाषण से दूसरा प्रसन्न होता हो उसको भी न बोलें यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥१०॥ मनु०अ०४।१५४॥

अर्थः—सदा विद्यावृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उनका मान किया करें । जब वे अपने समीप आवें तब उठकर मानपूर्वक ले अपने आसन पर बैठावे और हाथ जोड़ के आप समीप बैठे, पूछे (तु) वे उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे २ जाकर नमस्ते कर विदा किया करे और वृद्ध लोग हर वार निकम्मे जहां तहां न जाया करें ॥ १० ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ मनु० अ० ४ । १५५ ॥

गृहस्थ सदा आलस्य को छोड़कर वेद और मनुस्मृति में वेदानुकूल कहे हुए अपने कर्मों में निबद्ध और धर्म का मूल सदाचार अर्थात् जो सत्य और सत्पुरुष आप्त धर्मात्मा-ओं का आचरण है उसका सेवन सदा किया करें ॥ ११ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१२॥ मनु०अ०४ । १५६ ॥

धर्माचरण ही से दीर्घायु उत्तम प्रजा और अक्षय धन को मनुष्य प्राप्त होता है और धर्माचार बुरे अधर्मयुक्त लक्षणों का नाश कर देता है ॥ १२ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥१३॥ मनु०अ० ४ । १५७ ॥

और जो दुष्टाचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र निन्दित दुःखभागी और व्याधि से अल्पायु सदा हो जाता है ॥ १३ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१४॥ मनु०अ० ४ । १५८॥

जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी होकर सदाचारयुक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोषरहित होता है वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ॥ १४ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५ ॥ मनु०अ० ४ । १५९ ॥

अर्थः—मनुष्य जो २ पराधीन कर्म उस २ को प्रयत्न से सदा छोड़े और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का सेवन प्रयत्न से किया करे ॥ १५ ॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१६॥ मनु०अ०४ । १६०॥

क्योंकि जितना परवश होना है वह सब दुःख और जितना स्वाधीन रहना है वह सब सुख कहाता है यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानो ॥ १६ ॥

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७॥ मनु०अ०४ । १७०॥

जो अधार्मिक मनुष्य है और जिसका अधर्म से संचित किया हुआ धन है और जो सदा हिंसा में अर्थात् वैर में प्रवृत्त रहता है वह इस लोक और परलोक अर्थात् परजन्म में सुख को कभी नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १७ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥१८॥ मनु०अ० ४ । १७२॥

अर्थः—मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किये हुए अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता किन्तु धीरे २ अधर्मकर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है ॥ १८ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चत्पुत्रेषु नप्तृषु ।

न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः ॥१६॥ मनु०अ०४ । १७३॥

यदि अधर्म का फल कर्त्ता की विद्यमानता में न हो तो पुत्रों और पुत्रोंके समय में न हो तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे ॥ १६ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।

शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥२०॥ मनु०अ०४ । १७५॥

इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि सत्य धर्म और आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के आचरणों और भीतर बाहरकी पवित्रता में सदा रमण करें । अपनी वाणी बाहु उदर को नियम और सत्यधर्म के साथ वर्त्तमान रख के शिष्यों को सदा शिक्षा किया करें ॥ २० ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।

धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥२१॥ मनु०अ०४ । १७६ ॥

अर्थः—जो धर्म से वर्जित धनादि पदार्थ और काम हों उनको सर्वथा शीघ्र छोड़ देवे और जो धर्माभास अर्थात् उत्तरकाल में दुःखदायक कर्म हैं और जो लोगों को निन्दित कर्म में प्रवृत्त करनेवाले कर्म हैं उनसे भी दूर रहे ॥ २१ ॥

धर्मं शनैस्संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।

परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥२२॥ मनु० अ० ४ । २३८ ॥

जैसे दीमक धीरे २ बड़े भारी घर को बना लेती हैं वैसे मनुष्य परजन्म के सहाय के लिये सब प्राणियों को पीड़ा न देकर धर्म का संचय धीरे धीरे किया करें ॥ २२ ॥

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।

निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥२३॥ मनु०अ०४ । १४४ ॥

जो मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहे वह नीच नीच पुरुषों का सम्बन्ध छोड़कर नित्य अच्छे अच्छे पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जावे ॥ २३ ॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।

तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥२४॥ मनु०अ० ४ । २५६॥

जिस वाणीमें सब व्यवहार निश्चित है वाणी ही जिनका मूल और जिस वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं जो मनुष्य उस वाणी को चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह जानो सब चोरी आदि पाप ही को करता है इसलिये मिथ्याभाषण को छोड़ के सदा सत्यभाषण ही किया करे ॥ २४ ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥२५॥ मनु० अ० २ । २८ ॥

मनुष्यों को चाहिये कि धर्म से वेदादि शास्त्रों का पठन पाठन, गायत्री प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, अग्निहोत्रादि होम, कर्मोपासना ज्ञान विद्या पौर्णमास्यादि इष्टि, पञ्च-महायज्ञ, अग्निष्टोम आदि, न्याय से राज्यपालन, सत्योपदेश और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से इस शरीर को (ब्राह्मी) अर्थात् ब्रह्मसम्बन्धी करें ॥ २५ ॥

अथ सभा०—जो २ विशेष बड़े २ काम हों जैसा कि राज्य, वे सब सभा से निश्चय करके किये जावें ।

इसमें प्रमाण—तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥

अथर्व० कां० १५ । सू० ९ । मं० २ ॥

अर्थः—(तम्) जो कि संसार में धर्म के साथ राज्यपालनादि किया जाता है उस व्यवहार को सभा और संग्राम तथा सेना सब प्रकार संचित करें ॥ १ ॥

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥

अथर्व० कां० १९ । सू० ५५ । मं० ५ ॥

हे सभ्य सभा के योग्य सभापते राजन्, तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की (पाहि) रक्षा और उन्नति किया कर (ये, च) और जो (सभ्याः) सभा के योग्य धार्मिक आप्त (सभासदः) सभासद् विद्वान लोग हैं वे भी सभा की योजना रक्षा और उससे सब की उन्नति किया करें ॥ २ ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ ३ ॥

ऋ० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ।

जो (राजाना) राजा और प्रजा के भद्र पुरुषों के दोनों समुदाय वे (विदथे) उत्तम ज्ञान और लाभप्रदायक इस जगत् अथवा संग्रामादि कार्यों में (त्रीणि) राजसभा धर्म-सभा और विद्यासभा अर्थात् विद्यादि व्यवहारों की वृद्धि के लिये ये तीन प्रकार की (सदांसि) सभा नियत कर इन्हीं से संसार की सब प्रकार की उन्नति करें ॥ ३ ॥

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।

यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुस्स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥१॥ मनु० अ० १२।१०८ ॥

अर्थः—हे गृहस्थ लोगो ! जो धर्मयुक्त व्यवहार मनुस्मृति आदि में प्रत्यक्ष न कहे हों यदि उनमें शंका होवे तो तुम जिस को शिष्ट आप्त विद्वान् कहें उसी को शंकारहित कर्त्तव्य धर्म मानो ॥ १ ॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।

ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥२॥ मनु०॥अ०१२।१०९ ॥

शिष्ट सब मनुष्यमात्र नहीं होते किन्तु जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़े हों जो श्रुति प्रमाण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से विधि व निषेध करने में समर्थ धार्मिक परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।

त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ३ ॥मनु०अ० १२।११० ॥

अर्थः—वैसे शिष्ट न्यून से न्यून १० (दश) पुरुषों की सभा होवे अथवा बड़े विद्वान् तीनों की भी सभा हो सकती है जो सभा से धर्म कर्म निश्चित हों उनका भी आचरण सब लोग करें ॥ ३ ॥

त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।

त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ४ ॥ मनु०अ०१२ । १११ ॥

उन दशों में इस प्रकार के विद्वान् होवें—३ (तीन) वेदों के विद्वान् चौथा हैतुक अर्थात् कारण अकारणका ज्ञाता, पांचवां तर्की न्यायशास्त्रवित्, छठा निरुक्तका जाननेहारा, सातवां धर्मशास्त्रवित्, आठवां ब्रह्मचारी, नववां गृहस्थ और दशवां वानप्रस्थ इन महात्माओं की सभा होवे ॥ ४ ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।

त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ५ ॥ मनु० अ० १२ । ११२ ॥

तथा ऋग्वेदवित् यजुर्वेदवित् और सामवेदवित् इन तीनों विद्वानोंकी सभा धर्म-संशय अर्थात् सब व्यवहारों के निर्णय के लिये होनी चाहिये और जितने सभा में अधिक पुरुष हों उतनी ही उत्तमता है ॥ ५ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।

स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥६॥ मनु०॥अ० १२ ।११३ ॥

द्विजों में उत्तम अर्थात् चतुर्थाश्रमी संन्यासी अकेला भी जिस धर्म व्यवहार के करने का निश्चय करे वही परमधर्म समझना किन्तु अज्ञानियों के सहस्रों लाखों और क्रोड़ों पुरुषों का कहा हुआ, धर्म व्यवहार कभी न मानना चाहिये, किन्तु धर्मात्मा विद्वानों और विशेष परमविद्वान् संन्यासी का वेदादि प्रमाणों से कहा हुआ धर्म सब को मानने योग्य है ॥ ६ ॥

यदि सभा में मतभेद हो तो बहुपक्षानुसार मानना और समपक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्षवाले बराबर उत्तम हों तो वहां संन्यासियों की सम्मति लेनी, जिधर पक्षपातरहित सर्वहितैषी संन्यासियों की सम्मति होवे वही उत्तम समझनी चाहिये।

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मस्सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ मनु० । अ० ६। ९१ ॥

अर्थः—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी आदि सब मनुष्यों को योग्य है कि निम्नलिखित धर्म का सेवन और उससे विरुद्ध अधर्म का त्याग प्रयत्न से किया करें ॥ ७ ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ८ ॥ मनु०॥ अ० ६। ९२ ॥

धर्म, न्याय नाम पक्षपात छोड़ कर सत्य ही का आचरण और असत्य का सर्वदा परित्याग रखना इस धर्म के ग्यारह लक्षण है, (अहिंसा) किसी से वैरबुद्धि करके उसके अनिष्ट करने में कभी न वर्त्तना, (धृतिः) सुख दुःख हानि लाभ में भी व्याकुल होकर धर्म न छोड़ना किन्तु धैर्य से धर्म ही में स्थिर रहना (क्षमा) निन्दा स्तुति मानापमान का सहन करके धर्म ही करना, (दमः) मन को अधर्म से सदा हटाकर धर्म ही में प्रवृत्त रखना (अस्तेयम्) मन, कर्म वचन से अन्याय और अधर्म से पराये द्रव्य का स्वीकार न करना (शौचम्) रागद्वेषादि त्यागसे आत्मा और मनको पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना (इन्द्रियनिग्रहः) श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अधर्म से हटा के धर्म ही में चलाना, (धीः) वेदादि सत्य विद्या ब्रह्मचर्य सत्सङ्ग करने और कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि त्याग से बुद्धि को सदा बढ़ाते रहना (विद्या) जिससे भूमि से ले के परमेश्वर पर्यन्त का यथार्थ बोध होता है उस विद्या को प्राप्त होना, (सत्यम्) सत्य मानना सत्य बोलना सत्य करना, (अक्रोधः) क्रोधादि दोषों को छोड़कर शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म कहाता है इस का ग्रहण, और अन्याय पक्षपातसहित आचरण अधर्म जो कि हिंसा वैरबुद्धि, अधैर्य असहन, मन को अधर्म में चलाना, चोरी करना, अपवित्र रहना, इन्द्रियों को न जीतकर अधर्म में चलाना, कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि से बुद्धि को नाश करना, अविद्या जो कि अधर्माचरण अज्ञान है उसमें फंसना, असत्य मानना असत्य बोलना, क्रोधादि दोषों में फंसकर अधर्मी दुष्टाचारी होना, ये ग्यारह अधर्म के लक्षण हैं, इनसे सदा दूर रहना चाहिये ॥ ८ ॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥
महाभारते० ॥ ९ ॥

वह सभा नहीं है जिसमें वृद्ध पुरुष न होवें, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म ही की बात नहीं बोलते, वह धर्म नहीं है जिसमें सत्य नहीं और न वह सत्य है जो कि छल से युक्त हो॥ ९॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी॥ १० ॥मनु०अ०८। १३॥

मनुष्य को योग्य है कि सभामें प्रवेश नकरे, यदि सभामें प्रवेश करे तो सत्य ही बोले, यदि सभा में बैठा हुआ भी असत्य बात को सुन के मौन रहे अथवा सत्य के विरुद्ध बोले वह मनुष्य अतिपापी है॥ १०॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥११॥ मनु०अ० ८।१२॥

अधर्म से धर्म घायल होकर जिस सभा में प्राप्त होवे उसके घाव को यदि सभासद् न पूर देवें तो निश्चय जानो कि उस सभा में सब सभासद् ही घायल पड़े हैं॥ ११॥

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत॥ १२ ॥ मनु० ॥ अ० २। १॥

जिसको सत्पुरुष रागद्वेषरहित विद्वान् अपने हृदय से अनुकूल जानकर सेवन करते हैं उसी पूर्वोक्त को तुम लोग धर्म जानो॥ १२॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोवधीत्॥ १३ ॥ मनु०अ०८।१५॥

जो पुरुष धर्मका नाश करता है उसीका नाश धर्म कर देता है और जो धर्मकी रक्षा करता है उसकी धर्म भी रक्षा करता है इसलिये मारा हुआ धर्म कभी हमको मार डाले इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिये॥ १३॥

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥ १४ ॥ मनु० ॥अ० ८। १६॥

जो सुखकी वृष्टि करनेहारा सब ऐश्वर्य का दाता धर्म है उसका जो लोप करता है उसको विद्वान् लोग वृषल अर्थात् नीच समझते हैं॥ १४॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥
॥ १५ ॥ महाभारते ॥

अर्थः — मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से कामना सिद्धि होने के कारण से, वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी, धर्म का त्याग कभी न करें और न लोभ से, चाहे झूठ अधर्मसे चक्रवर्त्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्त्ती राज्य को भी ग्रहण न करें । चाहे भोजन छादन जलपान आदि की जीविका भी अधर्म से हो सके वा प्राण जाते हों परन्तु जीविका के लिये भी धर्म को कभी न छोड़े । क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं । अनित्य के लिये नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है । इस धर्मका हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होता है वह भी अनित्य है । धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्त्तमान हो कर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते ॥ १५ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १६ ॥ मनु० ॥ अ० ८।१४ ॥

जिस सभा में बैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है उस सभा में सब सभासद मरे से ही हैं ॥ १६ ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीस्समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १७ ॥
भर्तृहरिः ॥

सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिये कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में सब वर्त्तनेहारे चतुर पुरुष निन्दा करें वा स्तुति करें, लक्ष्मी प्राप्त होवे अथवा नष्ट होजावे, आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे, तथापि जो मनुष्य धर्मयुक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे ही धीर पुरुष धन्य हैं ॥ १७ ॥

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १९१ । मं० २ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुमको मैं ईश्वर आज्ञा देता हूं कि (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम अधीत विद्यायोगाभ्यासी (संजानानाः) सम्यक् जाननेवाले (देवाः) विद्वान् लोग मिलके (भागम्) सत्य असत्य का निर्णय करके असत्य को छोड़ सत्य की (उपासते) उपासना करते हैं वैसे (सम्, जानताम्) आत्मा से धर्माऽधर्म प्रियाऽप्रिय को सम्यक् जाननेहारे (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन एक दूसरे से अविरोधी होकर एक पूर्वोक्त धर्म में सम्मत होवें और तुम उसी धर्म को (संगच्छध्वम्) स के प्राप्त होओ जिसमें तुम्हारी एक सम्मति होती है और विरुद्धवाद अधर्म को छोड़ के (संवदध्वम्) सम्यक् संवाद प्रश्नोत्तर प्रीति से करके क दूसरे की उन्नति किया करो ॥ १ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥ २ ॥
यजु० अ० १९ । मं० ७७ ॥

(प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक सर्वज्ञ न्यायकारी अद्वितीय स्वामी परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न २ स्वरूपवाले धर्म अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देख के (व्याकरोत्) भिन्न २ निश्चित करता है (अनृते) मिथ्याभाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः)वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषणादि लक्षणयुक्त न्याय पक्षपातरहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धाम्) प्रीति को (अदधात्) धारण कराता है वैसा ही तुम

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥ तैत्तिरीयार० अष्टमप्रपाठकः । प्रथमानुवाकः ॥

हम स्त्री पुरुष, सेवक स्वामी, मित्र मित्र, पिता पुत्रादि (सह) मिलके (नौ) हम दोनों प्रीति से (अवतु) एक दूसरे की रक्षा किया करें और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्यम्) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें (नौ) हमारा (अधीतम्) पढ़ा पढ़ाया (तेजस्वि) अतिप्रकाशमान (अस्तु) होवे और हम एक

दूसरे से (मा, विद्विषावहै) कभी विद्वेष विरोध न करें। किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्त्त कर सर्व गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें। जिस परमात्मा का यह "ओम्" नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर मन और आत्मा का त्रिविध दुःख जो कि अपने दूसरे से होता है नष्ट होजावे और हम लोग प्रीतिसे एक दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सबको आनन्द में रक्खें ॥

इति गृहाश्रमसंस्कारविधिः समाप्तः ॥



अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ।



वानप्रस्थसंस्कार उसको कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी एक सन्तान हो जाय अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जाकर निम्नलिखित सब बातें करे ॥

अत्र प्रमाणानि—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥१॥ शतपथब्राह्मणे ॥

अर्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके गृहस्थ होवें गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवें और वानप्रस्थ होके संन्यास ग्रहण करें ॥ १ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ २ ॥
यजु० अ० १९ । मं० ३० ॥

जब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्यभाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस (व्रतेन) व्रत से उत्तम प्रतिष्ठारूप (दीक्षाम्) दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियम पालन से (दक्षिणाम्) सत्कारपूर्वक धनादि को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस सत्कार से (श्रद्धाम्) सत्य धारण में प्रीतिको (आप्नोति) प्राप्त होता है और (श्रद्धया) सत्यधार्मिक जनोंमें प्रीतिसे (सत्यम्) सत्यविज्ञान वा सत्य पदार्थ मनुष्यको (आप्यते) प्राप्त होता है इसलिये श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रमका अनुष्ठान करके वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिये ॥२॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० २० । मं० २४ ॥

अर्थः—हे (व्रतपतेऽग्ने) नियमपालकेश्वर ! (दीक्षितः) दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उसकी सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य की धारणा को (च) और उसके उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं इसीलिये अग्नि में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं वैसे विद्या और व्रतको धारण कर प्रज्वलित करता हूं

और वैसे ही (त्वा) तुझ को अपने आत्मा में धारण करता और सदा (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥ ३ ॥

आनयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमाक्रमतां तृतीयम् ॥ ४ ॥ अथर्व० कां ६ । सू० ५ । मं० १ ॥

हे गृहस्थ ! (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर (आनय) अपने मनको गृहाश्रम से इधर की ओर ला (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकमपि) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी (गच्छतु) प्राप्त हो (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े बड़े (तमांसि) अज्ञान दुःख आदि संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् होकर (अजः) अपने आत्मा को अजर अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःखरहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीतिपूर्वक आरूढ़ हो ॥ ४ ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयस्स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥ ५ ॥
अथर्व० कां० १६ । सू० ४१ । मं० १ ॥

अर्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (स्वर्विदः) सुखको प्राप्त होनेवाले (ऋषयः) विद्वान् लोग (अग्रे) प्रथम (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की दीक्षा उपदेश लेके (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ लक्षणों को (उप, निषेदुः) प्राप्त होकर अनुष्ठान करते हैं वैसे इस (भद्रम्) कल्याणकारक वानप्रस्थाश्रम की (इच्छन्तः) इच्छा करो । जैसे राजकुमार ब्रह्मचर्याश्रम को करके (ततः) तदनन्तर (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को प्राप्त होके (जातम्) प्रसिद्ध प्राप्त हुए (राष्ट्रम्) राज्य की इच्छा और रक्षा करते हैं और (अस्मै) न्यायकारी धार्मिक विद्वान् राजा को (देवाः) विद्वान् लोग नमन करते हैं (तत्) वैसे सब लोग वानप्रस्थाश्रम को किये हुए आप को (उप, सं, नमन्तु) समीप प्राप्त होके नम्र होवें ॥ ५ ॥

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत्तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ६ ॥
अथर्व० कां० १६ । सू० ४० । मं० ३ ॥

सम्बन्धी जन (नः) हम वानप्रस्थाश्रमस्थों की (मेधाम्) प्रज्ञा को (मा हिंसिष्ट) नष्ट मत करें (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा को (मा) मत और (नः) हमारा (यत्)

जो (तपः) प्राणायामादि उत्तम तप है उसको भी (मा) मत नाश करे (नः) हमारी दीक्षा और (आयुषे) जीवन के लिये सब प्रजा (शिवा) कल्याण करनेहारी (सन्तु) होवें जैसे हमारी (मातरः) माता पितामही प्रपितामही आदि (शिवाः) कल्याण करनेहारी होते हैं वैसे सब लोग प्रसन्न होकर मुझ को वानप्रस्थाश्रम की अनुमति देनेहारे (भवन्तु) होवें ॥ ६ ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्त्या * विद्वांसो भैक्ष्यचर्याञ्चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ७ ॥
मुण्डकोपनि० मुं० १ । ख० २ । मन्त्र ११ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अरण्ये) जंगलमें (शान्त्या) शान्ति के साथ (तपःश्रद्धे) योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके (उपवसन्ति) वनवासियों के समीप वसते हैं और [भैक्ष्यचर्याम्] भिक्षाचरण को [चरन्तः] करते हुए जंगल में निवास करते हैं [ते] वे [हि] ही [विरजाः] निर्दोष निष्पाप निर्मल होके [सूर्यद्वारेण] प्राण के द्वारा [यत्र] जहाँ [सः] सो [अमृतः] मरण जन्म से पृथक् [अव्ययात्मा] नाशरहित [पुरुषः] पूर्ण परमात्मा विराजमान है [हि] वहीं [प्रयान्ति] जाते हैं इसलिये वानप्रस्थाश्रम करना अति उत्तम है ॥ ७ ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ मनु० अ० ६ । १ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त प्रकार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या पढ़ के समावर्त्तन के समय स्नानविधि करनेहारा द्विज ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में वसे ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेद् ॥ २ ॥ मनु० अ० ६ । २॥

गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र होजाय तब वन का आश्रय लेवें ॥ २ ॥

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ३ ॥ मनु० ॥ अ० ६ । ३ ॥

जब वानप्रस्थाश्रमकी दीक्षा लेवें तब ग्रामोंमें उत्पन्न हुए पदार्थोंका आहार और घरके सब पदार्थोंको छोड़के पुत्रोंमें अपनी पत्नीको छोड़ अथवा संगमें लेके वनको जावें ॥ ३ ॥

* "शान्ता" इति मुण्डके पाठः (आनन्दाश्रमग्रन्थावलिः) ।

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।

ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४॥ मनु० अ० ६ । ४ ॥

अर्थः—जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र की सामग्री सहित लेके ग्रामसे निकल जंगल में जितेन्द्रिय होकर निवास करे ॥ ४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।

दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ५ ॥ मनु० अ० ६ । ८ ॥

अर्थः—वहां जङ्गल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ानेमें नित्य युक्त, मन और इन्द्रियों को जीतकर यदि स्वस्त्री भी समीप हो तथापि उससे सेवा के सिवाय विषयसेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे, सब से मित्रभाव, सावधान, नित्य देनेहारा, और किसी से कुछ भी न लेवे, सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा-कृपा रखनेहारा होवे ॥ ५ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत् ।

गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ ६ ॥ मनु० अ० ६ । २७ ॥

जो जङ्गल में पढ़ाने और योगाभ्यास करनेहारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् लोग रहते हों जो कि गृहस्थ वा वानप्रस्थ वनवासी हों उनके घरों में से भिक्षा ग्रहण करे ॥ ६ ॥

एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।

विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥७॥ मनु० अ०६ । २९ ॥

और इस प्रकार वन में बसता हुआ इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे, और आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे, इसी प्रकार जबतक सन्यास करने की इच्छा न हो तबतक वानप्रस्थ ही रहे ॥ ७ ॥

अथ विधि—वानप्रस्थाश्रम करने को समय ५० वर्ष के उपरान्त है। जब पुत्र का भी पुत्र होजावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु पुत्रवधू आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्राकी तय्यारी करे। यदि स्त्री चले तो साथ लेजावे, नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे, कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना। तत्पश्चात् पृष्ठ १५—१६ में लिखे प्रमाणे यज्ञशाला वेदी आदि सब बनावे। पृष्ठ १६—१७ में लिखे घृत आदि सब सामग्री जोड़ के पृष्ठ २०—२१ में लिखे प्रमाणे (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके पृ० २२ में लिखे प्रमाणेः—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्डके चारों ओर जल प्रोक्षण करके, आधारावाज्यभागाहुति ४ और व्याहृति आज्याहुति ४ (चार) करके, पृष्ठ ६—१३ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके, स्थालीपाक बनाकर, उस पर घृत सेचन कर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे ॥

ओं काय स्वाहा । कस्मै स्वाहा । कतमस्मै स्वाहा । आधिमाधीताय स्वाहा । मनः प्रजापतये स्वाहा । चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा । अदित्यै मह्यै स्वाहा । अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा । सरस्वत्यै स्वाहा । सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा । सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा । पूष्णे स्वाहा । पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा । पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा । त्वष्ट्रे स्वाहा । त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा । त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा(१) । भौवनाय स्वाहा । भुवनस्य पतये स्वाहा । अधिपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा (२) । ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा । प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ।

सुख-साधकके लिये सत्य क्रिया । सुख-स्वरूपके लिये सत्य क्रिया । बहुतों में जो वर्तमान उसके लिये सत्य क्रिया । जो पदार्थों को भलि भांति धारण करता है उसके और सब ओरसे विद्या-वृद्धिके लिये सत्य क्रिया । प्रजाओंके पालनके लिये मनकी सत्य क्रिया । विशेष जाने हुएके लिये, चैतन्य मनके लिये और पृथिवी के लिये सत्य क्रिया । पृथिवी और बड़ी विनाश-रहित वाणीके लिये सत्य क्रिया । अच्छा सुख करने हारी माताके लिये सत्यक्रिया । वाणीके लिये सत्य क्रिया । पवित्र करने वाली विद्या-युक्त वाणीके लिये सत्य-क्रिया । बड़ी विद्वानों की वाणीके लिये सत्य क्रिया । पुष्टि करने वालेके लिये सत्य क्रिया । आरोग्य-प्रद भोजन और पुष्टिके लिये सत्य-क्रिया । मनुष्योंको उपदेश देने वाले और पुष्टि करने वाले के लिये सत्य-क्रिया । प्रकाश करने वालेके लिये सत्य-क्रिया । नौकाओंके रक्षक और प्रकाशक के लिये सत्य क्रिया । अनेक रूप वाले प्रकाशकके लिये सत्य-क्रिया । संसारके निमित्त शुभ किया करें । संसारके पालक स्वामीके लिये उत्तम क्रिया । सबके अधिष्ठाताके लिये उत्तम क्रिया । सब प्रजा-जनोंके पालकके लिये उत्तम क्रिया । हमारी आयु, अच्छी क्रिया और परमेश्वर तथा विद्वानोंके सत्कारादि सत्कर्मों और विद्या के साथ समर्पित हो । प्राण-वायु अच्छी क्रिया और योगाभ्यास आदि के साथ समर्पित हो । अपान वायु (जिससे दुःखको दूर करता है) अच्छी क्रिया और श्रेष्ठ कर्मके साथ समर्पित हो । व्यान-वायु (शरीरकी सन्धियों में व्याप्त) अच्छी क्रिया और

(१) यजु० अ० २२ । मं० २० ॥ (२) यजु० अ० २२ । मं० ३२ ॥

अपानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। व्यानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा । उदानो यज्ञेन स्वाहा। समानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। वाग्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। आत्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। सर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा। यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा (१)। एकस्मै स्वाहा। द्वाभ्यां स्वाहा। शताय स्वाहा। एकशताय स्वाहा। व्युष्ट्यै स्वाहा। स्वर्गाय स्वाहा (२)॥

उत्तम कामके साथ समर्पित हो। उदान-वायु (बलवर्धक) अच्छी क्रिया और उत्तम कर्मके साथ समर्पित हो। समान-वायु (शरीर में अन्न पहुंचाने वाला) उत्तम क्रिया और यज्ञके साथ समर्पित हो। नेत्र उत्तम क्रिया से सत्कर्मके साथ समर्पित हो। वाणी आदि कर्मेन्द्रियां उत्तम क्रियासे अच्छे काम के साथ समर्पित हों। मन उत्तम क्रिया से सत्कर्म के साथ समर्पित हो। जीव उत्तम क्रिया से सत्कर्म के साथ समर्पित हो। चारों वेदों का ज्ञाता उत्तम क्रिया से यज्ञादि सत्कर्म के साथ समर्थ हो। ज्ञानका प्रकाश उत्तम क्रिया से यज्ञके साथ समर्पित हो। ध्रुव उत्तम क्रिया से यज्ञके साथ समर्पित हो। पूछना वा अवशिष्ट उत्तम क्रिया से यज्ञके साथ समर्पित हो। यज्ञ उत्तम क्रियासे यज्ञके साथ समर्थ हो। एक अद्वितीय परमात्मा के लिये सत्य क्रिया करो। दो अर्थात् कार्य और कारणके लिये सत्य क्रिया। अनेक पदार्थोंके लिये उत्तम क्रिया। एक व्यवहार वा अनेक पदार्थों के लिये उत्तम क्रिया। प्रकाशित हुए पदार्थों को जलानेके लिये उत्तम क्रिया। सुखको प्राप्त होनेके लिये उत्तम क्रिया। पीछे के दो मन्त्रोंका भावार्थ यह है कि मनुष्यों को अपनी इन्द्रियों, मन और ज्ञान कर्म आदि की सब शक्तियां यज्ञादि सत्कर्मों में लगाकर उन्हें परमेश्वरार्पित कर देना चाहिये। एक अद्वितीय परमात्माकी ही उपासना करनी चाहिये और संसार में जो अनेक अनगिनत जीव-जन्तु हैं उन सबको भला सोचना व करना चाहिये॥

(१) यजु० अ० २२। मं० ३३॥
(२) यजु० अ० २२। मं० ३४॥

इन मन्त्रों से एक २ करके ४३ स्थालीपाक की आज्याहुति देके, पुनः पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ (चार) देकर पृष्ठ २७—२८ में लिखे प्रमाणे सामगान करके; सब इष्ट मित्रों से मिल, पुत्रादिकों पर सब घरका भार धरके, अग्निहोत्र की सामग्री सहित जङ्गल में जाकर, एकान्त में निवास कर, योगाभ्यास शास्त्रों का विचार महात्माओं का सङ्ग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे॥

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः समाप्तः

अथ संन्याससंस्कारविधिं वक्ष्यामः



संन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे अर्थात्ः—

सम्यङ् न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन वा सम्यङ् नित्यं सत्कर्मस्वास्त उपविशति स्थिरीभवति येन स संन्यासः, संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी ॥

कालः—प्रथम जो वानप्रस्थ के आदि में कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ और गृहस्थ होके वनस्थ, वनस्थ होके संन्यासी होवे, यह क्रमसंन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करते २ वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रमसंन्यास कहते हैं ॥

द्वितीय प्रकार

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ॥

यह ब्राह्मणग्रन्थ का वाक्य है—

अर्थः—जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे। क्योंकि संन्यासमें दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है ॥

तृतीय प्रकार

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥

यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है। यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे, पक्षपातरहित होकर सब के उपकार करने की इच्छा होवे और जिसको दृढ़ निश्चय होजावे कि मैं मरणपर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा, तो वह न गृहाश्रम करे न वानप्रस्थाश्रम, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे ॥

अत्र वेदप्रमाणानि

शर्य्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा। बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ १ ॥ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० १॥

अर्थः—मैं ईश्वर संन्यास लेनेहारे तुझ मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने हारा (इन्द्रः) सूर्य्य (शर्य्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) रस को पीता है वैसे संन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलों के रस को (पिबतु) पीवे और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े [वीर्यम्] सामर्थ्य को [करिष्यन्] करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ [बलं दधानः] दिव्य बलको धारण करता हुआ [इन्द्राय] परमैश्वर्य के लिये हे [इन्दो] चन्द्रमा के तुल्य सब को आनन्द करनेहारे पूर्ण विद्वान ! तू संन्यास लेके सब पर [परिस्रव] सत्योपदेश की वृष्टि कर॥ १ ॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः। ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ २ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० २॥

हे [सोम] सौम्यगुणसम्पन्न [मीढ्वः] सत्य से सब के अन्तःकरण को सींचनेहारे [दिशांपते] सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान दे के पालन करनेहारे [इन्दो] शमादि गुणयुक्त संन्यासिन्! तू [ऋतवाकेन] यथार्थ बोलने [सत्येन] सत्य भाषण करने से [श्रद्धया] सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और [तपसा] प्राणायाम योगाभ्यास से [आर्जीकात्] सरलता से [सुतः] निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि को [आपवस्व] पवित्र कर [इन्द्राय] परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये [परिस्रव] सब ओर से गमन कर॥ २ ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्। श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ४॥

अर्थः—हे [ऋतद्युम्न] सत्य धन और सत्य कीर्तिवाले यतिवर! [ऋतं, वदन्] पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ हे [सत्यकर्मन्] सत्य वेदोक्त कर्म वाले संन्यासिन् [सत्यं वदन्] सत्य बोलता हुआ [श्रद्धाम्] सत्यधारणमें प्रीति करने को [वदन्] उपदेश करता हुआ [सोम] सौम्यगुणसंपन्न [राजन्] सब ओर से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले [सोम] योगैश्वर्ययुक्त [इन्दो] सब को आनन्ददायक संन्यासिन्! तू [धात्रा] सकल विश्वके धारण करनेहारे परमात्मासे योगाभ्यास करके [परिष्कृत] शुद्ध होता हुआ

[इन्द्राय] योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिये [परिस्रव] यथार्थ पुरुषार्थ कर ॥ ३ ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन्। ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ४ ॥ ऋग्वेद मं० ९। सू० ११३। मं० ६ ॥

अर्थः—हे [छन्दस्याम्] स्वतन्त्रतायुक्त [वाचम्] वाणीको [वदन् कहते हुए [सोमेन] विद्या योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से [आनन्दम्] सब के लिये आनन्द को [जनयन्] प्रकट करते हुए [इन्दो] आनन्दप्रद [पवमान] पवित्रात्मन् पवित्र करनेहारे संन्यासिन्! [यत्र] जिस [सोमे] परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा में [ब्रह्मा] चारों वेदों का जाननेहारा विद्वान् [महीयते] महत्व को प्राप्त होकर सत्कार को प्राप्त होता है जैसे [ग्राव्णा] मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सब को [इन्द्राय] परमैश्वर्य युक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिये सब साधनों को [परिस्रव] सब प्रकार से प्राप्त कर ॥ ४ ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ७ ॥

अर्थः—हे [पवमान] अविद्यादि क्लेशों के नाश करनेहारे पवित्रस्वरूप [इन्दो] सर्वानन्ददायक परमात्मन्! [यत्र] जिस तेरे स्वरूप में [अजस्रम्] निरन्तर व्यापक तेरा [ज्योतिः] तेज है [यस्मिन्] जिस [लोके] ज्ञान से देखने योग्य तुझ में [स्वः] नित्य सुख [हितम्] स्थित है [तस्मिन्] उस [अमृते] जन्म मरण और [अक्षिते] नाश से रहित [लोके] द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप [मा] मुझ को [इन्द्राय] परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये [धेहि] कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपाभाव से [परिस्रव] आनन्द की वर्षा कीजिये ॥ ६ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ८ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) आनन्दप्रद परमात्मन्! (यत्र) जिस मुझ में (वैवस्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजुली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारणरूप (यह्वतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणप्रद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्षप्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये, (परिस्रव) आर्द्रभाव से आप मुझ को प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ९ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) परमात्मन्! (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विचरना है [यत्र] जिस [त्रिनाके] त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित [त्रिदिवे] तीन सूर्य विद्युत् और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुखस्वरूप में [दिवः] कामना करने योग्य शुद्ध कामनावाले [लोकाः] यथार्थ ज्ञानयुक्त [ज्योतिष्मन्तः] शुद्ध विज्ञानयुक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष विचरते हैं [तत्र] उस अपने स्वरूप में [माम्] मुझको [अमृतम्] मोक्ष प्राप्त [कृधि] कीजिये और [इन्द्राय] उस परम आनन्दैश्वर्य के लिये [परिस्रव] कृपा से प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० १० ॥

अर्थः—हे [इन्दो] निष्कामानन्दप्रद सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! [यत्र] जिस आप में [कामाः] सब कामना [निकामाः] और अभिलाषा छूट जाती हैं [च] और [यत्र] जिस आप में [ब्रध्नस्य] सब से बड़े प्रकाशमान सूर्य का [विष्टपम्] विशिष्ट सुख [च] और [यत्र] जिस आप में [स्वधा] अपना ही धारण [च] और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) प्राप्त मुक्तिवाला (कृधि) कीजिये तथा (इन्द्राय) सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर (परिस्रव) करुणावृत्ति कीजिये ॥ ८ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ११ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर! (यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) सम्पूर्ण समृद्धि (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष [मुदः] सम्पूर्ण प्रसन्नता [च] और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आपमें (कामस्य) अभिलाषी पुरुषकी (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती हैं (तत्र) उसी अपने स्वरूपमें (इन्द्राय) परमैश्वर्यके लिये (माम्) मुझको (अमृतम्) जन्म मृत्युके दुःखसे रहित मोक्षप्राप्तयुक्त कि जिसके मुक्ति के समयके मध्यमें संसारमें नहीं आना पड़ता उस मुक्तिकी प्राप्ति वाला (कृधि) कीजिये और इसी प्रकार सब जीवोंको (परिस्रव) सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूलहमा सूर्य्यमजभर्त्तन ॥ १० ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७२ । मं० ७ ॥

अर्थः—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान (यतयः) संन्यासी लोगो ! तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा है उसको (आ अजभर्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ वैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उनको सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेशसे संयुक्त किया करो यही तुम्हारा परम धर्म है ॥ १० ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सन्नमन्तु ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मन्त्र० १ ॥

अर्थः—हे विद्वानो ! जो (ऋषयः) वेदार्थविद्या को और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त (अग्रे) प्रथम (तपः) ब्रह्मचर्यरूप आश्रम को पूर्णता से सेवन तथा यथावत् स्थिरता से प्राप्त होके (भद्रम्) कल्याण की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (दीक्षाम्) संन्यास की दीक्षाको (उपनिषेदुः) ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होवें उनका (देवाः) विद्वान लोग (उप सन्नमन्तु) यथावत् सत्कार किया करें (ततः) तदनन्तर (राष्ट्रम्) राज्य (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) उत्पन्न होवे (तत्) उससे (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के पालन के लिये यत्न किया करें ॥ ११ ॥

अथ मनुस्मृतेश्श्लोकाः ।

वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥ १ ॥ अ० ६ । ३३ ॥

अर्थः—इस प्रकार जंगलोंमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् अधिकसे अधिक २५ (पच्चीस) वर्ष अथवा न्यूनसे न्यून १२ (बारह) वर्ष तक विहार करके आयुके चौथे भाग अर्थात् ७० (सत्तर) वर्ष के पश्चात् सब मोहादि संगों को छोड़कर संन्यासी होजावे ॥ १ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे नियोजयेत् ॥२॥ अ० ६ । ३६ ॥

विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम से सब वेदों को पढ़ गृहाश्रमी होकर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मन को लगावे ॥ २ ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥३॥ अ० ६। ३८॥

प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि (कि जिसमें यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय गार्हपत्य और दाक्षिणात्य संज्ञक अग्नियों को आत्मा में समारोपित करके ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥ ३ ॥

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥ अ० ६। ३९ ॥

जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान सत्योपदेश देकर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है उस ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को मोक्षलोक और सब लोकलोकान्तर तेजोमय (ज्ञान से प्रकाशमय) हो जाते हैं ॥ ४ ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ५ ॥ अ० ६। ४१ ॥

जब सब कामों को जीत लेवे और उनकी अपेक्षा न रहे, पवित्रात्मा और पवित्रान्तःकरण मननशील हो जावे तभी गृहाश्रम से निकल कर संन्यासाश्रम का ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य ही से संन्यासका ग्रहण कर लेवे ॥ ५ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ६ ॥ अ० ६। ४३ ॥

वह संन्यासी (अनग्निः *) आहवनीयादि अग्नियों से रहित, और कहीं अपना स्वाभिमत घर भी न बांधे, और अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे, बुरे मनुष्यों को उपेक्षा करता और स्थिरबुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे ॥ ६ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ७ ॥ अ० ६। ४५ ॥

न तो अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने, किन्तु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ७ ॥

---

* इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते। यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। यहां आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है, स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ८ ॥ अ० ६ । ४६ ॥

चलते समय आगे २ देख के पग धरे, सदा वस्त्र से छान कर जल पीवे, सब से सत्य वाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे, जो कुछ व्यवहार करे वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे ॥ ८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ९ ॥ अ० ६ । ४९ ॥

इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित, सर्वथा अपेक्षारहित, मांस मद्यादि का त्यागी आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे और सब को सत्योपदेश करता रहे ॥ ९ ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १० ॥ अ० ६ । ५२ ॥

सब शिर के बाल डाढ़ी मूंछ और नखों को समय २ छेदन कराता रहे, पात्री, दण्डी और कुसुंभ के रंगे हुए * वस्त्रों का धारण किया करे, सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे ॥ १० ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ११ ॥ अ० ६ । ६० ॥

जो संन्यासी बुरे कामों से इन्द्रियों के निरोध, राग द्वेषादि दोषोंके क्षय, और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

दूषितोपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १२ ॥ अ० ६ । ६६ ॥

यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी लोग निन्दा आदि से दूषित वा अपमान भी करें तथापि धर्म ही का आचरण करे, ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को करना उचित है, सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर समबुद्धि रक्खे इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिये संन्यासाश्रम की विधि है, किन्तु केवल दण्डादि चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है ॥ १२ ॥

---

* अथवा गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने ॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ १३ ॥ अ० ६ । ६७ ॥

यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करनेवाला है तथापि उसके नामग्रहणमात्र से जल शुद्ध नहीं होता किन्तु उसको ले पीस जल में डालने ही से उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है, वैसे नाममात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने २ आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने ही से आश्रमधारण सफल होता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ १४ ॥ अ० ६ । ६८ ॥

इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिये संन्यासी पुरुष विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगा के जैसा कि पृष्ठ १८३ में प्राणायाम का मन्त्र लिखा है उसको मन से जपता हुआ तीन भी प्राणायाम करे तो जानो अत्युत्कृष्ट तप करता है ॥ १४ ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥१५॥ अ० ६ । ७१ ॥

क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥१६॥ अ०।६ ७२ ॥

इसलिये संन्यासी लोग प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से अन्तःकरण के मैल को, प्रत्याहार से सङ्ग से हुए दोषों और ध्यान से अविद्या पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ाके पक्षपातरहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को भस्म कर देवें ॥ १६ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ १७ ॥ अ० ६ । ७३ ॥

बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में जो अशुद्धात्माओं से देखने के योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्माकी गति अर्थात् प्राप्तिको ध्यान योगसे ही संन्यासी देखा करे ॥१७॥

सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ अ० ६ । ७४ ॥

जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से युक्त है वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सत्संग धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञानहीन होकर संन्यास लेता है वह संन्यासपदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्म मरण रूप संसार को प्राप्त होता है और ऐसे मूर्ख अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है ॥ १८ ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ १९ ॥ अ० ६ । ७५ ॥

और जो निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक, वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्त्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं, उनका संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य है ॥ १९ ॥

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ २० ॥ अ० ६। ८० ॥

जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भावसे निःस्पृह होता है तभी इस लोक और इस जन्ममें और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होके निरन्तर(१) सुख को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २१ ॥ अ० ६ । ८१ ॥

इस विधि से धीरे २ सब संग से हुये दोषों को छोड़ के सब हर्षशोकादि द्वन्द्वों विशेष कर निर्मुक्त होके विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है ॥ २१ ॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्ग्य (२) मिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ २२ ॥ अ०६।८४ ॥

और जो विविदिषा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे वह भी विद्या का अभ्यास, सत्पुरुषों का सङ्ग, योगाभ्यास और ओंकार का जप और उस के अर्थ परमेश्वर का विचार भी किया करे। यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौणसंन्यासियों और

(१) निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं कर सकता।

(२) स्वर्गमिति मनौ पाठः ॥ अ० ६। श्लो० ८४ ॥

यही विद्वान् संन्यासियों का और यही सुख का खोज करनेहारे और यही अनन्त ❋ सुख की इच्छा करनेहारे मनुष्यों का आश्रय है ॥ २२ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२३॥ मनु०अ०६। ८५ ॥

इस क्रमानुसार संन्यासयोगसे जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर से सब पापों को छोड़ छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

विधि—जो पुरुष संन्यास लेना चाहे वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्नता हो उसी दिन नियम और व्रत अर्थात् तीन दिन तक दुग्धपान करके उपवास और भूमि में शयन और प्राणायाम, ध्यान तथा एकान्तदेश में ओंकार का जप किया करे, और पृष्ठ० १५—१६ में लि० सभामण्डप, वेदी, समिधा, घृतादि साकल्य सामग्री एक दिन पूर्व कर रखनी । पश्चात् जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो प्रहर रात्रि से उठकर, शौच स्नानादि आवश्यक कर्म करके, प्राणायाम ध्यान और प्रणव का जप करता रहे । सूर्योदय के समय उत्तम गृहस्थ धार्मिक विद्वानों का पृष्ठ १८—१९ में लि० वरण कर पृष्ठ २०—२१ में लि० अग्न्याधान समिदाधान घृतप्रतपन और स्थालीपाक करके, पृष्ठ ४—१५ लि० स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ कर, पृष्ठ २२ में लि० वेदी के चारों ओर जलप्रोक्षण, आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार), और व्याहृति आहुति ४ (चार), तथा:—

ओं भुवनपतये स्वाहा । ओं भूतानां पतये स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

भू-मण्डल, पंच महाभूत और प्राणि-मात्रके पालक स्वामी के लिये यह आहुति है ॥

इनमेंसे एक २ मन्त्रसे एक २ करके ग्यारह आज्याहुति देके, जो विधिपूर्वक भात बनाया हो उसमें घृत सेचन करके, यजमान जो कि संन्यास का लेनेवाला है और दो ऋत्विज निम्नलिखित स्वाहान्त मन्त्रों से भात का होम, और शेष दो ऋत्विज् भी साथ २ घृताहुति करते जावें ॥

ओं ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवो मिताः । अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः स्वाहा ॥ १ ॥

होता [यज्ञ करने वाला], यज्ञ, यज्ञके स्तम्भ, यजुर्वेदका ज्ञाता अध्वर्यु और यज्ञके समय आहुति दिये जाने योग्य हवि ये सब ब्रह्म अर्थात् वेदसे ही निर्दिष्ट किये गये हैं वेदमें ही इन सबका यथायोग्य विधान किया गया है ॥ १ ॥

❋ अनन्त इतना ही है कि मुक्तिसुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश न होवे ॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता। ब्रह्म यज्ञश्च सत्रं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा॥ २॥ अथर्व० कां०१६। सू०४२। मं० २

घीसे भरे हुए स्रुवे, यज्ञकी वेदि, छोटे बड़े सब यज्ञ और यज्ञकी क्रिया करने वाले ऋत्विक् इन सब का यथायोग्य विधान वेदमें किया गया है। ऐसे शान्ति-पूर्ण निर्देशों के बतलाने वाले वेदके उद्देश्यसे यह आहुति हो॥ २॥

अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राम्णे सुमतिमावृणानः। इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा॥३॥ अथर्व०कां०१६।सू०४२।मं०३

पापोंसे छुड़ाने वाले और उत्तम रक्षक परमात्मा के प्रति बुद्धि और विचारोंको लगाता हुआ प्रार्थना करता हूं कि ऐश्वर्यशाली परमात्मा मेरी इस आहुति को स्वीकार करो और मुझ यजमानकी इच्छायें पूर्ण हों॥ ३॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजंतं प्रथममध्वराणाम्। अपांनपातमश्विना हुवे धियेन्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः स्वाहा॥४॥ अथर्व०कां० १६। सू०४२। मं०४

पापोंसे छुड़ाने वाले, यज्ञके लिये उपयोगी पदार्थोंको देने वाले और पूजनीयों में मुख्य-रूपेण विराजमान तथा जलोंके रक्षक अश्विदेवों का मैं इन्द्र सहित आह्वान करता हूं। वे मुझे बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति दें॥ ४॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥५॥ अथर्व० कां० १६। सू०४३। मं०१

ब्रह्मज्ञानी पुरुष अपने धर्माचरणादि तप और आश्रमों के नियम-पालनादि रूप दीक्षाके द्वारा जहां जाते हैं अर्थात् जिस मुक्ति-पदको प्राप्त करते हैं, अग्नि-देव मुझे भी वहां ले जाय और वह मुझे बुद्धि का दान करे। मैं यह आहुति अग्निके उद्देश्य से छोड़ता हूं॥ ५॥

यत्र०। वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे इदन्न मम॥६॥ अथर्व० कां० १६। सू० ४३। मं० २

ब्रह्म ज्ञानी पुरुष अपने धर्माचरणादि तप और आश्रम-व्यवस्था के पालन रूप दीक्षा द्वारा जिस मुक्ति-पदको प्राप्त करते हैं, वायु-देव मुझे भी वहां ले जाय और वह मेरे प्राणों की पुष्टि करे। मैं यह आहुति वायुको उद्देश्य करके छोड़ता हूं॥ ६॥

यत्र०। सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुस्सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा॥ इदं सूर्याय इदन्न मम॥७॥ अथर्व०कां०१६।सू०४३। मं०३

ब्रह्म ज्ञानी पुरुष अपने तप और दीक्षा द्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, सूर्य-देव मुझे भी वहां ले जाय और वह मेरी आंखोंको ज्योतिर्युक्त करे। यह आहुति सूर्य को उद्देश्य करके छोड़ी गयी है॥७॥

यत्र०। चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम॥८॥ अथर्व०कां०१६। सू०४३। मं०४

ब्रह्म ज्ञानी पुरुष० ... ... , चन्द्र-देव मुझे भी वहींले जाय और वह मेरे मनके आह्लाद-शीलता के गुणको बढ़ावे। यह आहुति चन्द्र-देवके लिये है॥ ८॥

यत्र० । सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्न मम ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४३ । मं० ५

ब्रह्म ज्ञानी पुरुष०··· ··· , सोम-देव मुझे भी वहीं लेजाय और वह मेरे लिये पुष्टि आदि गुणोंको देवे। यह आहुति सोम-देव के उद्देश्यसे है ॥ ९ ॥

यत्र० । इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ॥इदमिन्द्राय इदन्न मम ॥१०॥ अथ०कां०१९।सू०४३।मं०६

ब्रह्म ज्ञानी० ··· ··· ; इन्द्र-देव मुझे० ··· ··· , और वह मुझमें बलका आधान करे। यह आहुति इन्द्र-देव के लिये है ॥ १० ॥

यत्र०। आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भ्यः इदन्न मम ॥११॥ अथर्व० कां०१९।सू०४३।मं०७

ब्रह्म ज्ञानी० ··· ··· , जलीय शक्तियां मुझे वहां ले जायं और जलों के शान्ति-कारितादि गुण मुझे प्राप्त हों। यह आहुति जलों की शुद्धता आदिके उद्देश्यसे है ॥ ११ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥ इदं ब्रह्मणे इदन्न मम ॥ १२ ॥ अथर्व० कां० १९ ॥ सू० ४३ । मन्त्र ८

ब्रह्म ज्ञानी० ··· ··· , चारों वेदोंका ज्ञाता विद्वान् मुझे मुक्ति-पदको प्राप्त करावे तथा वेदका ज्ञान प्रदान करे। यह आहुति वेदोंके विद्वानकी प्रसन्नता के लिये है ॥ १२ ॥

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा ॥ १ ॥

मेरे हृदय-गत वायु प्राण, हृद-गत वायु अपान, शरीर-संचारी वायु व्यान, कण्ठ-गत वायु उदान और नाभि-देश-गत वायु समान, ये पांचों शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी निष्कलंक निष्पाप बन जाऊं ॥ १ ॥

वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूति(१)संकल्पा मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा ॥ २ ॥

मेरे वाणी, मन, आंखें, कान, जीभ, नाक, वीर्य, बुद्धि, विचार और संकल्प शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी, निष्कलक और निष्पाप बन जाऊं ॥ २ ॥

शिरःपाणिपाद(२)पृष्ठोरूदरजङ्घाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ३ ॥

मेरे सिर, हाथ, पांव, पीठ, जांघें, पेट, लिंगेन्द्रिय और उपस्थेन्द्रिय शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप बन जाऊं ॥ ३ ॥

त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥४॥

मेरे खाल, चाम, मांस, खून, चरबी, मज्जा, (हड्डियोंके बीचका द्रव पदार्थ), नसें और हड्डियां शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप बन जाऊं ॥ ४ ॥

(१) आकूतिरिति विसर्गान्तः पाठः तैत्तिरीयारण्यके।
(२) पादपृष्ठोभयमध्ये पार्श्वपदमधिकं तैत्तिरीयारण्यके।

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ५ ॥

ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप बन जाऊं॥ ५ ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशा मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ६ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, और आकाश, पंच महाभूत मेरे लिये शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी० ॥ ६ ॥

अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्ताम् ज्योति० ॥ ७ ॥

मेरे ❋ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय, ये पांचों कोष शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी० ॥ ७ ॥

विविट्यै स्वाहा ॥ ८ ॥

विशेष करके व्याप्त परमात्मा के उद्देश्यसे यह आहुति है ॥ ८ ॥

कषोत्काय स्वाहा ॥ ९ ॥

सृष्टिको प्रकट रूपमें बनानेके लिये उत्सुक परमात्मा के उद्देश्यसे यह आहुति है ॥ ९ ॥

उत्तिष्ठ पुरुष हरित लोहित पिङ्गलाक्षि देहि देहि ददापयिता मे शुध्यताम् (१)। ज्योति० । १० ॥

हे शरीर में रहने वाले जीवात्मा (आलस्यको छोडकर) उठ, हे सत्व रज तम आदि दोषों से छिपे हुए जीवात्मा तू अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान सब संसारको दे और स्वयं भी उक्त दोषोंको छोड़कर शुद्ध हो जा। मैं ज्ञानी० ॥ १० ॥

ओं मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ११ ॥

मेरे मन, वचन, शरीर और कर्म शुद्ध हो जायं। मैं ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप बन जाऊं ॥११॥

अव्यक्तभावैरहङ्कारैर्ज्योति० ॥१२॥

मैं अप्रकट अहंकारादि दोषों से मुक्त होकर ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप बन जाऊं ॥ १२ ॥

आत्मा मे शुध्यताम्। ज्योति० ॥१३॥

मेरा आत्मा शुद्ध हो जाय। मैं ज्ञानी० ॥ १३ ॥

अन्तारात्मा मे शुध्यताम्। ज्योति० ॥ १४ ॥

मेरा अन्तरात्मा (अन्तःकरण) शुद्ध हो जाय। मै ज्ञानी० ॥ १४ ॥

(१) तैत्तिरीयार० प्र० १०। अनु० ५१-६७ ॥

❋ स्मृतियों में जीवात्मा के ऊपरोक्त पांच कोश माने गये हैं क्योंकि वे आत्माको छिपाये रहते हैं। उनका विवरणः—१ स्थूल शरीर अन्नमय कोश; २ पंच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राण प्राणमय कोश; ३ पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन मनो मय कोश; ४ निश्चयात्मक बुद्धि विज्ञानमय कोश और ५ सुषुप्ति का आनन्द आनन्दमय कोष ॥

परमात्मा मे शुध्यताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा(२) ॥१५॥

मेरे प्रति परमात्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाय। मैं ज्ञानी, निष्कलंक और निष्पाप हो जाऊं ॥ १५ ॥ ⊛

इन १५ मन्त्रों में से एक २ करके भात की आहुति देनी। पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से ३५ घृताहुति देवें ॥

ओमग्नये स्वाहा ॥ १६ ॥

प्रकाश-स्वरूप परमात्मा के लिये यह आहुति है ॥ १६ ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥१७॥

सब विद्वानों के लिये यह आहुति है ॥ १७ ॥

ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥१८॥

स्थिर और महान परमात्मा के लिये यह आहुति है ॥ १८ ॥

ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥ १९ ॥

पृथ्वी को स्थिर रखने वाले परमात्मा के लिये यह आहुति है ॥ १९ ॥

ओमच्युतक्षितये स्वाहा ॥ २० ॥

सर्वदा एक रस रहने वाले परमात्मा के लिये यह आहुति ॥ २० ॥

ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥२१॥

इष्ट-साधक अग्निके लिये यह आहुति है ॥ २१ ॥

ओं धर्माय स्वाहा ॥ २२ ॥

धर्म के लिये० ॥ २२ ॥

ओमधर्माय स्वाहा ॥ २३ ॥

अधर्म के लिये यह आहुति है ॥ २३ ॥

ओमद्भ्यः स्वाहा ॥ २४ ॥

ओमोषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ॥२५॥

ओं रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा ॥२६॥

ओं गृह्याभ्यः स्वाहा ॥ २७ ॥

ओमवासनेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

ओमवसानपतिभ्यः स्वाहा ॥२९॥

जलों, ओषधि-वनस्पतियों, राक्षसों और सज्जनों, गृहोपयोगी पदार्थों, मृत्यु, मृत्यु के स्वामी,

---

२, तैत्तिरीयार० प्र० १० । अनु० ६६, एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल में मुद्रित।

⊛ (प्राणापान) इत्यादि से ले के (परमात्मा मे शुध्यताम्) इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासी के लिये उपदेश है। अर्थात् जो संन्यासाश्रम ग्रहण करे वह धर्माचरण, सत्योपदेश, योगाभ्यास, शम, दम, शान्ति, सुशीलतादि, विद्या विज्ञानादि शुभ गुण कर्म स्वभावों से सहित होकर, परमात्मा को अपना सहायक मान कर, अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर प्राण मन इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार से हटा शुद्ध व्यवहार में चला के, पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़, अन्य के दोष, पढ़ाने और उपदेश से छुड़ाकर, स्वयं आनन्दित होके, सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे।

ओं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥
ओं कामाय स्वाहा ॥३१॥
ओमन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३२ ॥
ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥ ३३ ॥
ओं दिवे स्वाहा ॥ ३४ ॥
ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ३५ ॥
ओं चन्द्रमसे स्वाहा ॥३६॥
ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥
ओमिन्द्राय स्वाहा ॥ ३८ ॥
ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥ ३९ ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ४० ॥
ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ४१ ॥
ओं देवेभ्यः स्वाहा(१) ॥ ४२ ॥
ओं परमेष्ठिने स्वाहा ॥ ४३ ॥

सब प्राणियों, काम (इच्छा-शक्ति), अन्तरिक्ष-लोक, द्युलोक, पृथ्वी लोक, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति, ब्रह्मा, विद्वान् पुरुष, और मुक्तात्माओं के लिये ये आहुतियां हैं॥ २४॥—४३॥

ओं तद्ब्रह्म स्वाहा ॥ ४४ ॥

वह ईश्वरही ब्रह्म-पद-वाच्य है॥ ४४॥

ओं तद्वायुः ॥ ४५ ॥

वही वायु का आधार है॥ ४५॥

ओं तदात्मा ॥ ४६ ॥

वही जीवात्मासे प्राप्तव्य है॥ ४६॥

ओं तत्सत्यम् ॥ ४७ ॥

एक मात्र वही सत्य है॥ ४७॥

ओं तत्सर्वम् ॥ ४८ ॥

वही सब कुछ है॥ ४८॥

ओं तत्पुरोर्नमः ॥ ४९ ॥

उस महा-शक्तिको नमस्कार है॥ ४९॥

अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वँ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म त्वं प्रजापतिः। त्वं तदाप आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा (२) ॥ ५० ॥*

वही सब प्राणियों में, प्राणियों के हृदयों में और यावत्मात्र रूपोंमें विराज रहा है। यज्ञ, वषट्कार, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, प्रजापति, जल, ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः और ओम् ये सब नाम, हे परमात्मन्, तुम्हारे ही गुणों के वर्णन करने वाले हैं॥ ५०॥

(१) तैत्तिरीयारण्यक प्र० १०। अनु० ६७॥ (२) तैत्तिरीयार० प्र० १०। अनु० ६८॥

* ये सब प्राणापानव्यान० आदि मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक अनुवाक ५१। ५२। ५३। ५४। ५५। ५६। ५७। ५८। ५९। ६०। ६६। ६७। ६८ के हैं।

इन ५० मन्त्रों से आज्याहुति दे के, तदनन्तर जो संन्यास लेनेवाला है वह पांच वा छः केशों को छोड़कर, पृष्ठ ७४-७५ में लिखे डाढ़ी मूंछ केश लोमों का छेदन अर्थात् क्षौर कराके यथावत् स्नान करे। तदनन्तर संन्यास लेनेवाला पुरुष अपने शिर पर पुरुषसूक्त के मन्त्रों से १०८ (एकसौ आठ) वार अभिषेक करे। पुनः पृष्ठ १६ में लि० आचमन और प्राणायाम करके, हाथ जोड़, वेदी के सामने नेत्रोन्मीलन कर, मन से—

ओं ब्रह्मणे नमः। ओमिन्द्राय नमः। ओं सूर्याय नमः। ओं सोमाय नमः। ओमात्मने नमः। ओमन्तरात्मने नमः॥

मैं ब्रह्म, विद्युत्-शक्ति, सूर्य, सोम (ओषधियोंका उपलक्षण), आत्मा और अन्तरात्मा, इन सबको नमस्कार करता हूं॥

इन छः मन्त्रों को जप के:—

ओमात्मने स्वाहा। ओमन्तरात्मने स्वाहा। ओं परमात्मने स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा॥

आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और प्रजाओं के पालक स्वामी ईश्वरके लिये मैं ये आहुतियां देता हूं॥

इन ४ (चार) मन्त्रों से ४ (चार) आज्याहुति देकर, कार्यकर्त्ता संन्यास ग्रहण करनेवाला पुरुष पृ० १२६ में लि० मधुपर्क की क्रिया करे, तदनन्तर प्राणायाम करके:—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि॥ ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

इन मन्त्रों को मन से जपे॥

सावित्री-मन्त्रका अर्थ पहिले वेदारम्भके प्रकरणमें आ चुका है। यहां पर संन्यास लेने वाला 'भूः', 'भुवः,' और 'स्वः' इन तीनों व्याहृतियों में से एक एक का उच्चारण करके सावित्री-मन्त्रके अनुसार ईश्वर का आश्रय, ध्यान और मनन करने की प्रतिज्ञा करता हुआ सावित्री-मन्त्रके एक एक पद का क्रमशः उच्चारण करता है और अन्तमें पूर्ण मन्त्रका एक साथ पाठ करता है॥

ओमग्नये स्वाहा। ओं भूः प्रजापतये स्वाहा। ओमिन्द्राय स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओं प्राणाय स्वाहा। ओमपानाय स्वाहा। ओं व्यानाय

अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, विश्वे देव, ब्रह्म, प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान तथा सभी प्राणों के लिये यह आहुति है॥

स्वाहा। ओं उदानाय स्वाहा। ओं समा-
नाय स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से वेदी में आज्याहुति देके:—

ओं भूः स्वाहा ॥

इस मन्त्रसे पूर्णाहुति करके—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति*॥
श० कां० १४॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु स्वाहा * ॥

इस वाक्य को बोल के सब के सामने जल को भूमी में छोड़ देवे। पीछे नाभिमात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रहकर—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्। ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसे सावदोम् ॥ +

इसका मन से जप करके, प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके, पूर्वोक्त (पुत्रैषणा-याश्च०) इस समय कण्डिका को बोल के, प्रैष्य मन्त्रोच्चारण कर—

ओं भूः संन्यस्तं मया। ओं भुवः संन्यस्तं मया। ओं स्वः संन्यस्तं मया ॥ मैंने भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक। तीनोंके प्रति मोह का त्याग कर दिया ॥

इस मन्त्र का मन से उच्चारण करे। तत्पश्चात् जल से अञ्जलि भर, पूर्वाभिमुख होकर संन्यास लेनेवाला:—

ओं अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥ मुझसे सब प्राणियों को अभय हो ॥

इस मन्त्र से दोनों हाथ की अञ्जलि को पूर्वदिशा में छोड़ देवे।

---

* पुत्रादि के मोह, वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटाकर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं वे ही सब को सत्योपदेश से अभयदान देते हैं अर्थात् दहिने हाथ में जल ले के मैंने आज से पुत्रादिका तथा वित्तका मोह और लोकमें प्रतिष्ठाकी इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझसे सब भूत प्राणिमात्र को अभय प्राप्त होवे यह मेरी सत्य वाणी है ॥

+ देखो पृष्ठ २३८

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे*
॥ १ ॥ अथर्व कां० ९ । सू० ५ । मं० १७ ॥

और इसी पर स्मृति है—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ १ ॥ मनु० १ ॥ अ० ६।३८

इस श्लोक का अर्थ पहिले लिख दिया है ॥

इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच वा सात केश रक्खे थे उनको एक एक उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अञ्जलि भरः—

ओमापो वै सर्वा देवताः स्वाहा ॥ ओं भूः स्वाहा ॥

इस मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलाञ्जलि को जल में होम कर देवे । उसके पश्चात् आचार्य शिष्य को जल से निकाल के काषाय वस्त्र की कौपीन, कटिवस्त्र, उपवस्त्र, अङ्गोछा प्रीतिपूर्वक देवे । और पृ० ६१ में लि० (यो मे दण्डः०) इस मन्त्र से दण्ड धारण-करके आत्मा में आहवनीयादि अग्नियों का आरोपण करे ।

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ६ । मं० १ ॥

(यः) जो पुरुष (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कारता से (ब्रह्म) परमात्मा को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिसके (परूंषि) कठोर स्वभाव आदि (संभारा) होम करने के साकल्य और (यस्य) जिसके (ऋचः) यथार्थ सत्यभाषण सत्योपदेश और ऋग्वेद (अनूक्यम्) अनुकूलता से कहने के योग्य वचन हैं वही संन्यास ग्रहण करे ॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ६ । मं० २ ॥

(यस्य) जिसके (सामानि) सामवेद (लोमानि) लोम के समान (यजुः) यजुर्वेद जिसके (हृदयम्) हृदय के समान (उच्यते) कहा जाता है (परिस्तरणम्) जो सब ओर से शास्त्र आसन आदि सामग्री (हविरित्) होम करने योग्य के समान है वह संन्यास ग्रहण करने में योग्य होता है ॥ २ ॥

* हे (अग्ने) विद्वान् ! (येन) जिससे (सहस्रम्) सब संसारको अग्नि धारण करता है और (येन) जिससे तू (सर्ववेदसम्) गृहाश्रमस्थ पदार्थमोह, यज्ञोपवीत और शिखा आदि को (वहसि) धारण करता है उनको छोड़ (तेन) उस त्याग से (नः) हमको (इमम्) यह संन्यासरूप (स्वः) सुख देने हारे [यज्ञम्] प्राप्त होने योग्य यज्ञ को [देवेषु] विद्वानों में [गन्तवे] जाने को [वह] प्राप्त हो ॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ । मं० ३ ॥

(वा) वा (यत्) जो (अतिथिपतिः) अतिथियोंका पालन करनेहारा (अतिथीन्) अतिथियों के प्रति (प्रतिपश्यति) देखता है वही विद्वान् संन्यासियों में (देवयजनम्) विद्वानों के यजन करने के समान (प्रेक्षते) ज्ञानदृष्टि से देखता और संन्यास लेने का अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ । मं० ४ ॥

और (यत्) जो संन्यासी (अभिवदति) दूसरे के साथ संवाद वा दूसरे को अभिवादन करता है वह जानो (दीक्षाम्) दीक्षा को (उपैति) प्राप्त होता है (यत्) जो [उदकम्] जल की [याचति] याचना करता है वह जानो (अपः) प्रणीता आदि में जल को [प्रणयति] डालता है ॥ ४ ॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ । मं० ५ ॥

[यज्ञे] यज्ञ में [याः एव] जिन्हीं [आपः] जलों का [प्रणीयन्ते] प्रयोग किया जाता है [ताः एव] वे ही [ताः] पात्र में रक्खे जल संन्यासी की यज्ञस्थ जलक्रिया है ॥ ५ ॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदो हविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ । मं० ६ ॥

संन्यासी [यत्] जो [आवसथान्] निवास का स्थान [कल्पयन्ति] कल्पना करते हैं वे [सदः] यज्ञशाला [हविर्धानान्येव] हवि के स्थापन करने के ही पात्र [तत्] वे [कल्पयन्ति] समर्थित करते हैं ॥ ६ ॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ७ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ । मं० ७ ॥

और [यत्] जो संन्यासी लोग [उपस्तृणन्ति] बिछौने आदि करते हैं (बर्हिरेव तत्) वह कुशपिंजूली के समान है ॥ ७ ॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥८॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६।२।मं० ४ ॥

और जो (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्) समीप बैठनेहारों के निकट बैठा हुआ (अतिथिः) जिसकी कोई नियत तिथि न हो वह भोजनादि करता है वह (आत्मन्) जानो वेदीस्थ अग्नि में होम करने के समान आत्मा में (जुहोति) आहुतियां देता हैं ॥ ८ ॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६,२ ॥ मं० ५ ॥

और जो संन्यासी (हस्तेन) हाथ से खाता है वह जानो (स्रुचा) चमसा आदि से वेदी में आहुति देता है जैसे (यूपे) स्तम्भ में अनेक प्रकार के पशु आदि को बांधते हैं वैसे वह संन्यासी (स्रुक्कारेण) स्रुव के समान (वषट्कारेण) होमक्रिया के तुल्य (प्राणे) प्राण में मन और इन्द्रियों को बांधता है ॥ ९ ॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥१०॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६,२ ॥ मं० ६ ॥

(एते, वै) ये ही (ऋत्विजः) समय २ में प्राप्त होनेवाले (प्रियाः च, अप्रियाः च) प्रिय और अप्रिय भी संन्यासी जन (यत्) जिस कारण (अतिथयः) अतिथिरूप हैं इससे गृहस्थ को (स्वर्गं लोकम्) दर्शनीय अत्यन्त सुखको (गमयन्ति) प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो वितंतो य उपहरति ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६,२ ॥ मं० ११ ॥

(एतस्य) इस संन्यासीका (प्राजापत्यः) प्रजापति परमात्मा को जानने का आश्रम धर्मानुष्ठानरूप (यज्ञः) अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म (विततः) व्यापक है अर्थात् (यः) जो इसको सर्वोपरि (उपहरति) स्वीकार करता है (वै) वही संन्यासी होता है ॥ ११ ॥

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥ १२ ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६,२ ॥ मं० १२ ॥

(यः) जो (एषः) यह संन्यासी (प्रजापतेः) परमेश्वर के जानने रूप संन्यासाश्रम के (विक्रमान्) सदाचारों की (अनुविक्रमते) अनुकूलता से क्रिया करता है (वै) वही सब शुभ गुणोंको (उपहरति) स्वीकार करता है ॥ १२ ॥

योतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ १३ ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६,२ ॥ मं० १३ ॥

(यः) जो (अतिथीनाम्) अतिथि अर्थात् उत्तम संन्यासियों का सङ्ग है (सः) वह संन्यासी के लिये (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि अर्थात् जिसमें ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी होम करता है और (यः) जो संन्यासी का (वेश्मनि) घर में अर्थात् स्थान में निवास है (सः) वह उसके लिये (गार्हपत्यः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्नि है और संन्यासी (यस्मिन्) जिस जाठराग्नि में अन्नादि को (पचन्ति) पकाते हैं (सः) वह (दक्षि-

णाग्निः) वानप्रस्थ सम्बन्धी अग्नि है इस प्रकार आत्मा में सब अग्नियों का आरोपण करे ॥ १३ ॥

इष्टं च वा एष पूर्त्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ अथर्व० कां० ६ ॥ अनु० ३ । सू० ६,३ ॥ मं० १ ॥

(यः) जो गृहस्थ (अतिथेः) संन्यासी से (पूर्वः) प्रथम (अश्नाति) भोजन करता है (एषः) यह जानो (गृहाणाम्) गृहस्थों के (इष्टम्) इष्ट सुख (च) और उसकी सामग्री [पूर्त्तम्] तथा जो ऐश्वर्यादि की पूर्णता [च] और उसके साधनों का [वै] निश्चय करके [अश्नाति] भक्षण अर्थात् नाश करता है। इसलिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित होवे उसको पूर्व जिमा कर पश्चात भोजन करना अत्युचित है ॥ १४ ॥

तस्यैवंविदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः, श्रद्धा पत्नी, शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा, हृदयं यूपः, काम आज्यं, मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता, दक्षिणा वाग्घोता प्राण, उद्गाता चक्षु, रध्वर्युर्मनो, ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीद् । यावद् ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोमपानं, यद्रमते तदुपसदो, यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो, यन्मुखं तदाहवनीयो या व्याहृतिराहुति-र्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति, यत्सायं प्रातरत्ति तत्समिधं, यत्प्रातर्मध्यन्दिनं सायं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपौर्णमासौ, येऽर्द्धमासाश्च मासाश्च ते चातु-र्मास्यानि, य ऋतवस्ते पशुबन्धा, ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः, सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं, यन्मरणं तदवभृथः एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रं, य एवं विद्वानुद-गयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वाऽऽदित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति, तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति, तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् ॥ तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६४ ॥

इसके आगे तैत्तिरीय आरण्यक का अर्थ करते हैं—[एवम्] इस प्रकार संन्यास ग्रहण किये हुए [तस्य] उस [विदुषः] विद्वान् संन्यासी के संन्यासाश्रमरूप [यज्ञस्य] अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ का [यजमानः] पति [आत्मा] स्वस्वरूप है, और जो ईश्वर, वेद और सत्यधर्माचरण, परोपकार में [श्रद्धा] सत्य का धारणरूप दृढ़ प्रीति है वह उसकी [पत्नी] स्त्री है, और जो संन्यासी का [शरीरम्] शरीर है वह [इध्मम्] यज्ञ के लिये इन्धन है, और जो उसका (उरः) वक्षःस्थल है वह (वेदिः)

कुण्ड, और जो उसके शरीर पर (लोमानि)) रोम हैं वे (वर्हिः) कुशा हैं, और जो (वेदः) वेद और उनका शब्दार्थसम्बन्ध जानकर आचरण करना है वह संन्यासी की (शिखा) चोटी है, और जो संन्यासी का (हृदयम्) हृदय है वह (यूपः) यज्ञ का स्तम्भ है, और जो इसके शरीर में (कामः) काम है वह (आज्यम्) ज्ञान अग्नि में होम करने का पदार्थ है और जो (मन्युः) संन्यासी में क्रोध है वह (पशुः) निवृत्त करने अर्थात् शरीर के मलवत् छोड़ने के योग्य है, और जो संन्यासी (तपः) सत्यधर्मानुष्ठान प्राणायामादि योगाभ्यास करता है वह (अग्निः) जानो वेदी का अग्नि है, जो संन्यासी (दमः) अधर्माचरण से इन्द्रियों को रोक के धर्माचरण में स्थिर रख के चलाता है वह (शमयिता) जानो दुष्टों को दण्ड देनेवाला सभ्य है और जो संन्यासी की (वाक्) सत्योपदेश करने के लिये वाणी है वह जानो सब मनुष्यों को [दक्षिणा] अभयदान देना है, जो संन्यासीके शरीर में (प्राणः) प्राण है वह (होता) होता के समान, जो (चक्षुः) चक्षु है वह (उद्गाता) उद्गाता के तुल्य, जो (मनः) मन है वह (अध्वर्युः) अध्वर्यु के समान, जो (श्रोत्रम्) श्रोत्र है वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा और (अग्नीत्) अग्नि लानेवाले के तुल्य (यावद्ध्रियते) जितना कुछ संन्यासी धारण करता है (सा) वह (दीक्षा) दीक्षाग्रहण, और (यत्) जो संन्यासी (अश्नाति) खाता है (तद्धविः) वह घृतादि साकल्य के समान, (यत् , पिवति) और जो वह जल दुग्धादि पीता है (तदस्य, सोमपानम्) वह इसका सोमपान है, और (यद्रमते) वह जो इधर उधर भ्रमण करता है (तदुपसदः) वह उपसद उपसामग्री, (यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते) जो वह गमन करता, बैठता और उठता है (स प्रवर्ग्यः) वह इसका प्रवर्ग्य है, (यन्मुखम्) जो इसका मुख है (तदाहवनीयः) वह संन्यासी को आहवनीय अग्नि के समान, (या व्याहृति राहुतिर्यदस्य विज्ञानम्) जो संन्यासी का व्याहृति का उच्चारण करना वा जो इसका विज्ञान आहुतिरूप है (तज्जुहोति) वह जानो होम कर रहा है, (यत्सायं प्रातरत्ति) संन्यासी जो सायं और प्रातः काल भोजन करता है (तत्समिधम्) वे समिधा हैं, (यत्प्रातर्मध्यन्दिनं सायं च) जो संन्यासी प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में कर्म करता है (तानि सवनानि) वे तीन सवन (ये अहोरात्रे) जो दिन और रात्रि हैं, (ते दर्शपौर्णमासौ) वे संन्यासी के पौर्णमासेष्टि और अमावास्येष्टि हैं, (येऽर्धमासाश्च मासाश्च) जो कृष्ण शुक्लपक्ष और महीने हैं (ते चतुर्मास्यानि) वे संन्यासी के चातुर्मास्य याग हैं, (ये ऋतवः) जो वसन्तादि ऋतु हैं (ते पशुबन्धाः) वे जानो संन्यासी के पशुबन्ध अर्थात् दे पशुओं का बांधना रखना है, (ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च) जो संवत्सर और परिवत्सर अर्थात् वर्ष वर्षान्तर हैं (तेऽहर्गणाः) वे संन्यासी के अहर्गण दो रात्रि वा तीन रात्रि

आदि के व्रत हैं, जो (सर्ववेदसं वै) सर्वस्व दक्षिणा अर्थात् शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रमचिह्नों का त्याग करना है (एतत्सत्रम्) यह सब से बड़ा यज्ञ है, (यन्मरणम्) जो संन्यासी का मृत्यु है (तदवभृथः) वह यज्ञान्तस्नान है, (एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रम्) यही जरावस्था और मृत्युपर्यन्त अर्थात् यावत् जीवन है तावत् सत्योपदेश योगाभ्यासादि संन्यास के धर्म का अनुष्ठान अग्निहोत्ररूप बड़ा दीर्घ यज्ञ है, (य एवं विद्वानुदगयने०) जो इस प्रकार विद्वान् संन्यास लेकर विज्ञान योगाभ्यास करके शरीर छोड़ता है वह विद्वानों ही के महिमाको प्राप्त होकर स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा के संग को प्राप्त होता है। और जो योग विज्ञान से रहित है सो सांसारिक दक्षिणायनरूप व्यवहार में मृत्युको प्राप्त होता है। वह पुनः २ माता पिताओं हीके महिमाको प्राप्त होकर चन्द्रलोक के समान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है। और जो इन दोनों के महिमाओं को विद्वान् ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी जीत लेता है वह उससे परे परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर मुक्ति के समय पर्य्यन्त मोक्ष सुख को भोगता है।

अथ संन्यासे पुनः प्रमाणानि।

न्यास इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कतमः स्वयम्भूः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा। यभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा श्रद्धा श्रद्धया मेधा मेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शान्तिः शान्त्या चित्तं चित्तेन स्मृतिं स्मृत्या स्मारं स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति तस्मादन्नं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददात्यन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानां प्राणैर्मनो मनसश्च विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च दिशश्चावान्तरदिशश्च स वै सर्वमिदं जगत् स भूतं स भव्यं जिज्ञासक्लृप्त ऋतजा रयिष्ठाः श्रद्धा सत्यो महस्वांस्तमसो वरिष्ठात्। ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान्। तस्मान् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः। वसुरण्वो विभूरसि प्राणे त्वमसि सन्धाता ब्रह्मंस्त्वमसि विश्वसृत्तेजोदास्त्वमस्यग्नेरसि वर्चोदास्त्वमसि सूर्यस्य द्युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमस उपयामगृहीतोसि ब्रह्मणे त्वा महसे। ओमित्यात्मानं युञ्जीत। एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम्। य

एवं वेद ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् ॥ तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६३ ॥

(न्यास इत्य हुर्मनीषिणः) इस अनुवाक का अर्थ सुगम है इसलिये भावार्थ कहते हैं। न्यास अर्थात् जो संन्यास शब्द का अर्थ पूर्व कह आये उस रीति से जो संन्यासी होता है वह परमात्मा का उपासक है। वह परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त और पूर्ण है, कि जिसके प्रताप से सूर्य तपता है। उस तपनेसे वर्षा, वर्षासे ओषधी वनस्पतिकी उत्पत्ति, उनसे अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से बल, बल से तप अर्थात् प्राणायाम योगाभ्यास, उससे श्रद्धा सत्यधारण में प्रीति, उससे बुद्धि, बुद्धि से विचारशक्ति, उससे ज्ञान, ज्ञान से शान्ति; शान्ति से चेतनता, चित्त से स्मृति, स्मृति से पूर्वापर का ज्ञान उससे विज्ञान और विज्ञान से आत्माको संन्यासी जानता और जनाता है। इसलिये अन्नदान श्रेष्ठ जिससे प्राण बल विज्ञानादि होते हैं। जो प्राणों का आत्मा, जिससे यह सब जगत् ओत प्रोत व्याप्त हो रहा है वह सब जगत् का कर्त्ता वही पूर्वकल्प और उत्तरकल्प में भी जगत् को बनाता है। उसके जानने की इच्छा से उसको जान कर हे संन्यासिन्! तू पुनः २ मृत्यु को प्राप्त मत हो। किन्तु मुक्ति से पूर्ण सुख को प्राप्त हो। इसलिये सब तपों का तप, सब से पृथक् उत्तम संन्यास को कहते हैं। हे परमेश्वर! जो तू, सब में वास करता हुआ विभु है, तू प्राण का प्राण; सबका सन्धान करनेहारा, विश्व-स्रष्टा धर्त्ता, सूर्य्यादि को तेजदाता है। तू ही अग्नि से तेजस्वी तू ही विद्यादाता तू ही सूर्य का कर्त्ता, तू ही चन्द्रमाके प्रकाश का प्रकाशक है। वह सब से बड़ा पूजनीय देव है। (ओम्) इस मन्त्र का मन से उच्चारण करके परमात्मा में आत्मा को युक्त करे। जो इस विद्वानों की ग्राह्य महोत्तम विद्या को उक्त प्रकार से जानता है वह संन्यासी परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर आनंद में रहता है।

संन्यासीका कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य।

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१॥ यजु० अ० ३६। मं० १८॥

अर्थः—(दृते) सर्वदुःखविदारक परमात्मन्! तू (मा) मुझको संन्यासमार्ग में (दृंह) बढ़ा। हे सर्वमित्र! तू (मित्रस्य) सर्व सुहृद् आप्त पुरुष की (चक्षुषा दृष्टि से (मा) मुझको सब का मित्र बना। जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र मुझको मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की

(चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब जीवों को (समीक्षे) देखूं इस प्रकार आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग एक दूसरे को (मित्रस्य चक्षुषा) सुहृद्भाव की दृष्टि से (समीक्षामहे) देखते रहें ॥ १ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ २ ॥य० अ० ४०। मं० १६ ॥

हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप सब दुःखों के दाहक (देव) सब सुखों के दाता परमेश्वर! (विद्वान्) आप (राये) योग विज्ञानरूप धन की प्राप्ति के लिये (सुपथा) वेदोक्त धर्ममार्ग से (अस्मान्) हम को (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को (नय) कृपा से प्राप्त कीजिये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल पक्षपातसहित (एनः) अपराध पापकर्म को (युयोधि) दूर रखिये और इस अधर्माचरण से हम को सदा दूर रखिये इसलिये (ते) आप ही की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार (नम उक्तिम्) नमस्कारपूर्वक प्रशंसा को नित्य (विधेम) किया करें ॥ २ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ३ ॥य० अ० ४० । मं० ६ ॥

(यः) जो संन्यासी (तु) पुनः (आत्मन्येव) आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही में तथा अपने आत्मा के तुल्य (सर्वाणि भूतानि) सम्पूर्ण जीव और जगतस्थ पदार्थों को (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणी अप्राणियों में (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) इस कारण वह किसी व्यवहार में (न विचिकित्सति) संशय को प्राप्त नहीं होता अर्थात परमेश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सबसाक्षी जान के अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणिमात्र को ज्ञान लाभ सुख दुःखादि व्यवस्था में देखे वही उत्तम संन्यासधर्म को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाऽभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४ ॥ यजु० अ० ४० । मं० ७ ॥

(विजानतः) विज्ञानयुक्त संन्यासी का (यस्मिन्) जिस पक्षपातरहित धर्मयुक्त संन्यास में (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणिमात्र (आत्मैव) आत्मा ही के तुल्य जानना अर्थात जैसा अपना आत्मा अपने को प्रिय है उसी प्रकार का निश्चय (अभूत्) होता है (तत्र) उस संन्यासाश्रम में (एकत्वमनुपश्यतः) आत्मा के एक भाव को देखनेवाले संन्यासी को (को, मोहः) कौनसा मोह और (कः शोकः) कौनसा शोक होता है अर्थात् न

उसको किसी से कभी मोह और न शोक होता है इसलिये संन्यासी मोह शोकादि दोषोंसे रहित होकर सदा सब से उपकार करता रहे ॥ ४ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ५ ॥ य० अ० ३२। मं० ११ ॥

इस प्रकार परमात्मा की स्तुति प्रार्थना और धर्म में दृढ़ निष्ठा करते जो (भूतानि) सम्पूर्ण पृथिव्यादि भूतों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान्) सम्पूर्ण लोकों में (परीत्य) पूर्ण हो और (सर्वाः) सब (प्रदिशो, दिशश्च) दिशा और उपदिशाओं में (परीत्य) व्यापक होके स्थित है (ऋतस्य) सत्यकारण के योग से (प्रथमजाम्) सब महत्तत्त्वादि सृष्टि को धारण करके पालन कर रहा है उस (आत्मानम्) परमात्माको संन्यासी (आत्मना) स्वात्मा से (उपस्थाय) समीप स्थिर होकर उसमें (अभिसंविवेश) प्रतिदिन समाधियोग से प्रवेश किया करे ॥ ५ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९ ॥

हे संन्यासी लोगो! (यस्मिन्) जिस (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक (अक्षरे) नाशरहित परमात्मा में (ऋचा) ऋग्वेदादि वेद और (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक और समस्त विद्वान् (अधिनिषेदुः) स्थित हुए और होते हैं (यः) जो जन (तत्) उस व्यापक परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) वेदादि शास्त्र पढ़ने से (किं, करिष्यति) क्या सुख व लाभ कर लेगा अर्थात् विद्या के विना परमेश्वर का ज्ञान कभी नहीं होता और विद्या पढ़ के भी जो परमेश्वर को नहीं जानता और न उसकी आज्ञा में चलता है वह मनुष्य शरीर धारण करके निष्फल चला जाता है। (ये) जो विद्वान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते, इमे, इत्) वे ही उस परमात्मा में (समासते) अच्छे प्रकार समाधियोग से स्थिर होते हैं ॥ ६ ॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ १७ ॥ कठवल्ली ॥

(समाधिनिर्धूतमलस्य) समाधियोग से निर्मल (चेतसः) चित्त के सम्बन्ध से (आत्मनि) परमात्मा में (निवेशितस्य) निश्चल प्रवेश कराये हुये जीव को (यत्) जो (सुखम्) सुख (भवेत्) होवे वह (गिरा) वाणी से (वर्णयितुम्, न, शक्यते) कहा नहीं जा सकता क्योंकि (तदा) तब वह समाधि में स्वयं स्थित जीवात्मा (तत्) उस ब्रह्म को (अन्तः

करणेन) शुद्ध अन्तःकरण से (गृह्यते) ग्रहण करता है, वह वर्णन करनेमें पूर्ण रीति से कभी नहीं आ सकता, इसलिये संन्यासी लोग परमात्मा में स्थित रहे और उसकी आज्ञा अर्थात् पक्षपातरहित न्याय धर्म में स्थित होकर सत्योपदेश सत्यविद्या के प्रचार से सब मनुष्यों को सुख पहुंचाता रहे ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥१॥ मनु०॥ अ०२ श्लो०१६२॥
यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥२॥ मनु०॥ अ०४ श्लो०२०४

अर्थः—संन्यासी जगत् के सन्मान से विष के तुल्य डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे, क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित होजाता है, इसलिये चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर बांधे, चाहे अन्न पान वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत उष्ण कितना ही क्यों न हो इत्यादि सब का सहन करे, और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे. इससे परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने, परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे, न वेदविरुद्ध कुछ माने, परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने, आप सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और आप सेवक बना रहे वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे, जिस २ कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो वा माता, पिता, पुत्र, स्त्री पति, बन्धु, बहिन, मित्र, पड़ोसी, नौकर बड़े और छोटों में विरोध छूट कर प्रेम बढ़े उस २ का उपदेश करे, जो वेद से विरुद्ध मतमतान्तर के ग्रंथ बायबिल, कुरान, पुराण, मिथ्याभिलाप तथा काव्यालङ्कार कि जिनके पढ़ने सुनने से मनुष्य विषयी और पतित होजाते हैं उन सब का निषेध करता रहे, विद्वानों और परमेश्वर से भिन्न न किसी को देव, तथा विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग और सत्यभाषणादि से भिन्न न किसी को तीर्थ और विद्वानों की मूर्त्तियों से भिन्न पाषाणादि मूर्त्तियों को न माने न मनवावे। वैसे ही गृहस्थों को माता, पिता, आचार्य, अतिथि, स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्त्ति से भिन्न किसी की मूर्त्ति को पूज्य न समझावे किन्तु वैदिकमत की उन्नति और वेदविरुद्ध पाखण्डमतों के खण्डन करने में सदा तत्पर रहे। वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और तद्विरुद्ध ग्रन्थों वा मतों में अश्रद्धा किया कराया करे। आप शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त होकर सबको इसी प्रकारके करने में

प्रयत्न किया करे और जो पूर्वोक्त उपदेश लिखे हैं उन २ अपने संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों को किया करे। खण्डनीय कर्मों का खण्डन करना कभी न छोड़े। आसुर अर्थात् अपने को ईश्वर ब्रह्म माननेवालों का भी यथावत् खण्डन करता रहे। परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव और न्याय आदि गुणों का प्रकाश करता रहे। इस प्रकार कर्म करता हुआ स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रक्खे। सर्वदा (अहिंसा) निर्वैरता, (सत्यम्) सत्य बोलना सत्य मानना सत्य करना, (अस्तेयम्) मन वचन कर्म से अन्याय करके परपदार्थ का ग्रहण न करना चाहिये न किसी को करने का उपदेश करे, (ब्रह्मचर्यम्) सदा जितेन्द्रिय होकर अष्टविध मैथुनका त्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति करके चिरञ्जीवी होकर सब का उपकार करता रहे, (अपरिग्रहः) अभिमानादि दोष रहित किसी संसार के धनादि पदार्थों में मोहित होकर कभी न फंसे। इन ५ (पांच) यमों का सेवन सदा किया करे। और इन के साथ ५ (पांच) नियम अर्थात् (शौच) बाहर भीतर से पवित्र रहना, (सन्तोष) पुरुषार्थ करते जाना और हानि लाभ में प्रसन्न और अप्रसन्न न होना, (तपः) सदा पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म का सेवन प्राणायामादि योगाभ्यास करना, (स्वाध्याय) सदा प्रणव का जप अर्थात् मन में चिन्तन और उसके अर्थ ईश्वर का विचार करते रहना, (ईश्वरप्रणिधान) अर्थात् अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीता हुआ भोगकर शरीर छोड़ के सर्वानन्दयुक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के मुख्य कर्म हैं। हे जगदीश्वर सर्व शक्तिमन् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव अजर अमर पवित्र परमात्मन्! आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के परममुक्ति सुख को प्राप्त कराते रहिये।

इति संन्याससंस्कारविधिः समाप्तः॥



अथान्त्येष्टिकर्मविधिं वक्ष्यामः ।



अन्त्येष्टि कर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है, जिसके आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध पुरुषमेध नरयाग भी कहते हैं ॥

भस्मान्तं शरीरम् ॥ यजु० अ० ४० । मं० १५ ॥

इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥ १ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० ॥

शरीर का आरम्भ ऋतुदान और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २ ॥

(प्रश्न) जो गरुड़पुराण आदि में दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डीकर्म, मासिक वार्षिक गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं? (उत्तर) हां, अवश्य मिथ्या हैं, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं। और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का। वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है। (प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है? (उत्तर) यमालय को (प्रश्न) यमालय किसको कहते हैं? (उत्तर) वाय्वालय को। (प्रश्न) वाय्वालय किसको कहते हैं? (उत्तर) अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है। (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में यमलोक लिखा है वह झूठा है? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है। (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है? (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से। जो यम की कथा लिख रक्खी है वह सब मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों का नाम है ॥

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० १५ ॥

शकेम वाजिनो यमम् ॥ ऋ० मं० २ । सू० ५ । मं० १ ॥

यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥ यजु० अ० ८ । मं० ५७ ॥

वाजिनं यमम ॥ ऋ० मं० ८ । सू० २४ । मं० २२ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ४६ ॥

यहां ऋतुओं का यम नाम है ॥ १ ॥ यहां परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥ यहां अग्नि का नाम ॥ ३ ॥ यह वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं ॥ ४ ॥ यहां भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥ यहां परमेश्वर का नाम यम है । इत्यादि पदार्थों का नाम यम है इसलिये पुराण आदि की सब कल्पना झूठी हैं ॥ ६ ॥

विधि—संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥१॥

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां उसको स्नान करावें, चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें, जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें, और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिसके पास कुछ भी नहीं है उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आध मन से कम घी न देवें, और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तौल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक २ मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल, कपूर, पलाश आदि के पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावे । तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में ले जाय । यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमिमें खोदे । वह श्मशान का स्थान बस्तीसे दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो । वहां भूमि को खोदे । मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें, शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥ १ ॥

दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥ २ ॥

मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे ॥२॥

यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥ ३ ॥

उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लंबे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥ ३ ॥

वितस्त्यर्वाक् ॥ ४ ॥ केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ५ ॥ द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥ ७ ॥ अथैतां दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥ आश्वलायन० अ० ४ । कण्डि० १ । सू० ६—१७तथा कण्डि० २ सू० १ ॥

और नीचे आध हाथ अर्थात् एक वीता भर रहे। उस वेदी में थोड़ा २ जल छिड़कावे। यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करदे। उसमें नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियां चिने, जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं, अर्थात् बराबर जमाकर लकड़ियां धरे। लकड़ियों के बीच में थोड़ा थोड़ा कपूर थोड़ी थोड़ी दूर पर रक्खे। उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे, और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने, वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने। जबतक यह क्रिया होवे तबतक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत तपा और छान कर पात्रों में रक्खे। उसमें कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे। लम्बी २ लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चांदी सोने के अथवा लोहे के हों जिस चमसा में एक छटांक भर से न्यून घृत न आवे खूब दृढ़ बन्धनों से डण्डों के साथ बांधे। पश्चात् घृत का दीपक करके, कपूर में लगाकर, शिर से आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य २ में अग्नि प्रवेश करावे। अग्नि प्रवेश कराके:—

ओमग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओं लोकाय स्वाहा। ओमनुमतये स्वाहा। ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा॥ आश्वला० अ०४। कं०३। सू० २५-२६॥

अग्नि, सोम, भू लोक, अनुमति और स्वर्ग-लोक के लिये ये आहुतियां हैं॥

इन पांच मन्त्रों से आहुतियां देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवे। तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े रहकर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जायं, जहां स्वाहा आवे वहाँ आहुति छोड़ देवें॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा॥ १॥ ऋ० मण्डल १० सू० १६। मन्त्र ३॥

हे मृत पुरुष तेरा चक्षु सूर्य में और प्राण वायु में मिल जाय अर्थात् जो शक्ति जहांसे आयी थी वहीं चली जाय। तथा तेरा जीवात्मा अपने धर्म कर्म आदिके अनुसार आकाश, पृथ्वी, जल अथवा वनस्पतियों में रहने वाले जन्तुओं की जिस योनिके योग्य हो उसको प्राप्त करे॥ १॥

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। यास्ते शिवा-

तेरा जो अजन्मा भाग अर्थात् जीवात्मा है उसको तू धर्माचरणादि तपसे तपा और तेरा जो दूसरा स्थूल शरीरका भाग है उसको अग्निकी गर्मी और ज्वालायें तपावें अर्थात् भस्म करें। हे जातवेदः (परमात्मन्), तेरे पास जो कल्याणकारी शरीर

स्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥२॥ ऋ०मं०१० ।सू०१६ ।मं० ४

हैं उनके द्वारा इस जीवको उत्तम लोकमें लेजा अर्थात् यह क्रमशः उत्तम योनियों को प्राप्त करता हुआ मुक्त हो जाय ॥ २ ॥

अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः । आयुर्वसान उपवेतु शेषः सङ्गच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं०१०। सूक्त १६ मंत्र ५ ॥

हे अग्ने ! यह जो प्राणी घृतादिकी आहुतियों सहित तेरी ज्वालाओं में पड़ा है इसको तू फिर भी माता पिताके (इसके) लिये उत्पन्न कर और यह आयु को धारण करता हुआ शरीर सहित फिर हमारे समीप आवे ॥ ३ ॥

अग्नेर्वर्म परिगोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च। नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥४॥ ऋ० मं० १०। सू० १६। मं० ७ ॥

हे मृत! तू अपने शरीर को घृतादियों द्वारा अग्निसे अच्छी तरह आवृत करले और अपने पीव चरबीसे पूर्णतया जल जा। नहीं तो लोभी लालची हरण करने वाले झपटने वाले मांस-भोजी गिद्ध गीदड़ आदि हीन जन्तु घेरकर इसकी दुर्गति करेंगे ॥ ४ ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः। कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० मं०१० । सू० १६ । मं० १३ ॥

हे अग्ने ! जिस शरीरको तूने जलाया है - उसके जल चुकने पर तू शांत हो जा और इस स्थान पर फिर से नाना शाखा वाली घास और हरियाबल उग जाय ॥ ५ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १४ मन्त्र १

बड़े बड़े धर्मात्मा पुरुषों को भी प्राप्त होने वाले, अनेकों जीवों को परलोकका मार्ग दिखाने वाले और मनुष्यों को सूर्यलोक (मुक्ति) तक पहुंचाने वाले, मृत्यु के राजा यम (परमात्मा) की हविसे (यज्ञादि सत्कर्मों से, क्योंकि उन्हीं से मुक्ति प्राप्त हो सकती है) सेवा कर ॥ ६ ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥७॥ ऋ० मं०१०। सू०१४ ।मं०२

यम (शुभाशुभ कर्मो के अनुसार फलोंका नियमन करने वाला परमात्मा) ही सबसे प्रथम हमारे कर्मोंको जानता है। हमारे पूर्वज पिता पितामहादि अपने कर्मानुसार जहां गये हैं, सब प्राणी उत्पन्न हो कर उसी मार्ग से जायंगे। इस कर्म-फलकी परम्पराको कोई टाल नहीं सकता ॥ ७ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृ-

समृद्ध धनी पुरुष कवियोंकि स्तुतिसे. यम प्राण विद्या के ज्ञाता योगियों से और संसारका स्वामी ऋचाओं (वेद-मन्त्रों) से प्रसन्न होते हैं। जो

धुर्यें च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥८॥ ऋ०मं०१० । सू०१४। मं०३

देवोंको (संसारकी भौतिक शक्तियों को) स्वाहा अर्थात् यज्ञादिसे संतुष्ट करते हैं ! उनको देव अन्नादि द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥ ८॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ॥ ९ ॥ऋ०मण्डल १० । सूक्त१४ मन्त्र ४ ॥

हे यम, तू प्राण-विद्याके ज्ञाता योगियों की मुक्त आत्माओं सहित यहां (श्मशान-भूमिमें) आकर उपस्थित हो और विद्वान् लोग तेरी मन्त्रों द्वारा स्तुति करें तथा तू अग्निमें छोड़ी हुई आहुतियों द्वारा सब जगत् को प्रसन्न कर ॥ ९ ॥

अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे वर्हिष्यानिषद्य स्वाहा ॥ १० ॥ ऋ०मं० १० । सू० १४। मं०५

हे यम, तू पूजनीय और नाना रूप वाले योगी आत्मा सहित यहां आ । हम तेरे पिता (कर्म और फलके नियम के स्रष्टा परमात्मा) का आह्वान करते हैं कि वह इस यज्ञमें उपस्थित हो ॥ १० ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥११॥ ऋ० मं०१० । सू० १४। मं० ७॥

हे मृत जीव, जिस मार्गसे हमारे पूजनीय पितर (विद्वान् पुरुष) गये हैं तू भी उसी धर्म-मार्गसे जा । और जाकर प्रसन्न होते हुए मुक्त जीवात्माओं और ईश्वर दोनों को देख ॥ ११ ॥

सङ्गच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥ १२ ॥ ऋ० मं० १० । सू०१४। मं० ८ ॥

हे मृत जीव, तू मुक्त हो कर स्वर्ग-लोकमें पितरों विद्वान् मुक्तात्माओं और सब अभीष्टों के साधक परमात्मा से मिल जा । और मुक्ति-काल समाप्त हो चुकने पर, पापों को छोड़ कर फिर इस संसारमें आ तथा सुन्दर शरीर से संयोग प्राप्त कर ॥ १२ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥ १३ ॥ ऋ०मं०१० । सू०१४ । मं० ९

हे पुरुषो, तुम सब यहां से हट जाओ, दूर हो जाओ और चले जाओ । पितरोंने इस लोककी रचना केवल इसी मृत जीव के लिये की है, अर्थात् मृत जीव अपने कर्माऽनुसार योनि आदि पावेगा । सगे सम्बन्धी आदि उसमें कुछ नहीं कर सकते । यमने (कर्म-फल के नियन्ताने) ही इस के लिये जलादिसे पवित्र यह दहन-स्थान नियत किया है॥ १३ ॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः स्वाहा ॥ १४ ॥ ऋ०मं० १०। सू०१४। मं० १३ ॥

यम के लिये सोमलतादि ओषधियां उत्पन्न करो, यमके लिये आहुति दो। अलंकृत यज्ञ भी अग्नि को साधन बनाकर यम को ही प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा ॥१५॥ ऋ० मं० १०। सू०१४। मन्त्र १४ ॥

यम के लिये घृत से युक्त आहुति दो और यम की अन्य प्रकार पूजा करो। वही हमारे विद्वान् पुरुषोंको जीनेके लिये दीर्घ आयु का दान करता है ॥ १५ ॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ ऋ० मं० १०। सू० १४। मन्त्र १५ ॥

(प्राणिमात्र के) राजा यम के लिये सब से मधुर पदार्थों का हवन करो। जिन प्राचीन विद्वान् ऋषियोंने ईश्वर-पूजाका यह मार्ग बना दिया है उन को नमस्कार हो ॥ १६ ॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्। हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥ १७ ॥ ऋ० मं० १०। सू० २०। मं० ९ ॥

प्राणियों की जीवन-यात्रा के लिये बनाया गया गया ईश्वर का यह जगत अत्यंत विस्तृत सरल प्रकाशमान और सत्व-रजः-तमो गुण-मय है। इसे स्रष्टाने खूब चमकीला (आकर्षक) बनाया है ॥ १७ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने सत्रह सत्रह आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥ अग्नये स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥ वायवे स्वाहा ॥ ५ ॥ दिवे स्वाहा ॥ ६ ॥ सूर्याय स्वाहा ॥७॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥८॥ चन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥१०॥ अद्भ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ वरुणाय स्वाहा ॥ १२ ॥ नाभ्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ पूताय स्वाहा ॥ १४ ॥ वाचे स्वाहा

जीवात्मा सहित प्राणों के लिये यह आहुति है ॥ १ ॥

पृथ्वी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश सूर्य, दिशाओं, चन्द्र, नक्षत्र, जल, वरुण, नाभि, पवित्र

॥ १५ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥१६॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥ १८ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥ १९ ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥२०॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥२१॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥२३ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २४ ॥ त्वचे स्वाहा ॥२५ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥२७ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ माᳬसेभ्यः स्वाहा ॥३०॥ माᳬसेभ्यः स्वाहा ॥३१॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थिभ्यः स्वाहा ॥३४॥ अस्थिभ्यः स्वाहा ॥३५॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥३७॥ रेतसे स्वाहा ॥३८॥ पायवे स्वाहा ॥ ३९ ॥ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ प्रयासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ संयासाय स्वाहा ॥ ४२ ॥ वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ शुचे स्वाहा ॥ ४५ ॥ शोचते स्वाहा ॥ ४६ ॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ ॥ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥५१॥ तप्ताय स्वाहा ॥ ५२ ॥ घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ भेषजाय स्वाहा ॥ ५६ ॥ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ अन्त-

(पदार्थ), वाणी, प्राणों, आंखों, कानों, लोमों, खाल, रुधिर, चरबी, नसों, हड्डियों, वीर्य, मज्जा और गुदाके लिये ये आहुतियां हैं ॥ २—३९ ॥

अर्थात् शरीर के इन सब अङ्गों की सद्गति हो तथा पूर्वकथित भौतिक शक्तियां इन की सद्गति में सहायक हों ॥

आयास, प्रयास, संयास, वियास, उद्यास, (ये सब दिशा-भेद से यत्न के विविध प्रकार हैं), शुद्धि, शुद्ध करने वाले, शुद्ध होनेवाले, शोक, तप, तप करने वाले, जिससे तप कराया जा रहा है उसके लिये, जो तप कर चुका है उस के लिये, धूप, बदले, प्रायश्चित्त, औषध, यम, मृत्यु, परमात्मा, ब्रह्म-हत्या, सब भौतिक शक्तियों और विद्वानों और द्युलोक तथा पृथिवी-लोकके लिये ये आहुतियां हैं ॥४०-६३॥

काय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ३९ ॥

इन ६३ (तिरसठ) मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् पृथक् देके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे।

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० ७ ॥

इस मंत्रका आशय बिल्कुल वही है जो इस संस्कारके आरम्भ में (देखो पृष्ठ २५३) ही ऋ० मं० १० सू० १६ मं० ३ का लिखा जा चुका है। अथर्ववेद में इस मन्त्र के पूर्वार्ध की शब्द रचना में तनिक भेद हो गया है, अर्थ नहीं बदला ॥ १ ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १४ ॥

कुछ पितर ऐसे हैं जिन को सोम-रस रुचता है और कुछ ऐसे हैं जिन को घी ही प्रिय है। इन दोनों के सिवा जो मीठे पदार्थों के शौकीन हैं उन सब को इस आहुति का सुफल प्राप्त हो ॥ २ ॥

ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥३॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १५ ॥

जो मुक्त ऋषि पहिले सत्यको खोज करनेवाले सत्यका आचरण करने वाले और सत्यसे ही बढ कर बड़े बनने वाले हैं उन सब तपस्वी ऋषियों को भी इस आहुति का सुफल प्राप्त हो ॥ ३ ॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः। तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १६ ॥

जो लोग अपने तपके करके कारण अदम्य हैं, जिन्होंने तप द्वारा ही (मुक्ति-) सुख प्राप्त किया है और जिन्होंने बड़ा तप किया है उन सब को इस आहुति का सुफल हो ॥४।

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः। ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १७ ॥

जो वीर क्षत्रिय (देश और राष्ट्रके लिये) युद्धों में लड़ते हैं और प्राण त्याग देते हैं अथवा जो वैश्य (राष्ट्रीय व सामाजिक कार्यों के लिये) दान कर डालते हैं, उन सबको इस आहुति का सुफल प्राप्त हो ॥ ५ ॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी। यच्छास्मै शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥६॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १९॥

हे पृथिवि, इस मृत जीवके लिये तू सुख दायिनी, कण्टकादि-रहित और स्थान देने वाली हो। इसे तू बहुत सुख दे ॥ ६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तन्निर्वहत परि ग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ॥ ७ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० २७॥

इस जीव को अभी तक (कर्म-फलोंने) रोका हुआ था, (परन्तु) अब यह मर चुका है इस लिये इसे घरोंसे निकाल कर ग्राम के बाहर ले जाओ। मृत्यु यमका ज्ञानी दूत है, उसने इसके प्राणों को पितृ-लोक में पहुंचा दिया है ॥ ७ ॥

यमः परोवरो विवस्वांस्ततः परं नातिपश्यामि किञ्चन। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान स्वाहा ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० ३२॥

यम ही सबसे बड़ा अन्धकार का नाशक है, मैं उससे बढ़ कर किसीको नहीं देखता। (इस कारण) मेरा यज्ञादि कर्म उसी यम में केन्द्री-भूत है। इस सब जगत का जंजाल इसी ईश्वरने फैलाया है ॥८॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते। उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० ३३॥

रोगादि दूर करनेके कारण मनुष्यों के लिये अमृत-रूपिणी और अन्धकार दूर करने के कारण चमकीली नाना वर्णा-वाली सूर्य की किरणों के तत्वको विद्वानों ने जान कर अपने हृदय में सुरक्षित रखा हुआ है। वही सूर्य की किरणें प्राण और अपान की रक्षा करतीं और दिन और रातके मिथुनको बनाने वाली हैं ॥ ९ ॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे। ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चावगच्छतात् स्वाहा ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० ५६ ॥

हे जीव, प्राण जिसमें से निकल चुके हैं ऐसे तेरे शरीरको वहन करने के लिये मैं इन दो (सूक्ष्म और स्थूल) अग्नियों को नियुक्त करता हूं। इनके द्वारा तू ईश्वर को तथा मुक्त जीवोंकी सङ्गतिको प्राप्त कर ॥ १० ॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकर:—

अग्नये रयिपते स्वाहा ॥ १ ॥

धन धान्य का सम्पादन करने वाले अग्नि के लिये यह आहुतियां हैं ॥ १ ॥

पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे। यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥ २ ॥

जीव को (सूक्ष्म-शरीर के साथ जाने वाली) कर्म-संस्कार शक्तिसे पापोंको दूर करके हम शुद्ध हो जायं। हमारे पास बुढापे से पूर्व कोई पाप न आवे ॥ २ ॥

य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥

जो इस कर्म-फल अथवा जीवन-मरण-रूप मार्ग के रक्षक हैं उनके लिये० ॥ ३ ॥

य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥

जो इस मार्ग के रक्षक और अभिरक्षक हैं उन के लिये० ॥ ३—५ ॥ (गोपन, रक्षण और अभिरक्षण में अर्थ का सूक्ष्म भेद है)।

ख्यात्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

अपाख्यात्रे स्वाहा ॥ ७ ॥

अभिलालपते स्वाहा ॥ ८ ॥

अपलालपते स्वाहा ॥ ९ ॥

हमारा यश और अपयश फैलाने वाले तथा प्रशंसा और निन्दा करने वाले के लिये० ॥ ६—९ ॥

अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० ॥

पाक और यज्ञादि कर्म सिद्ध करने वाले अग्नि के लिये० ॥ १० ॥

यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥ ११ ॥

जिसका यहां नाम नहीं लिया उसके लिये०॥११॥

अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥

सर्व-हित-कारी अग्नि और उत्तम श्रेणी के पुरुषों के निवास-स्थान के लिये० ॥ १२ ॥

आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता । आसीदताᳬ सुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥

(वेदोंसे नियत) स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होनेवाला यम देव, उत्तम रक्षाओं सहित यहां आवे। वह यहां आकर इस प्रयत्नसे बनाये हुए यज्ञासन पर बैठे और मुझे बल तथा उत्तम जन्म दे और शत्रुओं का नाश करे ॥ १३ ॥

योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जो इस समस्त पार्थिक जगत् का एक मात्र वश में रखने वाला और अद्वितीय अजेय राजा है, उसी यम की उत्तम सङ्गीत-युक्त स्तुतियोंसे उपासना किया करो ॥ १४ ॥

यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजाऽनपरोध्यः । येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढ़ा स्वाहा ॥ १५ ॥

संसार के अद्वितीय अजेय राजा के कारण जल, नदियां, निर्जल स्थान, द्यु-लोक और पृथिवी-लोक अपने अपने नियम में चल रहे हैं, उसी यम की उत्तम गीतों द्वारा स्तुति करो ॥ १५ ॥

हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान् हिरण्याक्षानयःशफान् । अश्वानन‌श्यतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥

सुन्दर पट्ठों वाले, अधिक भार उठाने में समर्थ, चमकीली आंखों वाले, दृढ़ खुरों वाले और सैंकड़ों कोस चलने वाले अश्वादि मनुष्योपयोगी पशुओंका भी राजा यम ही है॥ १६ ॥

यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत्। यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥

यमने पृथिवी को सम्भाला हुआ है, यम ने ही इस समस्त जगत को धारण किया हुआ है। वायु में सांस लेकर जीने वाले जितने जीव जन्तु हैं वे भी सब यमके ही आश्रय में जीवित हैं ॥ १७ ॥

यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः। यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैक ऋषिर्विजानते स्वाहा ॥ १८ ॥

जो एक विद्वान् यम को (ब्रह्म को) भली भांति जानता है वह अकेला पांच, छै अथवा पन्द्रह मनुष्यों को उपदेश कर सकता है—संख्या में विशेता नहीं, विशेषता ब्रह्मज्ञान में है ॥ १८ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत्। गायत्री त्रिष्टुप्छन्दांऽसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥ १९ ॥

त्रिक द्रुक नामक यज्ञ-विशेषोंसे पृथिवी, अन्तरिक्ष, ओषधी, जल, बल और सत्यवाणी इन छै भौतिक शक्तियों को प्राप्त करता है। सबसे मुख्य ब्रह्म एक ही है। गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्द सब उसी एक नियामक ईश्वरके गुण गाने वाले हैं ॥ १९ ॥

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत्। वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥

अन्धकार का नाशक, सृष्टिका नियामक ईश्वर गाय, घोड़ा, मनुष्य आदि रूप में अवस्थित प्राणि-जगत् को नित्य नित्य पञ्च महाभूतों के रूपमें परिणत करता हुआ कभी तृप्त नहीं होता ॥ २० ॥

वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः। ये चेह सत्येनेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ॥

जो मनुष्य अपने इह जन्म में सच और झूठका जीवन विताते हैं उन सबका उस यम (ईश्वर) के न्यायालय में अलग अलग विभाग कर दिया जाता है ॥ २१ ॥

ते राजन्निह विविच्यन्तेऽथा यन्ति त्वामुप। देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणांश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥

यम के न्यायालयमें उन का विभाग होता है और जो लोग ब्रह्मवित् विद्वानों का आदर करते हैं तथा उनके उपदेशों पर आचरण करते हैं वे ईश्वरको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः। अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥

अच्छे पत्तों वाले वृक्ष के समान सुन्दर जिस मायामय सुहावने संसार में ईश्वर यमका रूप धारण करके संहार-क्रिया करता है, उसी सृष्टिमें प्रजाओं का पालक और पिता अनादि काल से जीवों की उत्पत्ति करता आया है ॥ २३ ॥

उत्ते स्तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहंऽरिषम्। एतां

जीव प्रार्थना करता है कि हे परमात्मन्, मैं इस पृथिवी और सब भूमण्डल को रक्षादि के लिये तेरे ही प्रति समर्पित करता हूं, तू मेरा नाश न

स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः साद-नात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥

कर। संसार के व्यवहार-रूप इस स्तम्भको भी अनुभवी वृद्ध लोग उठावें और ये इस ईश्वर की सृष्टि में सब व्यवहारोंका नियम रखें॥ २४ ॥

यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः। यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥

जैसे दिन और रात एक दूसरेके पीछे आते रहते हैं जैसे उत्तरोत्तर ऋतुयें पूर्व ऋतुके कारण बनती रहती हैं, और जैसे हमारे में पिता से पुत्र और पुत्र से पौत्रादि उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार हे संसार के रक्षक, इन प्राणियों की आयुओं को बढ़ाओ॥ २५ ॥

न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः। कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव। अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥ तैत्ति० प्रपा० ६। अनु० १—१० ॥

हे अग्ने, तेरी सृष्टिमें कोई मनुष्य अपने शरीर को दुख पहुंचाने के लिये क्रूर कर्म न करे। बन्दरकी तरह चञ्चल यह जीव अपने उत्साह को ऐसे ही प्रकाशित करता रहे जैसे गौ अपने जरायु की रक्षा के लिये करती है। हे अग्ने, तुम हमारे पापोंको दूर करो और (धर्म से कमाया हुआ) शुद्ध धन प्राप्त कराओ। हे अग्ने, हमारे पापों को तुम धो डालो, ताकि हमारी मृत्यु सुख से हो॥ २६ ॥

इन छव्वीस आहुतियों को करके, ये सब (ओं अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से ले के (मृत्यवे स्वाहा) तक एकसौ इक्कीस आहुति हुईं। अर्थात् ४ जनों की मिल के ४८४ (चारसौ चौरासी) और जो दो जने आहुति देवें तो २४२ (दोसौ बयालीस)। यदि घृत विशेष हो तो पुन. इन्ही एकसौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायँ यावत् शरीर भस्म न होजाय तावत् देवें। जब शरीर भस्म होजावे पुनः सब जन वस्त्र प्रक्षालन स्नान करके, जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उसके घरकी मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि करके, पृ० ४—१३ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन शान्तिप्रकरण का पाठ और पृ० ३—४ में लि० ईश्वरोपासना करके, इन्ही स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण के मन्त्रों से जहां अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहां स्वाहा शब्द का उच्चारण करके, सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिससे मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्न रहे। यदि उस दिन रात्रि होजाय तो थोड़ीसी आहुति देकर, दूसरे दिन प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण के मन्त्रों से आहुति देवें। तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर, चिता से अस्थि उठा के, उस श्मशानभूमि में कहीं पृथक् रख देवे। बस इसके आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि पूर्व (भस्मान्तं शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से

स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयनसे पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है । हां, यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते जी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेदविद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथपालन वेदोक्त धर्मोपदेशकप्रवृत्तिके लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां
शिष्यस्य वेदविहिताचारधर्मनिरूपकस्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिनः
कृतौ संस्कारप्रकाशग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

